RNI-UPBIL/2011/38102 ISSN-2231-5837

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(मानविकी एवं समाज विज्ञान पर केन्द्रित अन्तरराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

Volume -9: Issue - 39 Nov. 2020 Gaziabad

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES
(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)
Journal Impact Factor No. : 2.821

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA
Asstt. Editor
Mukta Soni

Guest Editor
Dr. Jang Bhadur Pandey

Chief Editor
Dr. HARI SHARAN VERMA

Sub Editor
Dr. Pushpa
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Art Editor
Dr. (MS) PANKAJ SHARMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT VERMA
SHRI BHAGWAN VERMA

Managing Editor
Dr. SANGEETA VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

Dr. Jang Bhadur Pandey
Guest Editor

Dr. Hari Sharan Verma
Chief Editor

Dr. Raj Narayan Shukhla
Editor

Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author,

The editor does not owe any kind of responsibility in this regard.

मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM

सहयोग राशि (भारत में)

(व्यक्तिगत) (आजीवन 4100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 6100 रुपये)

विदेश में :–

(व्यक्तिगत) 26 यू.एस. डॉलर (आजीवन) (संस्थागत) 32 यू.एस. डॉलर (आजीवन)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
   F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)
   harisharanverma1@gmail.com 09355676460
   WWW.IJSCJOURNAL.COM
2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
   SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ० पी.के. शर्मा, (ई–36 बलवन्त नगर विश्वविद्यालय मार्ग, गवालियर, मध्यप्रदेश फोन : 09039131915
3. डॉ० राजकुमारी सिंह (प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपुत मुरादाबाद उत्तर प्रदेश। फोन : 09760187147
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ0 विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास)
   स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
   लोहाघाट चंपावत (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411

स्वत्त्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ० राजनारायण शुक्ला द्वारा आदर्श प्रिंट हाऊस, बी–३२, महेन्द्रा एन्क्लेव, शास्त्री नगर, गाज़ियाबाद में मुद्रित कराकर, SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०) से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ० राजनारायण शुक्ला। **पंजीकरण संख्या :** ISSN-2231 - 5837

संरक्षक मण्डल :

1. **डॉ० रामसजन पाण्डेय** (कुलपति, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
2. **डॉ० योगेन्द्र नाथ शर्मा ''अरूण''** (पूर्व प्राचार्य, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, ७४/३, नया नेहरूनगर, रूड़की, उत्तराखण्ड)
3. **डॉ० राजेन्द्र सिंह,** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय राहतक
3. **डॉ० एस.पी. वत्स,** (पूर्व कुलसचिव, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० रमेशचन्द लवानिया,** (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
5. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ० प्रतिभा त्यागी,** (प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
6. **डॉ० जंगबहादुर पाण्डेय,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची–**834008**
   फोन : 09431595318
7. **डॉ० माया मलिक,** (प्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
8. **डॉ० ममता सिहल,** (एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ० के०डी० शर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
6. **डॉ० उत्तरा गुप्ता** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, आर. एन. कॉलेज, मेरठ)
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

कॉलेज, गाजियाबाद)

9. **डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर) हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल
10. **कु० महाविद्या उपाध्याय** (हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, आरोना (गुना) म०प्र०)
11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (कश्मीर) 09419058585
12. **डॉ. सुरेश कुमार** (सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.एल.जे. एस. कॉलेज, तोशाम, भिवानी)
13. **डॉ० उर्मिला अग्रवाल,** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
14. **डॉ० शशिबाला अग्रवाल** (रीडर, हिन्दी विभाग, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ)
15. **डॉ० अनिल कुमार विश्वकर्मा** (जनता महाविद्यालय अजीतमल, औरेया, उ०प्र०)
16. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
17. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
18. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
19. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
20. **डॉ० सीता लक्ष्मी,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश
21. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (वरिष्ठ सहायक प्रो०, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
22. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** (एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
23. **डॉ० शीला गहलौत,** प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
24. **डॉ० राजीव मलिक,** (प्रो. एवं अध्यक्षा, हिन्दी–विभाग, भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर)
25. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
26. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
27. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
28. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ. जे.के. शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, एस.जे.के कॉलेज, कलानौर (रोहतक)
7. **डॉ. रेशमा सिंह,** (एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी–विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** (एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० राजेन्द्र शर्मा** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
5. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
6. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
7. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू

विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)

8. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. **डॉ० जगवीर सिंह गुलिया,** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय मकड़ौली कलां रोहतक

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० सरिता दहिया** असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
3. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
5. **डॉ० नीलम रानी,** प्राचार्या, गोल्ड फील्ड कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बल्लभगढ़ (फरीदाबाद)
6. **डॉ० उमेश चन्द्र कापरी,** सहायक प्राफेसर, शिक्षा विभाग, गोल्ड फील्ड कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बल्लभगढ़ (फरीदाबाद) **Mob.: 09711151966, 7428160135**
7. **डॉ० सुनीता बडेला,** एसो० प्रो०, शिक्षा विभाग, हेमवतीनंदन बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल–२४६१७४
8. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
9. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
10. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
11. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गर्ग,** एसोसिएट प्रोफेसर शारीरिक शिक्षा विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
3. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
4. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram
5. **डॉ० हरेन्द्र सांगवान,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद
3. **डॉ० (श्रीमती) रश्मि त्रिवेदी,** अध्यक्षा, रानी भाग्यवती महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिजनौर एवं संयोजक रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० रेणु सिंह राना** (रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, गिन्नी देवी मोदी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोदीनगर)
3. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
5. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)
6. **डॉ० सारिका चौधरी,** अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, दयाल सिंह कॉलेज करनाल

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)

3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1. **डॉ० संजीव कुमार सिंह** (रीडर गणित विभाग, ए.आर.ई.सी. कॉलेज, खुरजा)
2. **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
3. **डॉ० मीनाक्षी गौड,** रीडर एवं अध्यक्षा गणित विभाग, नानकचन्द ऐंग्लो, संस्कृत कॉलेज, मेरठ
4. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

कम्प्यूटर विभाग:

1. **डॉ० रेखा चौधरी,** एसोसिएट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विभाग, राजकीय इंजीनियरियंग कॉलेज, भरतपुर, राजस्थान
2. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)
3. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)
4. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** (रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)
2. **डॉ० सुनीता सैनी,** प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० साधना सहाय** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
4. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली
2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)
4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/ predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/ false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Kiran Sharma**
   Asso.Professor, English Department, Govt. P.G. College (Women), Rohtak (Haryana)

4. **Dr. Narayan Singh Negi**
   H.No. 15, Umracoat, langasu-246446, Distt. Chamoli, Uttrakhand.

5. **Dr. Sarika Choudhary**
   Head Department of Economics, Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

6. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

7. **Dr. Reshma Singh**
   Assistant Professor, English Department, J.V. Jain College, Saharanpur (U.P.)

8. **Dr. Savita Budhwar**
   Assistant Professor, K.V.M. Narsing College, Rohtak.
   H.No. 196/29, Gali No. 9, Ram Gopal Colony, Rohtak.
   Mob. 9996363764

9. **Principal**
   Sat Jinda Kalyana College, Kalanaur (Rohtak, Haryana) 124113

10. **Dr. Renu Rana**
    Assistant Professor Department of (Political Science) Pt. Nekiram Sharma Govt. College Rohtak-124001
    H.No. 1355, Sect-2, Rohtak

11. **Dr. Mamta Devi**
    Assistant Professor Department of Polt. Science Hindu Girls College, Sonepat (Haryana)
    H. No. 2066, Sect. 2 (P), Rohtak 124001

12. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

13. **Dr. Sarita Dahiya** (Department of Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak 8222811312

14. **Dr. Vimla Devi,** Associat Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

15. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

संपादकीय

शोध की दशा एवं दिशा

देश में प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में शोध कार्य हो रहा है । प्रत्येक वर्ष उनकी संख्या सुरसा की भांति बढ़ती जा रही है। यदि वास्तव में प्रत्येक विषय में नये–नये तथ्य प्रकाश में आ रहे हों या प्रकाशित तथ्यों की ऐसी नई व्याख्या हो रही हो, जिससे ज्ञान के क्षेत्र में अभिवृद्धि होती हो, तब तो शोध प्रबंधों की वृद्धि अभिनन्दनीय है, पर हकीकत यह है कि विश्वविद्यालयों में बहुत सा शोध शोध कार्य के लिए नहीं, अपितु उपाधि और जीविका का मार्ग प्रशस्त के लिए हो रहा है। 'शोधार्थी' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समय (दो वर्ष) के भीतर येन–केन प्रकारेण कार्य को समाप्त कर लेने का भरसक प्रयत्न करता है। परिणाम यह होता है कि शोध कार्य में संकलन का भाग अधिक होता है और शोध का कम। अनेक विद्यार्थी शोध की प्रविधि से अनभिज्ञ रहते हैं और इसी से उनके लेखन में वैज्ञानिकता का अभाव बुरी तरह खटकता है।

शोध कार्य का तात्पर्य है, तथ्यों को प्रकाश में लाना। शोध, खोज, अनसंधान, अन्वेषण, ग्वेषणा सभी हिन्दी में पर्यायवाची शब्द हैं। खोज में सर्वथा नूतन सृष्टि का नहीं, अज्ञात को ज्ञात करने का भाव होना चाहिए। अर्थात् ज्ञात साधनों के द्वारा अज्ञात को ज्ञात करना शोध है। शोधकर्ता का कार्य भूले हुए तथ्य को पुनः प्रकाश में लाना है और उसे पूर्व ज्ञान की शृंखला से जोड़ देना है। प्राचीन काल से ही मनुष्य ने सृष्टि के जड़ चेतन तत्वों के संबंध में जो खोज की है, वह साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, विज्ञान आदि शास्त्रों की उपलब्धि बन गयी है। मन का स्वभाव ही मनन करना है इसी स्वभाव के कारण वह कभी ज्ञात तथ्यों का समर्थन करता है, कभी उनकी नयी व्याख्या करता है और इस प्रकार ज्ञान को अद्यतन बनाये रखता है। डॉ. विनय मोहन शर्मा के शब्दों में **''भली–भांति व्याख्या सहित परिकल्पना या समस्या को हल करने की व्यवस्थित तथा तटस्थ प्रक्रिया का नाम ही शोध है।''** (शोध–प्रविधि पृष्ठ 06)

मनुष्य इस सृष्टि का सर्वाधिक चेतना सम्पन्न प्राणी है। कोऽहम की जिज्ञासा उसे प्रारंभ से रही है। उसकी ज्ञान की पिपासा कभी तृप्त नहीं हुई। उसकी इसी अतृप्ति ने अनेक भौतिक तथा आध्यात्मिक रहस्यों को तथ्य रूप प्रदान कर मानव की ज्ञान सम्पदा में लगातार अभिवृद्धि की है। बहुत सा ज्ञान सहज इनिद्रयगम्य है और कुछ ऐसा भी है, जो सहज इन्द्रिगम्य नहीं है। परन्तु उसके अस्तित्व को एकदम नकारा भी नहीं जा सकता।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से गीता में पूछा कि अर्जुन! इस संसार में सर्वाधिक पवित्र वस्तु क्या है?इस प्रश्न के उत्तर में अर्जुन ने अनेक तत्वों का उल्लेख किया– धर्म, अहिंसा, प्रेम, परोपकार, सहिष्णुता, सेवा इत्यादि, लेकिन भगवान श्रीकृष्ण ने इन सभी को नकारते हुए कहा कि अर्जुन निःसंदेह ये चीजें पवित्र हैं, परन्तु संसार में सर्वाधिक पवित्रतम वस्तु ज्ञान है–

'' न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमहि विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दिति।।(गीता, 4/38)

अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयेाग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मा में पा लेता है। शोध ज्ञानाधारित है। महाकवि तुलसीदास ने भी उत्तरकांड में गरूड़ के पूछे जाने पर कागभुसुंडि से कहलाया है–**कहंहि वेद इतिहास पुराणा। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।।**ज्ञान के लिए जितेन्द्रियता, साधनपरायणता, तत्परता और श्रद्धान्विता परम अपेक्षित है–

''श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेद्रियः।
ज्ञानं लब्धवा परां शान्तिमचिरेणधिगच्छति।। (गीता/4/39)

अर्थात् जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त करता है। सत्य का शोधन शोध का अभिष्ट है।

ज्ञान की प्रत्येक शाखा में नये तथ्यों के उद्घाटन और विलुप्त पुराने तथ्यों के संकेतन के संकल्प के साथ शोध कार्य प्रारंभ होता है। स्वभावतः शोध ज्ञान की साधना है, अनुभव का विस्तार है और सत्य का दर्पण है। तथ्यों के मूल्यांकन और फिर निष्कर्ष के प्रतिपादन तक शोधार्थी एक विशिष्ट प्रविधि से गुजरता है। यही प्रविधि किसी भी शोध कार्य को वैज्ञानिक बनाती है।

पिछले कुछ दशकों में शोध की अवनति पर व्यापक चर्चा होती रही है। विश्वविद्यालयों में नियुक्ति और प्रोन्नति का संबंध शोध कार्य से जुड़ जाने के बाद स्थिति अधिकाधिक चिन्तनीय होती गयी है। इस स्वीकारोक्ति में लज्जा की कोई बात नहीं है कि शोध उपाधियां आज **'सत्यनरायण कथा'** का प्रसाद बन गयी हैं। बतासे बाँटने की इस योजना में शोध निर्देशक और अनुसांधाता दोनों सामान रूप से हिस्सेदार हैं। होना यह चाहिए था कि जिस निष्ठा के साथ अनुसंधाता विषय के चुनाव से लेकर शोध प्रबंध की प्रस्तुति तक परिश्रम करे, उतनी ही तत्परता से निर्देशक भी उसके मार्ग को सुगम बनायें, लेकिन आज शोध के क्षेत्र में परिश्रम, ईमानदारी और तत्परता का लगभग अन्त हो गया है। फलतः शोध कार्य ने एक सामान्य परीक्षा का रूप ग्रहण कर लिया है। इस असंतोषजनक स्थिति का एक मुख्य कारण यह भी है कि आज अनुसंधाता और शोधनिर्देशक दोनों ही शोध की प्रविधि और व्यावहारिक दिशाओं से अपरिचित हो गये हैं। जबकि अब शोध प्रविधि के सिद्धांत और व्यवहार से संबंधित कई आधार ग्रन्थ उपलब्ध है।

शोधप्रबंध के प्रस्तुति तंत्र की ही तरह शोध पत्रों की प्रस्तुति के बारे में भी जानकारी का अभाव दिखता है। शोध और समीक्षा में जितना अन्तर है, उतना ही अन्तराल सामान्य निबंध और शोध आलेख अथवा शोध पत्र में होता है। अनिवार्यताः शोध आलेख में अनुसंधाता अपने मत के पक्ष या विपक्ष में अन्य संदर्भों के मतों को प्रस्तुत करता है। इसीलिए शोध आलेख अथवा शोध पत्र में पूर्व संदर्भों और उद्धरणों का समावेश किया जाता है। अनुसंधाता अपने शोध पत्र के अंत में यह स्पष्ट संकेत करता है कि संदर्भित उद्धरण या कथ्य किस लेखक, किस पुस्तक और पुस्तक की किस पृष्ठ संख्या से उद्धृत है। ऐसे सन्दर्भ संकेत से शून्य कोई भी आलेख शोध आलेख नहीं कहा जा सकता। इंडियण जर्नल ऑफ सोसल कन्सर्नस के 39 अंक में शोध आलेखों को एकत्र करने के पीछे यही दृष्टि रही है। कि अनुसंधाता शोधपत्र और सामन्य निबंध की दूरी पहचान सके। मैं हिन्दी के प्रखर विद्वान और कुशल संपादक डॉ. हरिशरण वर्मा, डॉ. राजनारायण शुक्ल, डॉ. सतीश आहूजा एवं डॉ. संगीता वर्मा का हृदय से आभारी हूं, जिन्होंने मुझे अतिथि संपादक दायित्व देकर कृतार्थ किया है। आशा है इस अंतर्राष्ट्रीय समीक्षित पियर जर्नल का निरंतर प्रकाशन शोध निकषों की कसौटी पर होता रहेगा और यह पत्रिका शोधार्थियों के लिए सदैव लाभकारी एवं उपयोगी बनी रहेगी। इस पत्रिका से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जुड़े सभी महानुभावों हेतु परमपिता परमेश्वर से मेरी कामना है–

मान मिले सम्मान मिले, सुख संपत्ति का वरदान मिले।
कदम–कदम पर मिले सफलता, सदियों तक पहचना मिले।।

डॉ. जंग बहादुर पाण्डेय
अतिथि संपादक
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची।
चलभाष– 9431595318
ईमेल– pandey_ru05@yahoo.co.in

राष्ट्रभाषा के विकास को समर्पित : सरस्वती के वरद पुत्र प्रो. डॉ. जंगहादुर पाण्डेय

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में प्रो. जंगबहादुर पाण्डेय अपने उपनाम 'तारेश' से जाने जाते हैं। रचनाधर्मिता और बेहतर कार्य शैली के बल पर उन्होंने भारत की पहचान देश–विदेश तक कायम किया है। राँची विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में 23.11.1981 से अपनी अध्यापन यात्रा शुरू की थी और 31.01.2020 को वे सेवानिवृत्त हुए। लगभग 38 वर्षों तक उन्होंने अध्यापन कार्य किया। उन्होंने अपने मृदुल व्यवहार एवं अध्यापन शैली से न केवल अपने विभागीय सहयोगियों को अपितु छात्र–छात्राओं को भी प्रभावित किया है। विभागीय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संगोष्ठियों में डॉ. पाण्डेय ने अपनी सक्रिय भूमिका निभायी है। लोकप्रियता यदि किसी शिक्षक की सफलता की कसौटी है तो डॉ. पाण्डेय इस पर शत प्रतिशत खरे उतरते हैं।

उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता और बहतरीन संवाद शैली के कारण राँची विश्वविद्यालय सहित अनेक संस्थानों अपनी योग्यता का लोहा मनवाया है। उन्होंने अपनी कार्यशैली के बल पर देश में ही नहीं विदेशों में भी अपनी पहचान बनायी है। 2013 में वे एक सत्र के लिए जोहान्स गुटेनबर्ग जर्मनी में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली द्वारा अतिथि प्राध्यापक (Visiting professor) के रूप में नियुक्त किये गये थे। वहां भी उन्होंने अपनी अध्यापन कला से जर्मन छात्र–छात्राओं के मन में हिन्दी–संस्कृत के प्रति अभिरूचि जागृत की और सबको अपना मुरीद बनाया। डॉ. पाण्डेय ने कई देशों की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक यात्राएं की हैं जिनमें प्रमुख हैं– मॉरीशस, ताशकंद, रूस, थाईलैंड, सिंगापुर, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, आस्ट्रिया, नार्वे, स्वीडेन, डेनमार्क आदि।

डॉ.पाण्डेय ने रामचरिमान में रसयोजना विषय पर राँची विश्वविद्यालय, राँची से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है उनके सर्वाधिक प्रिय कवि तुलसी दास है। उन्होंन तुलसी साहित्य का गहन अध्ययन किया है और दूसरों को भी गहन अध्ययन की प्रेरणा देते रहे हैं। क्योंकि तुलसी में उन्हें लोकमंगल की भावना सर्वाधिक रूप में मिलती है। तुलसी का मानस गंगा की तरह सबका कल्याण करनेवाला है– **कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।।**

जिस प्रकार तुलसी प्रेम को सर्वोपरि मानते हैं और मनुष्य और मनुष्य के बीच प्रेम एवं स्नेह के हिमायती है उसी प्रकार भी डॉ. पाण्डेय समाज एवं राष्ट्र के विकास के लिए प्रेम की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इन्हीं गुणों के कारण डॉ. सेवानिवृति के बाद भी छात्र–छात्राओं के द्वारा श्रद्धापूर्वक याद किये जाते हैं। वे आस्थावादी एवं आध्यात्मवादी हैं। उनका मानना है कि – '**बिनु हरि कृपा तृणहु नहिं डोलै**' ऊपर वाले के कृपा के बिना कुछ नहीं हैं अतः वे कहा करत हैं कि–

प्रेम से अगर नाम राम जी का लोगे तो, बिगड़ा तुम्हारा हर काम हो जायेगा।
आस्था रखोग गर राम जी के नाम पर, तो सुखद तुम्हारा परिणाम हो जायेगा।।
राम जी के अनुयायी बन के रहोगे तो, दिल भी तुम्हारा तीर्थधाम बन जायेगा।
ये भी एक विशेषता तारेश राम नाम की है, मरा मरा लिखोगे तो राम बन जायेगा।।

डॉ. हरिशरण वर्मा
प्रधान सम्पादक
मकान न0 F-120
सैक्टर–10, DLF, फरीदाबाद
पिन – 121004
मौ0 935567460

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय

एम0 ए0 (हिन्दी, संस्कृत)
एल0–एल0बी0, पीएच0डी0
हिन्दी विभाग,राँची वि0वि0 राँची–834008
एवं
कॉलेज निरीक्षक (कला एवं वाणिज्य)
राँची विश्वविद्यालय, राँची– 834001
पूर्व विजिटिंग प्रोफेसर, जोहान्स गुटेनवर्ग
विश्वविद्यालय, माइन्स (जर्मनी)

तपोवन

लक्ष्मीनगर, पिस्का मोड़
रातू रोड़, राँची – 834005
चलभाष – 09431595318 (P)
08603659634(P) ,09386336807(पत्नी)
चलभाष जर्मनीः 0015787576051
Email : pandey_ru05@yahoo.co.in

क्र0 सं0	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	वर्ष
1.	मानस कौमुदी : एक अध्ययन	सुबोध ग्रंथमाला,राँची–834001	1982
2.	सौन्दर्यपासक : एक अध्ययन	सुबोध ग्रंथमाला,राँची–834001	1983
3.	चिंतन की मुद्राएँ : एक अध्ययन	सुबोध ग्रंथमाला,राँची–834001	1984
4.	ध्रुवस्वामिनी (जयशंकर प्रसाद) (संपादित)	सुबोध ग्रंथमाला,राँची–834001	1985
5.	संस्कृत अनुवाद संग्रह (संपादित)	भारती भवन, ठाकुरबाड़ी रोड़, पटना – 800003	1990
6.	हिंदी सृजन प्रक्रिया (संपादित)	अनुपम प्रकाशन, अशोकराज पथ पटना – 800004	1992
7.	रामचरितमानस में रस–योजना (पीएच0 डी0 शोध–प्रबंध)	क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली – 110015	2006
8.	कथा भारती (संपादित)	सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली – 110059	2007
9.	निबंध भारती (संपादित)	सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली – 110059	2007
10.	पर्यावरण प्रदूषण समाज, साहित्य और संस्कृति (संपादित)	क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली – 110015	2012
11.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज अंसारी रोड दिल्ली –2	2013
12.	हिन्दी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ (संपादित)	विश्व पुस्तक प्रकाशन, 304ए, बी0 जी0 7, पश्चिम बिहार, नई दिल्ली –63	2014
13.	हिन्दी दशा और दिशा (संपादित)	विश्व पुस्तक प्रकाशन,304ए, बी0 जी0 7, पश्चिम बिहार, नई दिल्ली –63	2014
14.	वस्तुनिष्ठ हिन्दी साहित्य	लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली – 110094	2014
15.	काव्यशास्त्र निरूपण	लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली – 110094	2014
16.	बोधिसत्त्व से बुद्ध तक जातक कथाएँ	निर्मल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली–110094	2014
17.	तिनका उड़ा आकाश (उपन्यास)	विशाल प्रकाशन, दिल्ली–110094	2014
18.	हिंदी–अंग्रेजी शब्दकोश	लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली – 110094	2014
19.	हिन्दी–हिन्दी शब्दकोश	निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली–110094	2015
20.	स्वास्थ्य शिक्षा	अमर प्रकाशन, लोनी, गाजियावाद	2015
21.	प्रेमचंद की उत्कृष्ट कहानियाँ (संपादित)	विशाल प्रकाशन, दिल्ली–110094	2015
22.	प्रेमचंद की दलित चेतना की कहानियाँ (संपादित)	विशाल प्रकाशन, दिल्ली–110094	2015
23.	जिंदगी का सफर (उपन्यास)	पीयूष प्रकाशन, दिल्ली–110094	2015
24.	भारत–दुर्दशा का नया मूल्यांकन (संपादित)	जानकी प्रकाशन, अशोकराज पथ पटना– 800004	2015
25.	झारखण्ड के सपूत	शबनम पुस्तक महल, बादाम बाड़ी, कटक–(753012)	2015
26.	अंग्रेजी–हिन्दी शब्दकोश	लक्ष्मी प्रकाशन, नई दिल्ली 110094	2016
27.	पृथ्वीराज रासो : सौंदर्य और समीक्षा –संपादित	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 211001	2018
28.	निबंध यात्रा – संपादित	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 211001	2019
29.	कथा कुंज – संपादित	राजकमल प्रकाशन,1बी नेता जी मार्ग, दरियागंज, दिल्ली	2019
30.	प्रिय प्रवास : सौंदर्य और समीक्षा	राजकमल प्रकाशन,1बी नेता जी मार्ग, दरियागंज, दिल्ली	2019
31.	हल्दीघाटी : सौंदर्य और समीक्षा	राजकमल प्रकाशन,1बी नेता जी मार्ग, दरियागंज, दिल्ली	2019
32.	कथा यात्रा – संपादित	समन्वय प्रकाशन, गाजियाबाद 201002	2019
33.	निबंध कुंज – संपादित	समन्वय प्रकाशन, गाजियाबाद 201002	2019
34.	एकांकी यात्रा – संपादित	संजयबुक सेंटर, के/38/6 गोलघर वाराणासी 221001	2019

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय
एम0 ए0 (हिन्दी, संस्कृत)
एल0–एल0बी0, पीएच0डी0
हिन्दी विभाग,राँची वि0वि0 राँची–834008
एवं
कॉलेज निरीक्षक (कला एवं वाणिज्य)
राँची विश्वविद्यालय, राँची– 834001
पूर्व विजिटिंग प्रोफेसर, जोहान्स गुटेनवर्ग
विश्वविद्यालय, माइन्स (जर्मनी)

तपोवन
लक्ष्मीनगर, पिस्का मोड़
रातू रोड़, राँची – 834005
चलभाष – 09431595318 (P)
08603659634(P) ,09386336807(पत्नी)
चलभाष जर्मनीः 0015787576051
Email : pandey_ru05@yahoo.co.in

जीवन–वृत्त

नाम	:	**डा0 जंगबहादुर पाण्डेय**
उपनाम	:	''तारेश'' (विवाहोपरांत)
जन्म तिथि	:	4 जनवरी 1955
जन्म स्थान एवं स्थायी पता	:	ग्राम–पटखौली, पो.–बसौरी भाया–पीरो, जिला–भोजपुर (आरा) पिन–802301
वर्त्तमान पता	:	''तपोवन'' लक्ष्मी नगर पिस्का मोड़ रातू रोड़ राँची–834005
विभागीय पता	:	अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,राँची। राँची विश्वविद्यालय, राँची–834008
शैक्षणिक योग्यताएँ	:	1. बी0ए0 हिन्दी ऑनर्स (विशिष्टता सहित), 1975 एच0 डी0 जैन कॉलेज, आरा, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, गया (बिहार) 2. एम0 ए0 (हिन्दी) प्रथम श्रेणी, 1977 राँची विश्वविद्यालय, राँची–834008 3. एम0 ए0 (संस्कृत), प्रथम श्रेणी, 1989 राँची विश्वविद्यालय, राँची–834008 4. एलएल0 बी0, 1978 राँची विश्वविद्यालय, राँची–834008 5. पीएच0 डी0 राँची विश्वविद्यालय, राँची–834008 6.शोध प्रबंधक का शीर्षक–''**रामचरित मानस में रस योजना**'' 7. डी0 लिट्0 – '**अज्ञेय के काव्य पर पाश्चात्य**

प्रभाव''(पंजीकृत)

भाषा ज्ञान	:	भोजपुरी, हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	अंधेरे के विरुद्ध में लघुदीप का जीवन–संघर्ष और शौर्य की अभिव्यक्ति	अंजली रंजन	11–12
2.	कुमाऊनी कहावतों में नारी चित्रण	डॉ0 प्रमिला जोषी	13–16
3.	सरल सुभाउ दुआ छल नाही के विग्रहः सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री राम दूबे	डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय	17–20
4.	अनुवादक के गुण	अशोक कुमार प्रमाणिक	21–22
5.	वाल्मीकि रामायण में स्थापत्य कला	डॉ0 नीलमणि कुमार पाठक	23–24
6.	नवजागरण प्रणेता : कबीर	डॉ. सुनीता सिंह	25–27
7.	पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक चिंतन	डॉ0 शैलेन्द्र कुमार सिंह	28–32
8.	रमेश उपाध्याय के कहानी साहित्य में भूमण्डलीय यथार्थ	मीनाक्षी, डॉ0 सुमन राठी	33–34
9.	कथा शिल्पी फणीश्वर नाथ रेणु और उनका 'मैला–आँचल'	डा0–सुनन्दा सिंह	35–38
10.	रमेश उपाध्याय की कहानियाँ : मनोवैज्ञानिक चित्रण	मीनाक्षी, डॉ0 सुमन राठी	35–41
11.	विकास का राजनीतिक समाजशास्त्र और हाशिए का समाज (गाँव भीतर गाँव)	बबली	42–44
12.	अशोक का धम्म	मन्दीप शर्मा	45–48
13.	भारतीय समाज पर मीडिया के प्रभाव	डॉ. राजेश कुमार, प्रमिला देवी	49–50
14.	चन्द्रगुप्त मौर्य भारत का प्रथम राष्ट्रीय सम्राट	मन्दीप शर्मा	51–53
15.	श्वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यौगिक क्रियाओं का स्वस्थ जीवन शैली में योगदान	डा. सुखबीर सिंह	54–57
16.	'' कुरूक्षेत्र में मानव मन के सम्मिलित विकारो का विस्फोट है''	डॉ० नवीन कुमार	58–59
17.	प्रवासी साहित्य और अभिमन्यु अनत	जयन्ती	60–62
18.	रश्मिरथी' के कथानक–शिल्प का मूल्यांकन :	डॉ० नवीन कुमार	63–64
19.	दिनकर की कविता में राष्ट्रीय चेतना	दिविक दिवेश, डॉ० सुबोध सिंह 'शिवगीत'	65–68
20.	तुलसीदास के साहित्य में व्यंग्य–व्यंजना	अंजली रंजन, डॉ० सुबोध सिंह 'शिवगीत'	69–70
21.	गांधी की सत्य की अवधारणाः– एक अध्ययन	अश्वनी कुमार	71–74
22.	डॉ0 राधेश्याम शुक्ल के काव्य में महानगरीय जीवन की त्रासदी	अश्वनी कुमार	75–76
23.	''हिंदी व्यंग्य साहित्य परंपरा में डॉ हरीश नवल का योगदान''	चित्रा भारद्वाज	77–79
24.	प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक में स्त्री–पात्र	डॉ० कुमारी बबीता	80–81
25.	**भीष्म साहनी के तमस उपन्यास में शिल्प की दृष्टि से 'कथ्य'**	डॉ.प्रवीण कुमार वर्मा	82–85
26.	रामवृक्ष बेनीपुरी स्वतंत्रता के प्रति समर्पित साहित्यकार	डॉ0 पायल कुमारी	86–88
27.	''प्राचीन शिक्षा पद्धति तथा नवीन शिक्षा पद्धति का तुलनात्मक विवेचन''	डॉ0 मन्जू गर्ग	89–92
28.	रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटकों में ग्रामीण जीवन और परिवेश	डॉ0 पायल कुमारी	93–95
29.	मानस में असुर पात्र और तुलसी की मौलिकता	डॉ.रुचिका ढींगरा	96–99
30.	''तमस'' उपन्यास में शिल्प की दृष्टि से भाषा शैली	डॉ.प्रवीण कुमार वर्मा	100–102
31.	स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षण–संस्थानों शिक्षण–संस्थानों में कार्यरत कार्मिकों की समस्याएं– विश्लेषणात्मक अध्ययन।	डा0 विमला देवी	103–105
32.	मिथिला की देव प्रतिमाएँ एवं उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि	अभय चन्द्र यादव 'शोधार्थी'	106–111
33.	EMMA: A JANE AUSTEN PROTAGONIST AHEAD OF HER TIMES	Sagorika Sen	112–115
34.	A STUDY ON LOK ADALATS IN INDIAN LEGAL SYSTEM.	Dr. Santosh Kumar Sharma	116–120
35.	Marxist Elements in Jane Austen's Pride and Prejudice	Mr. Roshan Lal	121–125
36.	`TRAUMA AND MEMORY IN A PALE VIEW OF HILLS BY KAZUO ISHIGURO	Nisha[1] Dr. Seema Dahiya[2]	126–128
37.	Frauds and Financial irregularities in Indian Banking System: An analytical study	Nisha, Dr. Seema Dahiya	129–132
38.	Trends of Juvenile Delinquency	Nisha (Research Scholar)Dr. Rajesh Hooda (Research Superviser)	133–136
39.	डॉ0 ओमप्रकाश सिंह के नवगीतों में सामाजिक सरोकार	सीमा रानी	137–143
40.	'उड़ता चल हारिल' में अभिव्यक्त यात्रा–बिम्ब	डॉ॰ अनिल सिंह	144–145
41.	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन, साहित्य और दर्शन	डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय	146–148
42.	महादेवी वर्मा का नारी चिन्तन	डॉ0 अंजु कुमारी	149–150
43.	कुरूक्षेत्र का मूल स्वर मानवतावाद है।	डॉ० नवीन कुमार	151–151
44.	''भगवान दास मोरवाल के उपन्यास 'काला पहाड़' में लोक–जीवन''	डॉ0 कृष्णा, जून, पूनम कुमारी	152–154
45.	'राम कथा का लोक–विस्तार विदेषों में भी		155–156
46.	जनपद नैनीताल में प्राथमिक षिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की उदासीनता के कारणों का अध्ययन।	डॉ0 प्रमिला जोशी	157–161

1

अंधेरे के विरुद्ध में लघुदीप का जीवन–संघर्ष और शौर्य की अभिव्यक्ति

अंजली रंजन

सारांश –

आधुनिक हिन्दी के महत्वपूर्ण और सहज–सुलभ कवि–रचनाकार विजय कुमार संदेश ने पद्य और गद्य की अनेक विधाओं में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। गद्य की विधाओं में कहानी, निबंध और यात्रा–संस्मरण उनके प्रिय विषय हैं। 'यात्रा में विशेष रूचि रखनेवाले इस कवि–लेखक ने भी यथेष्ट मात्रा में यात्रा–वृत्तांत लिखा है।'1 गोकि, वे मूलतः कवि हैं। 'अंधेरे के विरुद्ध' और 'उजाले की ओर' उनके लोकप्रिय काव्य–संग्रह हैं। 'अंधेरे के विरुद्ध' उनके काव्य संग्रह की शीर्षक कविता है जिसमें कवि ने एक 'लघु–दीप' के बहाने साधारणजन के बीच आशा का दीप जलाए रखने का प्रयत्न किया है। पूरी कविता संघर्ष, साहस, शौर्य और अंततः विजय–भाव से पूर्ण है। इसे कवि का वैशिष्ट्य कहें या मानवीय पक्ष–कविता की प्रायः सभी पंक्तियां अंतर्मन को छू लेनेवाली हैं।

कविता में आरंभ से अंत तक अद्‌भुत क्लासिकी है, सृजनात्मकता का तो जैसे विलक्षण रूप दिखलाई पड़ता है। ओज, साहस और यथार्थ के ताने–बाने में लिखी गई इस कविता में शौर्य शीर्ष पर चढ़कर बोल रहा है। पूरी कविता प्रतीकात्मक–शैली में लिखी गई है, जिसमें न कहीं शब्दजाल है और न कृत्रिमता बल्कि कवि ने लघु–दीप के माध्यम से साधारणजन के जीवन–संघर्ष को पिरो दिया है। तमाम वैषम्यों और विरोधों के बावजूद कविता में अंत–अंत तक जिजीविषा और आशा के स्वर जाग्रत हैं। कई बार तो यह प्रतीति होती है कि 'लघुदीप' के रूप में कवि स्वयं खड़ा है। कविता में वे केवल उन्हीं संदर्भों को शामिल करते हैं, जिसको उन्होंने झेला, भोगा और देखा है, एक तरह से यह कवि के जीवन की संघर्ष–गाथा सह आत्म–गाथा है। अपने निजी जीवन में भी वे संघर्षों से पलायन नहीं करते बल्कि हद तक जूझते हैं। यह संघर्ष जितना लघु–दीप का है, उतना ही कवि का भी। कवि का यह आर्षवाक्य रहा है कि अवरोधों के आगे जो रूक गया और तूफान के सामने जो झुक गया– वह सीधे–सपाट मार्ग पर भी सफल नहीं हो सकता, सफलता और जीत के लिए संघर्ष से जूझना जरूरी है। उन्होंने 'अंधेरे के विरुद्ध' कविता का आरंभ ही संघर्ष–पथ से किया है। वे लिखते हैं–

सूरज ने ओढ़ ली
जब अंधेरे की स्याह चादर
क्षितिज हुआ मौन, चुप्पी–सी साध ली उसने
अंधेरे के विरुद्ध
तब उठा माटी का एक दीया
अपनी कंपकंपाती, थरथराती लौ के साथ
बिखेरता रहा दीप्त–पुँज
होकर उजाले के लिए कटिबद्ध
अंधेरे के विरुद्ध।

कविता के पाठ से प्रतीति होती है कि कवि अपनी इस कविता में लघु–दीप जैसे प्रतीकों और बिंबों के सहारे सीधे–सीधे कबीराई अंदाज में साफगोई से कह जाते हैं कि साधारणजन की राह में आने वाले हर रूकावट के लिए उन्हें 'लघुदीप' जैसे जाज्वल्यमान और संघर्ष से जूझनेवाले पथिक की तलाश है। 'अंधेरे के विरुद्ध' में अपनी जागरूक भूमिका के कारण लघुदीप संवेदना से सिक्त है। उसमें अंधेरे के विरुद्ध जीवन को उजासमय बनाने की अद्‌भुत क्षमता है और हर स्थिति में जीवन–सृजन उसकी मूल–चेतना में शामिल है। कविता की ये पंक्तियाँ यह बतलाने के लिए काफी हैं कि आदमी चाहे कितनी ही विकट परिस्थितियों में क्यों न हो, यदि उसमें परिस्थितियों से जूझने का माद्दा है तो वह विषम से विषम परिस्थितियों में भी जीवन का हर युद्ध जीत सकता है। संघर्षरत लघुदीप के संबंध में यह कथन शाश्वत है। यथा–

रार नहीं ठानी उसने
हार नहीं मानी उसने
क्षितिज के हर कोने में
करता रहा, करता रहा
दिग–दिगंत, धरती आकाश
आलोक अनंत प्रकाश
धरती पर रहा फैलाता उजास
तपस्वियों–सा खोकर हर सुध–बुध
अंधेरे के विरुद्ध।

'अंधेरे के विरुद्ध' में आशा, विश्वास और विजय का स्वर उसके शब्द–शब्द में है। यही कारण है कि उसमें थोड़ी बहुत दार्शनिकता भी आ गई है। निराशा को आशा में और पराजय को जय में बदलने की अदम्य शक्ति उस लघुदीप में शायद इसी कारण है। कवि का यह लघुदीप साधारणजन या आम आदमी का प्रतिरूप है और इस साधारणजन को अपने संघर्ष पर, अपनी अपराजेय शक्ति पर पूर्ण भरोसा है। जीवन–संग्राम में वह खुद के

बूते उतरता है। उसे किंचित भी चिंता नहीं है कि कोई उसकी सहायता के लिए आगे आयेगा या नहीं। उसमें यह धारणा उसके अंतस में गहरे तक बैठी हुई है कि जीवन रण में यदि तुम्हारी सहायता के लिए कोई न आए तब भी तुम अकेले चलो, तुम्हारी जीत होगी और कुछ दिनों बाद ही एक बड़ा कारवां तुम्हारे पीछे होगा। अभिप्राय यह कि 'अंधेरे के विरुद्ध' जीवन जीने की कविता है। पूरी कविता दो खंडों में विभाजित है। पूर्व खंड में कवि के द्वारा लघुदीप के संघर्ष, साहस, शौर्य और विजय–पथ की परिकल्पना है तो उत्तर खंड में लघुदीप के शौर्य, साहस और संघर्ष से प्रभावित भुवन–भास्कर सूर्य का उसके प्रति प्रशस्ति–वाचन है। यथा–

मुँह अंधेरे
सूरज ने किया प्रश्न
कौन है वह ?जो
मेरे जाने के बाद
लड़ता रहा, लड़ता रहा
जूझता रहा, जूझता रहा
अनथके, अनदेखे अनावरुद्ध
अंधेरे के विरुद्ध।

यह एक तरह से भविष्य का संकेत है और कवि की संकल्पना है कि भविष्य में संघर्षजीवी जो समय के अंतराल में हाशिये पर रहने के लिए विवश थे, अंततः विजयी होंगे। अक्सर ऐसा कम ही होता है कि कोई सामर्थ्यवान अपने किसी प्रतिद्वन्द्वी की प्रशंसा करे। पर, इस कविता में वह है क्योंकि जीवन की प्रतिकूलताओं से एक अकेला लघुदीप जूझने और संघर्ष करने के लिए तैयार है। परिस्थितियाँ चाहे जितनी प्रतिकूल हों वह हार मानने या हार स्वीकार करने के लिए किसी भी स्थिति में तैयार नहीं है। सूरज के इस प्रश्न पर कि तुम कौन हो ?वह शांत–संयत स्वर में कहता है–

मैं हूँ हाशिए का हमसफर
जलता रहा, जलता रहा
उजाले के आने तक
करता रहा, करता रहा
हर पल, हर क्षण द्वन्द्व–युद्ध
अंधेरे के विरुद्ध।

कविता के अंत में दुर्धर्ष संघर्ष का प्रतीक 'लघुदीप' मानों जीवन–संघर्ष का अटल पर्याय बन गया है। कवि ने पूरी कविता में लघुदीप को आम आदमी की प्रतिछाया, जिजीविषा और अदम्य शौर्य के रूप में देखने का प्रयत्न किया है। कवि का यह संकेत कि जीवन–यात्रा के कटु अनुभवों को झेलने तथा हर पल शेष होते चले जाने की प्रक्रिया के बावजूद अपनी अस्मिता को बचाकर रखने तथा अंधेरे के विरुद्ध अंत तक लड़ने का साहस उसे खास बना देता है। यही कारण है कि पूरी दुनिया को अपनी ज्योति से जगमगा देनेवाला सूरज अंततः यह कहने के लिए विवश है कि

जबतक धरती है,
हवा है, जीवन है
ग्रह, नक्षत्र, चंद्र और तारे हैं
तुम मेरे सहयात्री बने रहोगे
करते रहोगे युद्ध
अंधेरे के विरुद्ध

इसी के साथ ही सूरज की यह भी कामना है–

जहाँ मेरी गति धीमी होगी
वहाँ बनकर प्रकाश बढ़ोगे तुम
जब भी अंधेरा घिरने लगेगा
टिमटिमाते रहोगे तुम
स्याह काली चादर से
जब ढँक जाऊँगा मैं
जलोगे वहां तुम
एक कदम और बढ़ जाओगे
आत्मशक्ति से उर्जस्वित
बनकर भीषण आयुद्ध
अंधेरे के विरुद्ध।

निष्कर्ष:

इस छोटी–सी टिप्पणी से यह उजागर होता है कि 'अंधेरे के विरुद्ध' शीर्षक कविता का अंत अत्यंत रोचक, सुखद और सकारात्मक जिजीविषा लिए हुए है, जिसमें साधारण से साधारण शब्दों और वाक्यों में गंभीर से गंभीर बात कहने की कला कवि के पास है। भाव और भाषा में तारतम्य बिठाने के लिए वे कठिन शब्दों का प्रयोग कम से कम करते हैं तथा उन्हीं शब्दों का प्रयोग अधिक करते हैं, जो आम आदमी के बीच प्रचलित है। रचना लघु होने के बावजूद अपनी प्रभावात्मकता में अद्वितीय और अपूर्व है।

संदर्भ :

1. साहित्य दर्पण, (सं०) बाबू जोसफ, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली
2. गद्य के विविध आयाम, (सं०) डॉ० अनिल कुमार सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वाद संवाद (पत्रिका), (सं०) रामरतन राम, अंक–20, अक्टूबर–दिसम्बर–2018, नई दिल्ली
4. अंधेरे के विरुद्ध, विजय कुमार संदेश, क्लासिकल पब्लिशिंग कं०, नई दिल्ली

शोध–प्रज्ञ
अंजली रंजन
विनोबा भावे विश्वविद्यालय,
हजारीबाग, झारखण्ड (भारत)
मो० : +917033924205

2

कुमाऊनी कहावतों में नारी चित्रण

डॉ0 प्रमिला जोशी

सारांश –

कहावतें विभिन्न प्रकार अनुभवो, व्यक्तियों, लोकविश्वासो, कथाओं पर आधारित सारगर्भित उक्तियॉ हैं, जो लोकप्रचारित होती हैं। इनका प्रयोग किसी बात की पुष्टि, विरोध, सीख, भविष्य कथन, उपदेश, कटाक्ष, तथा भविष्य कथन आदि के लिये किया जाता है। कहावतें आम जन–जीवन का एक हिस्सा होता है। इन कहावतों के द्वारा मानव जीवन के सांस्कृतिक सामाजिक परिवेश की झलकियॉ देखने को मिलती हैं।

उत्तराखण्ड का कुमाऊॅ क्षेत्र अपनी सांस्कृतिक विविधता के लिये प्रसिद्ध है। यहॉ की समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं में भी कहावतें मुख्य स्थान रखती हैं। इन कहावतों की संरचना में कुछ मुख्य विशयो को स्थान दिया गया है यथा जीव जन्तु, वातावरण, बच्चे, नारी, भविष्य कथन, कृशि, आदि।

प्रस्तुत शोध पत्र में कुमॉऊनी कहावतों में उपस्थित स्त्री जीवन के विभिन्न आयामो को दर्शाने का प्रयास किया गया है। पाठकों की सुविधा हेतु कहावतों का हिन्दी में अनुवाद कर उसका अर्थ व भाव समझाने का भी प्रयास किया गया है। पाठकगण व सुधीजन इस लेख के माध्यम से कुमाऊॅ की समृद्ध परम्परा से अवगत होंगे और इसके संरक्षण व परिमार्जन में सहयोग प्रदान करेंगे।

कुमाऊनी कहावतों में नारी चित्रण

विश्व में नारी की भूमिका को मानव समाज के प्रत्येक वर्ग ने स्वीकार किया है। भारतवर्ष में नारी को 'देवी' व "पूज्य" का स्थान देकर नारीत्व के प्रति पूर्ण श्रद्धा का भाव समर्पित किया है। वस्तुतः मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में नारी विद्यमान है फिर चाहे वह घर हो या बाहर, कविता हो या गद्य, कथा, कला या संस्कृति हो। आज तक नारी को लेकर कई कथानक, लेख व कवितायें लिखे जा चुके हैं। जिसमें सबसे अहम् पात्र की भूमिका में नारी ही विद्यमान रहती है। इसी क्रम में अगर कुमाऊॅ के साहित्य को देखा जाये तो इसमें भी नारी को पात्र बनाकर कई रचनाओं का सृजन किया गया है। कुमाऊनी कवितायें कहानियां, गीत, गाथाओं, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि में भी नारी विद्यमान है।

प्रस्तुत लेख में कुमाऊॅ के ग्रामीण समाज में प्रचलित कहवतों में नारी जीवन के विभिन्न आयामों को दर्शाया गया है, जिसमें मानव जीवन में उसका स्थान, आवश्यकता महत्व, समाज की उनके प्रति भावनायें आकांक्षायें, विचार, प्रसंशा, निर्भरता, चालाकी चतुराई, आलस उत्श्रृंखलता, बेवसी, लाचारी, बेचारगी चरित्र, आदि के भाव प्रतिबिंबित होते हैं। इन कहावतों में निहित नारी जीवन के विभिन्न पक्षों को क्रमवार दर्शाने का संक्षिप्त प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा हेतु कहावतों को हिन्दी में अनुवाद कर उनका अर्थ भी प्रस्तुत किया गया है। कहावतों को उनमें निहित विशेशताओं के वर्ग में संयोजित किया गया है ताकि पठन कार्य में कठिनाई न हो और तत्सम्बन्धित कहवतों का सार आसानी के ग्रहण हो सके। कहावतों को विभिन्न शीर्शकों के अन्तर्गत लिखा गया है जिससे उनमें निहित विशेशता उस वर्ग को दर्शाती है। इन कहावतों को 9 वर्गो में बॉटा गया है यथा मानव जीवन में स्थान, समाज में स्थान,स्त्री के प्रति पूर्व धारणा, आपसी संबंध, परिस्थिति ,विविध, वंशानुक्रम संबंधी, लोक कथाओ में एवं आशीश बचनो में निहित आदि। इन कहावतो को निम्न प्रकार वर्णित किया गया है।

कहावतें

- **मानव जीवन में स्थान :– (मान सम्मान सम्बन्धी)**
  जैकि ज्वे नै, वीक कोय नै।
  जिसकी पत्नी नहीं, उसका कोई नहीं।

- **ज्वे जे हुनि ते डाढ़े के छी।**
  पत्नी जो होती तो रोना ही क्या था, अर्थात पत्नी की महत्ता व आवश्यकता के विषय में। अर्थात वस्तु की आवश्यकता।

- **ज्येठ भाई बाबू की ठौर, जेठि ब्वारि ईजै कि ठौर।**
  बड़े भाई का स्थान पिता की जगह व बड़ी भाभी का माता की जगह होता है।

- **जैकि ज्वे नै वीक कोई नै, जैकि ज्वे वीक सब कोय।**
  जिसकी पत्नी नहीं उसका कोई नही जिसका पत्नी हो सब उसी के हो जाते हैं।

- **जो विष्णु घर सो ही लछिमि, जो महादेव घर सो हि पार्वती**
  जो विष्णु भगवान के घर रहे वो लक्ष्मी, और जो शिवजी के घरवो ही पार्वती स्थान का महत्व

- **ज्वाना भारण मैं, बुड़े भारण ज्वे।**
  जवान की शरण में मॉ व बुड्डे की शरण में पत्नी, रहते हैं। पराधीनता, स्थिति के विषय में जानकारी।

- **बैग्क देखियक साग, सैणिक देखियक बाग**
  पति के द्वारा बनाया हुआ साग और पत्नी का देखा हुआ बाग गुणकारी होता है, व्यक्ति व वस्तु विशेष का महत्व।

- **सैणि ली बेर गृहस्थ, बैल लि बेर खेति।**
  या ज्वे बिन गृहस्थ ने, बल्द बिन खेति नै
  बिना पत्नी के गृहस्थि की कल्पना करना बेकार है और बिना बैलों के खेती की।

- **बैग्क देखियक साग, सैणिक देखियक बाग**
  पति के द्वारा बनाया हुआ साग और पत्नी का देखा हुआ बाग गुणकारी होता है, व्यक्ति व वस्तु विशेश का महत्व।

- **समाज में स्थान सम्बन्धी, समाज में स्त्री के प्रति भावनायें**
  सैणि कें नि देखूण बजार मैंस कें नि देखूंण भकार
  पत्नी को बाजार के दर्शन नहीं कराने चाहिए और पति को भंडार के क्योंकि बाजार पत्नी व भंडार पति की आदतों को खराब कर देता हैं।

- **सैणिल दैखे दन्त बैगैल पै अन्त**
  स्त्री यदि हंस जाये तो, पुरूश उसका अन्तःमन भाव खोल लेता है (जानबूझ कर रहस्य खोलने देना)

- **स्त्री के प्रति पूर्वधारणा–**
  कुकुर मुख लगे, मुख चाटों, सैणि मुख लगे चुई कांटू
  कुत्ते को मुॅह लगाया तो वह मुॅह ही चाट लेता है और यदि पत्नी को मुॅह लगाया तो वह चुटिया ही काट लेती है। अर्थात् किसी को बहुत अधिक महत्व देने से वह आपके उपर धौस जमा देता है
  ।
- **चलण भल न एक कोस, चेलि भलि न एक।**
  एक कोस चलना भी ठीक नहीं व एक लड़की भी भली नहीं, अर्थात संकुचित विचारधारा ।

- **आपसी सम्बन्धों का स्थान**
  यारा कि सैणि आपणि बैणि ।
  दोस्त की पत्नी अपनी बहन के समान होती है।

- **एक द्याप्त धरण, एक स्यैणि धरण एक मित्र करण एक घर बसण ।**
  एक देवता, एक पत्नी एक मित्र व एक घर में रहना ही उचित होता है।

- **खा खा च्याल हुण जालै पैर पैर ब्वारि ऊंण जालै**
  बेटा होने तक खाले, बहू आने तक पहन ले, । आने वाले समय हेतु सचेत करना ।

- **धाण कर ब्वारी तागते न्हा खाण हुॅ आ ब्वारी ठुलि थालि कां।**
  बहू को काम के लिये कहने पर उत्तर मिला ताकत नहीं है। खाना खा ले कहने पर बुड़ी थाली के विषय में पूछना। (कामचोरी कर कटाक्ष करना)

- **तिरिया चरित के नि कूण, चुपचान सब निभूण**
  स्त्री चरित्र के विषय में कुछ न कहना चुपचाप सब निभाना।

- **चैतोकि मिटोई चेलिनाक बान (मान सम्मान)**
  चैत्र मास में भाई द्वारा दी जाने वाली भेंट वाहिनो के नाम होती है।

- **स्यैणि मैं ए खोट घर भरीगो नोट।**
  स्त्री यदि चरित्रहीन हो तो घर धन से भर जाता है, अर्थात गलत काम द्वारा पैसा कमाना।

- **सैणि जात हो उत्पात।**
  स्त्री जाति उत्पात का कारण है।

- **तिरिया चरित्र जाण न कोय पति मार सती होय**
  स्त्री चरित्र के विशय में कोई नहीं जानता पती को मारकर सती भी हो सकती है। (व्यंग्य) गलत काम करके सच का दिखावा करना, या पाक साफ बने रहना।

- **छक छकानि चेलि ब्वारि जाण कस नौ कमौनि।**
  उत्श्रृंखल बेटी व बहू न जाने कैसा नाम कमायेंगी (डर)

- **ब्वारिक लक्षण मैत बट ।**
  बहू के लक्षण मायके से ही दिख जाते हैं। वस्तु के गुण प्रारंभ से ही नजर आना।

- **पतराक् बामणांक एकै लक्षण, जति देखछा खसोटा–खसोट**
  वेश्या के व ब्राह्मण के एक समान लक्षण जहॉ देखो धन खसोटते रहते हैं। तुलना करना

- **म्यर खसम रोजि नि मिलौ, मैकें खाण पकूॅण पड़ल।**
  मेरे पति को नौकरी न मिले, नहीं तो मुझे खाना पकाना पड़ेगा,

अर्थात स्त्री के आलसीपन पर कटाक्ष करना।

- **निखाणि ब्वारिक नौ ट्याका**
  ससुराल में न टिकने वाली बहू, मायके जाने के नौ बहाने निकाल लेती है।

- **परिस्थिति पराधीनता संबंधी –यो जतकालि बच जूलों तो उनन थें बाबू के द्यूंल ।**
  इस प्रसव से बच जाउॅगी तो उनसे बाप कह दूंगी। परिस्थिति से तंग होना।

- **मैत जान्यू लाम लाम खान्यू ।**
  मायके जाती तो अच्छा स्वदिष्ट भोजन करती। अपने पराधीनता में अपने लाभ के विषय में सोचना।

- **मौत में एक दुख सौत में सौ दुख**
  मौत पर एक ही दुख होता है परन्तु सौतन के कारण सौ दुख सहने पड़ते है। परिस्थिति के विषय में बताना।

- **मै जै नौराण कुछय्यु, पौण नौराण ल्ग।**
  मै जो कराहूॅगी सोचा, अतिथि ही कराहने लगा। (स्थिति बताना)

- **गरीब वैंचों ज्वे, सौकार मांगो उधार।**
  गरीब व्यक्ति अपनी पत्नी बेचे साहूकार उधार मांगे। समाज में स्थिति का वर्णन

- **विविधः–**
  बाझं स्यैणिक च्योल तिमिलौक फूल जस
  बॉझ स्त्री का बेटा, तिमिल के फूल जैसा अर्थात असंभव बात

- **च्यैलिक बैध बालो, ब्वारि को पठैदार।**
  बेटी का बैध बच्चे के समान व बहू का पठैदार, अर्थात् बेटी के लिये वैद्य बच्चे के समान होता है जबकि बहू के लिये पहरेदार, अर्थात संदेह करना ।

- **स्यैणि को खसम मर्द, मर्द को खसम कर्ज।**
  स्त्री का पति मर्द, मर्द का कर्ज। अपनी परिस्थितियो के विषय में बताना

- **ज्वै का दैज कां तक चलोल।**
  पत्नी का दहेज कहॉ तक चलेगा। सावधान करना, समझाना।

- **ज्वैक दैज बाबूक धन खाईछ थ्वांड़ दिन ।**
  पत्नी का दहेज व बाप का धन थोड़े ही दिन खाया जा सकता है। उपदेश देना।

- **ज्वे ठुलि खसम नान् सोरोकि नालि, कत्यूरोक माण।**
  पत्नी बड़ी, पति छोटा सौर (पिथौरागड़ की नाली) कत्यूर का माण (250Gm वाला बर्तन), स्थान विषेश की विशेषता।

- **आपणि ज्वे छकि दूसरेकि ज्वे तकि।**
  अपनी पत्नी से छके तो दूसरे की पत्नी को ताका, अपनी वस्तु से मन भरने पर दूसरे की वस्तु की अभिलाशा करना।

- **सौण मरि सासु भदौ ए आंसु ।**
  सास सावन में मरे आंसु भादौ में आये। दिखावा करना, मगरमच्छ के ऑसू।

- **गिज ताणनै, ब्वारि नौ खा्ट खै गै।**
  हॅसते हॅसते बहू नौ रोटी खा गई ,बेवकूफ बनाना, अपना काम निकालना।

- **सैणिक अलस्यां के बख्ते पिंणां।**
  स्त्री का किया आलस्य किसी भी वक्त परेशान कर सकता है, समय पर कार्य न करना किसी भी वक्त कठिनाई खड़ी कर सकता है।

- **आग और सौत थे नान नि कून।**
  आग और सौतन से छोटा नहीं कहते।
  शक्तिशाली की पहचान करवाना, शत्रु को कमतर न आंकना।

- **ज्वे को दैज साजि, बाबूक धन बासि।**
  स्त्री का दहेज नया बाप का धन बासी, परिस्थिति की पहचान करना।

- **औंत है सौत भलि ।**
  बांझपन से सौतन अच्छी, समयानुसार वस्तु की उपयोगिता बताना।

- **ब्वारी के काम नहे, बल्द्क पूछड़ कन्या।**
  जबरन दूसरे से काम करवाना।

- **मुसा कि चेलि मुसाक गे।**
  चूहे की बेटी चूहे के घरबार गई अर्थात जिसकी तरह की वस्तु हो उसे ही मिली।

- **उजड़न बार, ज्वे लागि धार ।**
  उजड़ते वक्त पत्नी भी बह गई, आवश्यकता के वक्त अपनी वस्तु का साथ छूट जाना।

- **रात ब्यै बेर पड़ कतु रूण सौरास जै बेर मैत कतु ऊण।**
  रात बीतने पर कितना सोना (नींद) ससुराल जाकर मायके में कितना आना परिस्थिति जन्य अवस्था, समयानुसार सामन्जस्य।

- **गरीबेकि ज्वे सवनेकि बोजि।**
  गरीब व्यक्ति की पत्नी सबकी भाभी, अर्थात गरीब के ऊपर सभी अपना रौब जमाते हैं, धौंस जमाना, सामाजिक असमानता।

- **सौत करि कुड़ि एक हाति मैंस**
  सौतन के द्वारा जमाई गृहस्थि, एक हाथ वाले मनुष्य के (अपंग) समान होती है। अर्थात पूर्णता न होना।

- **गौं बिगांड़ रांडे लै, साग बिगाड़ मार्डेल।**
  वेश्या गॉव व मांड सब्जी बिगाड़ देता है अर्थात बुरी संगति हो तो बुरा प्रभाव पड़ता है।

- **कय चेलि हैं, सुणा ब्याारि कैं।**
  सास द्वारा पुत्री को संबोधित कर बहू को सुनाना।

वंशानुक्रम विशयकः–

- **बंशें की बान स्यैड़ि भलि, बांजे कि केड़ि टेड़ि भलि।**
  उच्चकुल की सेड़ी हो तो भलि, और बॉज की लकड़ी टेड़ी हो तब भी भली, कुल या वंश की विशेषता बताना, वस्तु की विशेषता।

- **जस मै उस चेलि।**
  जैसी मॉ बैसी बेटी, अर्थात समान गुण वाली वस्तु, कटाक्ष करना।

- **तीति तुमड़कि तीती केरि, जस मै उस चेलि।**
  कड़वी बेल की तुमड़ी भी कड़वी, और जैसी मॉ होगी वैसी बेटी भी होगी।

लोक कथाओं में–

- **जूॅ हो जू हो करने मारि मैत नि जाण पाई ब्वारि**
  मायके जाऊॅगी सोच सोच कर मर गइ, पर फिर भी मायके नहीं जा पाई बहू।

- **भै भुक्को मै सीत्ती**
  भाई भूखा रहा, मैं सोई रही, पश्चाताप् की भावना।

- **काफल पाको मैल नि चाखो।**
  काफल पके पर मैने नहीं चखे, अर्थात अपनी बात रखने में भी सफल न हो पाई

आशीश वचनों मेंः–

जी रये।
जीते रहना

सौभाग्यवती रये।
सौभग्यवती रहना।

अन्नवती धन्नवती है जाये।
अन्न से परिपूर्ण हो जाओ
त्यर खुट कान् झन बुड़ो,
तेरे पैर में कॉटा न चुभे
जी रये, जाग् रये, यो मास यो दिन भेंटने रये।
जीते रहना,जागृत रहना,ये माह व दिन में मिलते रहना
तेर नान वचि रौं।
तेरे बच्चे जीते रहें।

निष्कर्षः

प्रस्तुत लेख में वर्णित कहावतों के माध्यम से पुरातन समय में कुमाऊॅनी समाज में नारी जीवन के विभिन्न पक्षों को दर्शाने का प्रयास किया गया है। शिक्षा व संस्कृति के संरक्षण की दृश्टि से इन सारगर्भित वाक्यों का संरक्षण करना महत्वपूर्ण कार्य होगा, कुमॉउनी क्षेत्र में रहने वाले लोगों का ये अथक प्रयास होना चाहिए कि अपनी इस अनूठी सांस्कृतिक परम्परा के संरक्षण हेतु प्रतिबद्ध हों और संकल्प लें कि कुमाऊॅनी संस्कृति की इस ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परम्परा को संरक्षित, संवंर्धित व सिंचित करने में अपना सहयोग करेंगे ।

संदर्भ साहित्य

जोशी, प्रमिला 2020, कुमॉऊ में प्रचलित किस्से एवं पहेलियॉ, देवभूमि प्रकाशन, हल्द्वानी।
दुबे हेमचन्द्र; 2015, कुमॉउनी कहावतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पी0एच0डी0 थीसिस।
पहरू, कुमॉउनी पत्रिका ।2016।
शंकर सिंह भाटिया, "अपणी बोली, अपणी भाशा, कुमाऊॅनी –गढ़वाली" शक्ति प्रकाशन देहरादून उत्तराखन्ड।

डॉ0 प्रमिला जोशी
मरियम इन्सटीट्यूट
हल्द्वानी

3

सरल सुभाउ दुआ छल नाही के विग्रहः सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री राम दूबे

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय

जय हो जग में जले जहां भी, नमन पुनीत अनल को।
जिस नर में भी बसे हमारा, नमन तेज को बल को।।
किसी वृन्त पर खिले विपिन मे, पर नमस्य है फूल।
सुधी खोजते नहीं गुणों का, आदि शक्ति मूल।।
रश्मिरथी–प्रथम सर्ग–दिनकर

उपर्युक्त नमस्कारात्मक काव्य पंक्तियां राष्ट्रकवि दिनकर ने महाभारत के अप्रतिम दयावीर, युद्धवीर, और दानवीर महारथी कर्ण को ध्यान में रखकर लिखी हैं, लेकिन इन सारगर्भित पंक्तियों की व्यंजना कर्ण तक ही सीमित नहीं है, अपितु इनकी व्यंजना बहुत विस्तृत, व्यापक एवं सूक्ष्म है। जंगल के किसी भी वृन्त पर खिलने वाला फूल आदर एवं सम्मान का अधिकारी है, वे सभी लोग नमनीय एवं वंदनीय है जो तेज, प्रताप एवं गुणों की खान है। सुधी जन गुणों के आदि एवं अंत के लिए व्यग्र नहीं होते, अपितु गुणी जनों का समादर करते हैं।

किसी सरस्वती पुत्र की सुदीर्घ सारस्वत साधना का आकलन या मूल्यांकन करना आसान कार्य नहीं है; विशेषतः उस सरस्वती पुत्र की साहित्यिक साधना का आकलन या मूल्यांकन तो और भी कठिनतम कार्य है, जिसका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी हो, जिसके चिंतन का आकाश बहुत व्यापक एवं विस्तृत हो और जिसकी समझ की गहराई सागरवत् हो और जो एक साथ कई भाषाओं और विधाओं में निष्णात हो। ऐसे वाणी साधक का बहिरंग जितना व्यापक होता है, अंतरंग उससे कहीं अधिक गहरा। श्रीराम दूबे जी ऐसे ही सरस्वती के वरद् पुत्र एवं श्रेष्ठ साधक हैं।

किसी को समय बड़ा बनाता है और कोई समय को बड़ा बना देता है। कुछ लोग समय का सही मूल्यांकन करते हैं और कुछ आने वाले समय का पूर्वाभास पा जाते हैं। कुछ लोग परत दर परत तोड़ कर उसमें वर्त्तमान के लिए ऊर्जा एकत्र करते हैं और कुछ लोग वर्त्तमान की समस्याओं से घबराकर अतीत की ओर भाग जाते हैं। श्री राम दूबे ऐसे शक्स हैं जिन्होंने कभी समस्याओं से मुँह नहीं मोड़ा अपितु समस्याओं पर समाधान बनकर विजय प्राप्त किया।

कली बेच देंगे, चमन बेच देंगे,
कलम के पुजारी, अगर सो गये तो,
वतन के रहनुमा, वतन बेच देंगे।

स्वतंत्र भारत के मानचित्र पर झारखण्ड का महत्व प्रारंभ से ही रहा है। भूगर्भीय संपदा के कारण यह देश की अर्थव्यवस्था की संरचना में एक ओर अहम् भूमिका निभाता रहा है; तो दूसरी तरफ सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अवदानों के कारण महत्वपूर्ण रहा है। झारखण्ड की धरती रचनाकारों एवं साहित्यकारों से सुसंपन्न है। अपनी रचनात्मक साधना से साहित्य जगत् को समृद्ध करने वाले झारखण्ड में अनेक साहित्यकार हुए हैं और भविष्य में भी होंगे, लेकिन उन सरस्वती उपासकों में अपनी रचनात्मक उपलब्धियों के कारण श्रीराम दूबे शिष्ट एवं विशिष्ट हैं। अपने मृदुल स्वभाव के कारण वे शिष्ट हैं और अपनी उत्कृष्ट रचनाधर्मिता के कारण विशिष्ट हैं।

उत्तर प्रदेश का बलिया जिला कई माने में विशेष रूप से स्मरणीय है। यहाँ एक से बढ़कर एक स्वतंत्रता सेनानी पैदा हुए हैं, तो बड़े– बड़े साहित्यकारों, चिन्तकों तथा धर्म प्रवर्तकों को जन्म देने का श्रेय बलिया को है। 21 बार अपने प्रताप से क्षत्रियों का संहार करने वाले महर्षि परशुराम के पूर्वजों (भृगु) की जन्म स्थली बलिया ही रहा है। आज भी बलिया में स्थित भृगु आश्रम इसका ज्वलंत उदाहरण है। 1857 के सिपाही विद्रोह का नेतृत्व करने वाले वीर स्वतंत्रता सेनानी मंगल पाण्डेय एवं चितू पाण्डेय, बलिया के ही रहनेवाले थे। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार एवं इतिहासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और दूसरी परंपरा की रचना करने वाले मार्क्सवादी आलोचक डॉ. नामवर सिंह, **'अकाल में सारस'** के लिए सम्मानित होने वाले तारसप्तक के कवि डॉ. केदारनाथ सिंह और अप्रतिम इतिहसकार एवं पुरातत्त्ववेत्ता डॉ भगवत शरण उपाध्याय भी बलिया के ही थे। राजनीति के क्षेत्र में प्रधानमंत्री की कुर्सी को अल्पकाल के लिए ही सही, सुशोभित करने वाले युवातुर्क चंद्रशेखर का लोकसभा क्षेत्र बलिया ही रहा है। बलिया अर्थात् बल वाला भूभाग।

बलिया की राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उपलब्धियां समृद्ध रही हैं इसी साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं वीर विभूतियों को जन्म देने वाली भूमि में जन्म लेने का श्रेय श्री राम दूबे को प्राप्त है। उनका जन्म बलिया जनपद के सुजानीपुर (ननिहाल) में 04.01.1945 को हुआ। उनका मूल ग्राम अगरौली है। श्री राम दूबे बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के रहे हैं। **'होनहार वीरवान के हात चिकने पात'** के वे साक्षात विग्रह हैं। उन्होंने एम.ए. हिन्दी और विद्यावाचस्पति (डी. लिट्) की उपाधियां प्राप्त की हैं। अपने मेधा के बल पर उन्होंने बिहार लोकसेवा आयोग की परीक्षा में उतीर्णता प्राप्त कर प्रशासनिक पद प्राप्त किया। अपनी ईमानदारी, कर्मठता

एवं कर्तव्यनिष्ठा के कारण दूबे जी प्रान्नतियाँ प्राप्त करते गये और अंततः प्रशासनिक सेवा का सर्वोच्च पद (आई. ए. एस.) प्राप्त कर नया कीर्तमान स्थापित किया। आम तौर पर बिहार केडर के सभी प्रशासनिक पदाधिकारियों की प्रोन्नति आई. ए. एस. के रूप में नहीं होती; बहुत कम खुशनशीब पदाधिकारी ही इस पद को प्राप्त करते हैं। मुझे यह लिखने में हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि श्री राम दूबे जी उन बिरले प्रशासनिक पदाधिकारियों में एक हैं जिन्हें आई. ए. एस. के रूप में प्रान्नति मिली।

प्रशासनिक पदों पर रहते हुए साहित्य सृजन करना बड़ा ही कठिन कार्य है। एक प्रकार से प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहण और साहित्य सृजन में छत्तीस का संबंध है। भारत में बिरले ही ऐसे पदाधिकारी हैं जिन्होंने इस छत्तीस के संबंध को 63 में तब्दील कियाहै। ऐसे प्रमुख पदाधिकारियों के कतिपय नाम हैं– डॉ. जियालाल आर्य, श्री अशोक वाजपेयी, श्री सुभाष शर्मा, डॉ. प्रशांत कर्ण, विक्रमादित्य प्रसाद, पी. एन. मिश्र, आदि। श्रीराम दूबे भी ऐसे विरल पदाधिकारियों में एक हैं, जिन्होंने एक हाथ में प्रशासनिक बागडोर और दूसरे हाथ में लेखनी की बागडोर संभाले हुए साहित्य सृजन में अहिर्निश लगे हुए हैं।

श्री राम दूबे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। साहित्य की प्रायः सभी प्रमुख विधाओं पर उनकी लेखनी साधिकार चली है। इनकी प्रकाशित कृत्तियां निम्नांकित है–

1. कहे कबीर	(लघुकथा संग्रह)
2. कबीरा फँसा बाजार में	(व्यंग्य संग्रह)
3. मौन के स्वर	(कविता संग्रह; संपादन)
4. वृषभानुजा	(राधा पर आधारित महाकाव्य)
5. सोन मछरिया सतरंगी	(गीत संग्रह)
6. अग्निव्यूह	(उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली)
7. उम्रभर लंबी सड़क	(उपन्यास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली)
8. प्लेटफार्म नं. 7	(उपन्यास, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली)
शीघ्र प्रकाशय–	
10. महुआबाग	(उपन्यास, पर्यावरण पर)
11. भगवान परशुराम	(परशुराम पर महाकाव्य)
प्रकाशानाधीन–	
12. जंगल सब जानता है	(उपन्यास, नक्सलवाद पर)
13. भज्जो	(उपन्यास, एक प्रेमकथा)
14. नाचनी	(उपन्यास, सामंती मानसिकता में बंधी एक नारी नाचनी की दंश कथा)

इसके अतिरिक्त शताधिक शोध आलेख विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) से अवकाशग्रहण के पश्चात् साहित्यसृजन एवं समाचार पत्रों में नियमित स्तंभ लेखन कर रहे हैं।

क. धनबाद से प्रकाशित होने वाले लोकप्रिय '**दैनिक आवाज**' में दस वर्षों तक **'मस्तराम की चौपाल** लोकप्रिय कालम का लेखन किया।

ख. धनबाद से प्रकाशित होने वाले लोकप्रिय **दैनिक जागरण** में तीन वर्षों तक साप्ताहिक कालम

''सुनो भाई साधो'' का लेखन किया।

ग. धनबाद से प्रकाशित होने वाले लोकप्रिय **दैनिक हिन्दुस्तान** में वर्षों तक साप्ताहिक कालम **''ऐ बबुआ ई कोलफिल्ड बा''** का लेखन किया।

घ. राँची से प्रकाशित होने वाले लोकप्रिय **दैनिक हिन्दुस्तान** में 2 वर्षों तक साप्ताहिक कालम

''चतुरी चाचा की चौपाल'' का लेखन किया। अभी भी निरंतर वे साधनारत हैं।

''उम्र भर लंबी सड़क'' श्रीराम दूबे जी का एक सुप्रसिद्ध उपन्यास है। जो ट्रक ड्राइवरों, खलासियों, रूप जिब्याओं और राजनीतिज्ञों के जीवन पर केंद्रित है। श्री राम दूबे ने राजनीति की तुलना रूप जिब्याओं से करते हुए लिखा है–**''राजनीति भी नंगी हो जाती है, वेश्याएँ, बेड़नियां भी नंगी हो जाती है। एक सत्ता के लिए एक सिक्कों के लिए। इन दोनों में इतनी समानता?क्या ये दोनों एक–दूसरे के पर्यायवाची बन चुके हैं? सत्ता के लिए वर्त्तमान राजनीतिक गठजोड़ एक निर्दलयी विधायक खुशबू सिंह को कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है, उससे क्या–क्या नहीं कराता है?'उम्र भर लंबी सड़क' इन रिश्तों को संपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में परत–दर–परत खोलने का एक दस्तावेजी प्रयास है।''** पृष्ठ–6 राजनीति की गड्ड–मड्ड है और मौके का फायदा उठाते राजनेता है। फिल्म की तरह यह कथा दृश्यों में चलती है और पाठक दर्शक में बदल जाता है।

कृष्णकाव्य परंपरा की मंदाकिनी महर्षि वेदव्यास के मुखारविंद से निःसृत हुई और फिर अष्ट छाप के निम्नांकित कवियों के द्वारा प्रवाहित होती रही–

सूर, कृष्ण, कुंभन, परम, ये वल्लभ के दास।
नंद, छीत, गोविन्द, चतुर ये विट्ठल के पास।।

अर्थात् सूरदास, कृष्णदास, कुंभन दास, परमानंददास, नंददास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, और चतुर्भुजदास। इनके अतिरिक्त मीराबाई, नरोत्तमदास, रसखान, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, नरेन्द्र शर्मा आदि कवियों के मुखारबिंद से प्रभावित होती रही। संपूर्ण रीतिकाल के नायक–नायिका, राधा–और कृष्ण ही रहे। इसी कृष्ण काव्य परंपरा में श्री राम दूबे, जी का महाकाव्य **'वृषभानुजा'** एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में अनुस्यूत है। सात सर्गों में रचित **'वृषभानुजा'** खड़ी बोली का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। **'वृषभानुजा'** कृष्ण की प्रेमिका राधा के जीवन की व्यथा–कथा है। श्रीराम दूबे ने लिखा है–प्रथम सर्ग 'महाधार' में राधा के प्रेमभूमि का परिचय एवं उसकी आँखों में भरी छुपी **'महाधार'** की झलक है, दूसरे सर्ग **'महारास';** में कृष्ण की मुरली में नचाई जाने वाली राधा के **'महारास'** एवं उसके माध्यम से यमुना के जल से अपनी बहती आँखों का पानी मिलाकर वेदना को अभिव्यक्ति देने की एक प्रचेष्टा अंकित है, तृतीय संर्ग **'महाजाल'** में कृष्ण के

प्रेम रूपी **महाजाल** में फँसी सोन मछरी–सी राधा की प्रेममय छटपटाहट, प्रेम जगत् का बाह्य एवं आंतरिक भाव जगत् से मधुमय साक्षात्कार प्रेम पगी राधा का कृष्ण के प्रति प्रकृति के बारह मासे के साथ मानिनी की गर्वोक्ति के फुलमय प्रेमोपाहार के दर्शन होंगे। चतुर्थ सर्ग **'महाकाल'** में राधा की पीड़ा को **'महाकाल'** के हाथों संबल देना एवं उस पीड़ा को सीता एवं अहिल्या की पीर भरी कथा के परिप्रेक्ष्य में दिखाकर राधा के आंसू पोछने की एक झलक उभरती सी दिखाई देगी।

पंचम सर्ग **'महाफाग'** में राधा के प्रेम जीवन के फाग भरे दिनों की स्मृतियों को कुरेदते हुए उन परिस्थितियों का वर्णन है, जिनके चलते राग एवं फाग के उमंग भरे क्षणों में भी राधा **''निसिदिन बरसत नैन हमारे''** गाने को बाध्य है।

षष्ठ सर्ग **'महाराग'** में प्रेम एवं समपर्ण का जीवन दर्शन अभिव्यक्त है गाकुल की गलियों को छोड़ मथुरा चले जाने वाले कृष्ण के प्रति राधा के कुछ शाश्वत प्रश्न उत्तर के लिए छटपटाते मिलेंगे। राधा का यह संभाषण फूल की तरह वह मादक छुअन है जो भीतर तक कान्ह को चीर जाती है।

सप्तम् सर्ग **'महाआस'** में समर्पिता किन्तु अपरिणिता राधा के मन में उठ रहे अग्नि प्रश्नों में छुपी उस **'महाआस'** के चित्र मिलेंगे जिसके सहारे राधा कान्ह के लिए पल, दिन, मास, क्या सदियाँ एक प्रेममय प्रश्न चिन्ह् बनकर व्यतीत करने को तत्पर हैं। ''**वृषभानुजा की राधा में प्रेम का माधुर्य तो है साथ ही प्रेम पुष्प के कुछ प्रश्न भरे काँटे भी है जो कहीं कान्हा को निश्चय चूभ रहे होंगे। राधा का प्रेममय माधुर्य जिस कृष्ण ने आत्मसात किया प्रेम पुष्प के काँटों से कब तक बच सकता है।**''–पृष्ठ 5

वृषभानुजा का मंगलाचरण बड़ा ही रूपात्मक एवं मार्मिक है–

''तन के गोकुल मन के वृंदावन को जरा जगाना,
बहती यमुना रोती राधा को भी जरा हँसाना।
वंशी की स्वर से प्राणों में प्राण फूंकने वाले,
राधा की इन क्वांरी सांसों का भी लगन कराना।।'' पृष्ठ 7

कवि के शब्दों में वृषभान की बिटिया राधा की पीड़ा समेटे वृषभानुजा नारी जीवन के संघर्ष के अनन्त यात्रा की महाकाव्यात्मक **'पनघट पीर सहेली'** है।

अपनी रचनात्मक उपलब्धियों के कारण दूबे जी अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से नवाजे गये हैं। जिन पुरस्कारों से दूबे जी नवाजे गए हैं उनमें प्रमुख हैं–

1. अखिल भारतीय जयशंकर प्रसाद पुरस्कार
2. राष्ट्रीय गीतकार पुरस्कार
3. अचल भारतीय सम्मान
4. साहित्य सेवी सम्मान
5. अमिताभ चक्रवती सम्मान
6. झारखण्ड रत्न सम्मान
7. कर्मयोगी सम्मान (मॉरीशस)
8. कोरोना कर्मवीर सम्मान, (नई दिल्ली)

श्रीराम दूबे के व्यक्तित्व के कई आयाम हैं। मैं उनके व्यक्तित्व के इन आयामों से परिचित हूँ। कुशल प्रशासनिक पदाधिकारी एवं लोकप्रिय साहित्यकार होने के साथ–साथ वे नेकदिल इंसान एवं हर दिल अजीज मित्र भी हैं। 28 अगस्त 2009 से 10 सितंबर 2009 तक मॉरीशस में उनके साथ सपरिवार रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। मॉरीशस जाने का आमंत्रण श्री बी. एन. तिवारी **''भाई जी भोजपुरिया''** के सौजन्य से हमें प्राप्त हुआ था। मॉरीशस में विश्व भोजपुरी सम्मेलन का आयोजन इंडियन डिस्पोरा के तत्त्वावधान में आयोजित था। भारत से लगभग 50 प्रतिनिधि गए थे। हमलोग एक ही होटल में ठहरे थे। दूबे जी ने जिस मित्र धर्म का निर्वाह किया वह काबिले तारीफ है। पूरी यात्रा में हमें कहीं ऐसा नहीं लगा कि हम एक आई. ए. एस. पदाधिकारी के साथ भ्रमण कर रहे हैं। हवाई जहाज जैसे ही उड़ा, लगता है दूबे जी ने अपने आई.ए. एस. का चोला उतारकर शुद्ध साहित्यकार का चोला धारण कर लिया। यह उनके व्यक्तित्व की सरलता एवं सहजता ही है। पूरी यात्रा में उन्होंने अनेक संस्मरण सुनाएं और अपनी छोटी–छोटी कविताओं से सभी सहयोगियों के मन को गदगदाया, गुदगुदाया एवं हँसाया।

'महुआ' पर लिखित उनकी निम्नांकित पंक्तियां हमेशा रसविभोर करती हैं–

मन से केहु गावे तो अंजोर हो जाला,
कटि जाले रतिया अउर भोर हो जाला,
बगइचा में रसे–रसे चुवेला महुआ,
जे एक बेर चिखेला, उ चोर हो जाला।

नीति कहती है कि– ''**अगर आप खुद हँसते हैं तो आप परमात्मा की प्रार्थना करते हैं अगर आप दूसरों को हँसाते हैं तो, परमात्मा आपकी प्रार्थना करते हैं।**''

(If you laugh, you pray to God
If you make others laugh,
God Prays for you.)

मुझे यह लिखने में यह प्रसन्नता हो रही है कि दूबे जी स्वयं भी हँसे और दूसरों को भी हंसाया और ऐसा करके परमात्मा का अनुग्रह पाया। मेरी दृष्टि में ऐसा मनुष्य, मनुष्य नहीं देवता होता है। उर्दू का शेर है–

'हँसो इतना कि इस महफिल में,
'सदा' सिसकियों की सुनाई न दें।
खुदा उस एहसास का नाम है,
जो सामने हो, पर दिखाई न दें।।''

आत्म कल्याण के साथ–साथ जगत् का कल्याण कठिनतर ही नहीं कठिनतम है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है– यह सुधा गरल वाली धरती केवल उसी को शीश झुकाती है जो स्वयं के साथ दूसरों को भी बांह पकड़ाकर आगे बढ़ाने का

उपक्रम करता है–

कौन बड़ाई चढ़े श्रृंग पर, अपना एक बोझ लेकर,
कोई बड़ाई पार गये यदि अपनी एक तरी खेकर?
सुधा गरल वाली यह धरती उसको शीश झुकाती है,
खुद भी चढ़े साथ ले झुककर गिरतों को बाँहेदेकर?

दूबे जी के संदर्भ में यह बात सोलहों आने सच है। उन्होंने केवल अपना नहीं अपितु पूरे समाज का अपने लेखन से कल्याण किया है, कर रहे हैं और भविष्य में करते रहेंगे। ऐसा विश्वास है क्योंकि साहित्यकार समाज के द्रष्टा एवं स्रष्टा दोनों होते हैं।

संसार में सफलतापूर्वक जीने के लिए ममता और समता दोनों अपेक्षित है। राम में ममता और संसार में समता होनी चाहिए। जिनका किसी के प्रति राग, द्वेष, दोष, दुख का भाव नहीं है। श्रीराम के ऐसे भक्त भव–सागर से पार हो जाते हैं। तुलसी की यह घोषणा है–

तुलसी ममता राम सो, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार।। दोहावली–94

महाकवि तुलसी की यह भी घोषणा है कि इस संसार में अनासक्त भाव से रहना है और इंन्द्रिय निग्रह अपेक्षित है–

तुलसी जग में यों रहो, ज्यों रसना मुख माहि।
खाए पीए तेल घी, फिर भी चिकनी नाहि।।

दूबे जी ममता और समता में समन्वय बनाकर जीने वाले अपरिग्रही साहित्यकार है। अपरिग्रह और इंद्रिय निग्रह इनका जन्मजात गुण है। तुलसी ने भक्ति की रीति और संतों के मत का उल्लेख करते हुए लिखा है–

प्रीति राम सो नीति पथ, चलिए राग–रस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै भगति की रीति।।
दोहावल–86

जिनका वचन सत्य है मानस विमल है और कर्म कपट रहित है। ऐसे रघुवर भक्तों को कलियुग भी धोखा नहीं दे सकता–

सत्य वचन मानस विमल, कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुवर सेवकहिं, सकै न कलयुग धूति।।–दोहावली–87

संस्कृत की सूक्ति है कि स्वर्ग से आगत जीवात्मा में चार चिन्ह पाये जाते हैं– दानशीलता, वाणी में मधुरता, देवार्चनता और आचार्यता (पवित्रता एवं अनुकरणीयता)

स्वर्गाच्युतानामिह जीव लोके, चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे।
दानप्रसंगों मधुरा च वाणी, देवार्चनं पंडित तर्पणश्च।।

जिस प्रकार सोने की परीक्षा घर्षण, छेद, ताप, और ताड़न से होती है उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरूष की परीक्षा उसकी विद्वता, सुशीलता, कुलीनता एवं कर्मठता से होती है–

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निघर्षणच्छैदनताप ताड़नैः।
तथा चतुर्भिः पुरूषः परीक्ष्यते,
श्रुतेन, शीलेन, कुलेण कर्मणा।।

उपर्युक्त इन सभी कसौटियों पर श्री राम दूबे शत प्रतिशत खरे उतरते हैं। वे स्वर्ग से आये हुए जीवात्मा हैं जो इस धरती को स्वर्ग बनाने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील हैं। उनकी सादगी सरलता, सज्जनता, मानवीयता, उदारता, सदाशयता एवं कर्मठता आने वाली पीढ़ी के लिए उदाहरणीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।

उनकी लेखनी निरंतर चलती रहे और भारत–भारती का भंडार परिपूर्णता को प्राप्त करता रहे, यही हमारी कामना है। जीवन में उन्हें मान–सम्मान और सम्पति का वरदान मिले तथा कदम–कदम पर सफलताएँ उनका चरण चूमें एतद्र्थ परमपिता परमेश्वर से हमारी प्रार्थना है–

मान मिले, सम्मान मिले, सुख सम्पति का वरदान मिले।
कदम–कदम पर मिल सफलता, सदियों तक पहचान मिले।।

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
चलभाष : 9431595318, 9386336807
Email - pandey_ru05@yahoo.co.in

4

अनुवादक के गुण

अशोक कुमार प्रमाणिक

सारांश –

भारत में अनुवाद की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। अनुवाद की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी की भाषा। प्राचीन गुरू–शिष्य परम्परा के समय से 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो में भारतीय वाड्.मय में होता आ रहा है। गुरूकुल शिक्षा पद्धति में गुरू द्वारा उच्चरित मंत्रों को शिष्यों द्वारा दोहराये जाने को अनुवचन या अनुवाक् कहा जाता था, जो 'अनुवाद' के ही पर्याय है। महान वैयाकरणविद् पाणिनि ने अपने **अष्टाध्यायी** के एक सूत्र में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग किया है– "अनुवादे चरणाम्।"।

'अनुवाद' का मानव जीवन, समाज, साहित्य एवं संस्कृति में विशिष्ट स्थान है। वर्तमान में हम जो कुछ भी बदलाव देख रहे हैं, उसका एकमात्र कारण है– 'अनुवाद'। प्राचीन काल में सिर्फ भाषा का 'अनुवाद' होता था। परंतु कालांतर में संस्कृति व जीवन में भी अनुवाद होने लगा है। 'अनुवाद' एक परंपरा है। उत्तर की परंपरा दक्षिण में अनुवाद होने लगी है और दक्षिण की परंपरा उत्तर में अनुवाद होने लगी है। 'अनुवाद' शब्द वर्त्तमान समय में काफी महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट है।

'अनुवाद' शब्द दो शब्दों के योग से बना हैः– अनु+वाद। यह संस्कृत के 'वद्' धातु से बना हैं। जिसका व्युत्पतिलभ्य अर्थ होता है– बोलना या कहना। 'वद' धातु में 'घञ' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है, इसका अर्थ हुआ–कहने की क्रिया या कही हुई बात। 'वाद' शब्द में 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द बना है। 'अनुवाद' का शाब्दिक अर्थ है– 'किसी कही हुई बात के बाद कहना। आज एक भाषा से दूसरी भाषा में जाने का एक ही माध्यम है– अनुवाद। अनुवाद ही किसी अछूते भाषा से रूबरू कराता है, उसके भावों का रसास्वादन कराता है। अनुवाद परम सुख व आनंद देना का सबसे आसान और महत्त्वपूर्ण साधन है। यह एक परम सुखद संयोग है कि 'अनुवाद' शब्द हिन्दी के साथ–साथ असमिया, ओड़िया, कन्नड़, गुजराती, पंजाबी, बंगाली, मराठी और सिन्धी जैसी आधुनिक भारतीय भाषाओं में समान रूप से, समान अर्थ में व्यवहृत हो रहा है। तमिल, तेलुगु और मलयालम भाषाओं में यह **'अनुवादम'** रूप में प्रचलित है। कश्मीरी और पंजाबी में इसे **'तर्जुमा'** कहने का भी प्रचलन है। 'अनुवाद' शब्द को कवि कुल शिरोमणि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने 'अनुकथन' के रूप में रामचरितमानस में लिखा है–

"सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक समाज सोइ सरि सोई।–बालकाण्ड,40/311

अर्थात् कहे हुए को सुनकर पुनः पुनः कहते जाना ही अनुकथन है।

इस प्रकार **'कहे हुए को फिर से कहना'** या **'जाने–समझे हुए को दूसरे को समझाना'** अर्थ में अनुवाद शब्द का प्रयोग भारतीय वाड्.मय वेद, वेदांग, अष्टाध्यायी, निरक्त आदि में होता रहा है। यह एक ऐसा कार्य है या प्रक्रिया जिसमें एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाना होता है। **अनुवाद शास्त्र– पृष्ठ संख्या– 14**

अनुवाद से ही 'अनुवादक' शब्द बना है। जिसका काम है एक भाषा के भावों व विचारों को हुबहू दूसरी भाषा में परिणत करना। अनुवाद की वास्तविक प्रक्रिया को भाषा का एक जटिल प्रयोग कहा जा सकता है। दो भाषाओं पर समांनांतर ढंग से की जाने वाली यह प्रक्रिया अनुवादक से दोनों भाषाओं के प्रति विशेष प्रकार की दक्षता और जागरूकता की अपेक्षा रखती है। अनुवादक का कार्य स्त्रोतभाषा के पाठ को अर्थपूर्ण रूप से लक्ष्यभाषा में अन्दित करता है। एकाकी अनुवाद में वो अनुवादक अकेला ही होता है। संयोगात्मक अनुवाद में भी सम्पादन का काम अनुवादक को अकेले करना होता है। अतः अनुवादक के साथ अनेक दायित्व जुड़ जाते हैं और कार्य के सफल निष्पादन में उससे अनेक अपेक्षाएँ रहती है। '**अनुवाद एक कला ही नहीं आपितु विज्ञान भी है।**' निरंतर अभ्यास, अनुशीलन तथा अध्ययन आदि से इसमें कार्य कुशलता की पहचान होती है क्योंकि उसके सामने अनुवाद के समय दो भाषाएँ होती है और उन दोनों भाषाओं के स्वरूप तथा मूल प्रकृति एवं प्रवृत्ति का गहन अध्ययन, अनुशीलन करना अनुवादक का प्रथम कार्य होता है। किसी भी परिनिष्ठित अनुवाद में अनुवाद की भूमिका केन्द्रवर्ती और महत्त्वपूर्ण होती है। **"अगर अनुवाद कला है तो अनुवादक कलाकार और अनुवाद विज्ञान है तो अनुवादक एक वैज्ञानिक।"** किसी अनुवादक के सामने दोनों भाषाओं का ज्ञान होना और उसे अनुवादित करते समय व्याकरण शब्दों का चयन, भावों की उत्कृष्टता और विचारों की तटस्थता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसीलिए वरेरकर ने कहा है– **"लेखक होना आसान है, किन्तु अनुवादक होना अत्यंत कठिन।"** इसलिए अनुवादक में कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है और उसके दायित्व भी विशेष प्रकार के है। उसे स्त्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा पर अधिकार होने के साथ–साथ दोनों भाषाओं की प्रकृति एवं सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा परिवेश का भी सम्यक ज्ञान होना चाहिए। वर्तमान में अनुवादक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है और विभिन्न भाषाओं के साहित्य को दूसरी भाषा में परिणत/अनुदित कर उस भाषा में अभिरूचि जगाने का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। अनुवाद की श्रेष्ठता अनुवादक की योग्यता पर निर्भर है। अनुवादक को चाहिए कि वह अपनी भाषा की पाचन शक्ति में पुरा विश्वास है। इसी विश्वास के बल पर वह विदेशी भाषा के अतिप्रचलित शब्दों या विशिष्टार्थबोधक नवायांतित और नवकायित शब्दों को अपनी भाषा में स्वीकार कर सकेगा। पुनर्गठन के समय अनुवादक को अनूदित पाठ की संप्रेषणीयता पर ध्यान देना पड़ता है। वास्तव में अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषिक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत पद्यानुवाद और गद्यानुवाद होते हैं।

सफल अनुवादक मूल के निकट–से–निकट पहुँचने का प्रयास करता है। अनुवाद तो एक विकल्प है। वह मूल का स्थान ले

ही कैसे सकता है?अनुवाद को हम एक तरह से पूर्ति का सिद्धांत कह सकते हैं। इस संबंध में डॉ० बच्चन का मत है– **"अनुवाद मूल का स्थान नहीं ले सकता। मूल से परिचितों को अनुवाद हेय लगे तो अस्वाभाविक न होगा। मूल से अनभिज्ञों को अनुवाद से मूल की महत्ता का कुछ भी आभास मिल सकें, तो मै अपने श्रम को व्यर्थ न समझूँगा।''**

अनुवादक किसी मूल रचना के भावों व विचारों को दूसरी भाषा में हुबहू अनुदित करते हुए विशिष्ट उत्तेजना का भाव भर देता है। रॉबर्ट फ्रॉस्ट की कुछ पंक्तियों का हरविंशराय बच्चन जी ने अनुवाद किया है जिसमें मूल रचना है–

"The woods are Lovely, dark and deep,
But I have promises to Keep,
And miles to go before I sleep,
And miles to go before I sleep."

अर्थात्

"गहन सघन मनमोहक वन तरू मुझको आज बुलाते हैं,
किन्तु किये जो वादे मैंने, याद मुझे आ जाते हैं,
अभी कहाँ आराम 'वदा', यह मूक निमंत्रण छलना है,
अरे! अभी तो मीलों मुझको, मीलों मुझको चलना है।"

उपर्युक्त पंक्तियां हरिवंश राय बच्चन ने रॉबर्ट फ्रॉस्ट की पंक्तियों को भावानुवाद कर पाठकों को संदेश देकर रसास्वादन कराते हैं। अनुवादक का मूल उद्देश्य पाठकों को पढ़ने की इच्छा जागृत करना और उत्तेजना जगाना है। ''**भावानुवाद के साथ यह विचार जुड़ा है कि इसमें स्रोत भाषा के कथ्य से जुडे प्रत्येक शब्द का समानक ढुंढ़ने का प्रयत्न नहीं किया जाता, बल्कि उस कथ्य की बड़ी–बड़ी इकाइयों का 'भाव' ग्रहण करके उसे लक्ष्य भाषा में स्वतंत्र रूप से व्यक्त किया जाता है ताकि स्रोत भाषा के कथ्य में निहित सौंदर्य और उसकी प्रेरणा शक्ति को लक्ष्य भाषा में प्रभावशाली ढंग से उतारा जा सके।''– अनुवाद की विविध समस्याएं, पृष्ठ संख्या–07।**

अनुवाद, अनुवाद न लगे–यही अनुवाद की सुंदरता और अनुवादक का कौशल है। एक अनुवादक में निम्न गुणों का होना अतिआवश्यक है जिससे अनुदित रचना पुष्ट और चमत्कारिता का भाव पैदा करती है। वे बिंदुएँ है–

(क) बहुभाषा ज्ञान,
(ख) विभिन्न विषयों का ज्ञान,
(ग) अभिव्यक्ति कौशल,
(घ) शब्द–सामर्थ्य,
(ड.) भावों व विचारो की उत्कृष्टता,
(च) व्याकरणिक ज्ञान,
(छ) तटस्थ भाव,
(ज) व्यक्तिगत गुण,
(झ) गहरी सामाजिक प्रतिबद्धता,
(ञ) स्त्रोत–भाषा एवं लक्ष्य भाषा की सम्यक जानकारी,
(ट) सर्जनात्मक प्रतिभा,
(ठ) विषय में अभिरूचि,
(ड) बोधगम्यता एवं सम्प्रेषणीयता।

निष्कर्षः

एक अच्छे अनुवादक को उपर्युक्त बिंदुओ की जानकारी के साथ–साथ अपने विचारों को उन्मुक्त भाव से प्रकट करने की भी क्षमता होनी चाहिए। मूल लेखक के विचारों से असहमत होते हुए भी अनुवादक को उसी के विचारों को प्रकट करना पड़ता है। अतः अनुवादक को तभी सफलता मिलती है जब वह दोनों भाषाओं के शब्दों, मुहावरों, कहावतों और शक्तियों का ठीक–ठाक ज्ञान रखता है। इस प्रकार हम, कह सकते है कि सफल अनुवादक वही होता है जो उपर्युक्त बिंदुओं की जानकारी रखता है तथा पाठक के मन में पढ़ने का भाव जगाता है।

संदर्भ ग्रंथ–

(1) अनुवाद शास्त्र, पृष्ठ संख्या– 09,10 (सं० डॉ० बालेन्दुशेखर तिवारी)
(2) अष्टाध्यायी – पाणिनि
(3) रामचरितमानस, बालकाण्ड/40/311
(4) अनुवाद की विविध समस्याएँ, पृष्ठ संख्या –07, (ओमप्रकाश जाबा,)
(5) अनुवाद शास्त्र, पृष्ठ संख्या– 13,14,19,25 (सं० डॉ० बालेन्दुशेखर तिवारी)
(6) अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ संख्या– 70, 71, (सं. प्रो. दिलीप सिंह, प्रो. ऋषभदेव शर्मा)
(7) विकिपीडिया के साहित्य पृष्ठ से,
(8) सूचना साहित्यः अनुवाद की चुनौतियाँ–डॉ० ओ० वासवान,
(9) अनुवाद विज्ञानः स्वरूप एवं व्याप्ति–डॉ० मुरलीधर शहर
(10) अनुवाद प्रविधि– प्रो० सूर्यप्रकाश दीक्षित

अशोक कुमार प्रमाणिक
एम. ए. हिन्दी, (नेट)
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची
चलभाष–8862965694
ईमेल–pramanikashok38@gmail.com

5

वाल्मीकि रामायण में स्थापत्य कला

डॉ0 नीलमणि कुमार पाठक

सारांश –

आदिकाल से ही मनुष्यों ने कला–कौशल को यथावसर परिष्कृत किया है। मानव जाति के विकासक्रम में कला–कौशलों की उपादेयता असंदिग्ध है। कला विहीन मनुष्यों की तो भरतीय मनीषा में कठोर भर्त्सना की गई है।

भर्तृहरि ने तो साहित्य–संगीत–कला विहीन को साक्षात् पशु ही माना है।

''साहित्य–संगीत–कलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।''

स्थापत्य के क्षेत्र में रामायण काल में भरपूर प्रगति हुई थी। नगरों, दुर्गों और प्रासादों के वाल्मीकिकृत वर्णन से तो यह स्पष्ट है कि स्थापत्यविज्ञान का एक व्यवस्थित एवं उन्नत रूप स्थिर हो चुका था। किष्किन्धा कांड के 51वें सर्ग में इस विषय में एक कथा आई है कि दानवों के स्थपति मय ने तपस्या करके ब्रह्मा से शुक्राचार्य की शिल्प विद्या का समस्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था, साथ ही, उसे शुक्र के सारे उपकरण भी मिल गए थे। मत्स्य पुराण में वर्णित है कि मय और शुक्र किसी समय वास्तु–विद्या के अठारह आचार्यों में अन्यतम थे। रामायण में मय और विश्वकर्मा के संबंध में जो उल्लेख आये हें उनसे ज्ञात होता है कि मय दक्षिण भारत का शिल्पी था और विश्वकर्मा उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी भारत तथा लंका का।

परवर्ती शिल्प शास्त्रों में आनेवाले पारिभाषिक या शास्त्रीय शब्द रामायण में भी प्रयुक्त हैं। स्थपति, वर्धकी और तक्षक – ये शब्द रामायण में भवन–निर्माण से जुड़े विविध प्रकार के कारीगरों के लिए आये हैं। बाद में वास्तुशास्त्रों में इनका इन्हीं अर्थों में व्यवहार किया गया है।

राजमहलों को प्रासाद, विमान, हर्म्य या सौध कहा जाता था। कुछ वर्णनात्मक स्थलों पर इन नामों का एकसाथ प्रयोग हुआ है, जिससे सूचित होता है कि ये नाम पर्यायवाची नहीं थे, प्रत्युत भिन्न–भिन्न प्रकार के भवनों के बोधक थे। प्रासादों को 'सप्तभौम', 'अष्टभौम', 'अनेकभौम' इत्यादि नामों से पुकारा गया है। भौम का अर्थ मंजिल या तल्ला लिया गया है, इससे संकेत मिलता है कि 'प्रासाद' शब्द का प्रयोग अनेक मंजिलों वाले महलों के लिए होता था। प्रासाद शिखरों से या गुंबदों से अलंकृत होते थे और एक विशिष्ट प्रकार के शिखर को 'विमान' कहा जाता था, जैसा कि ''प्रासादेषु विमानेषु'' वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड 2.88.5 से प्रतीत होता है। सुधा अर्थात् चूने से लिपे रहने के कारण कुछ भवन सौध कहलाते थे। हर्म्यो का ठीक–ठीक प्रकार रामायण में स्पष्ट नहीं होता है। महलों में कई स्तम्भ हुआ करते थे, सहस्र स्तम्भोवाले प्रसादों का रामायण में दो स्थलों पर सुंदरकांड ''मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थिरं कैलासपाण्डुरम्''5.15.16 और युद्ध कांड ''यस्यां स्तम्भसहस्रेण प्रासादः समलंकृतः,कैलासशिखराकारो दृश्यते खमिवोल्लिखन्।।' 6.39.22 उल्लेख हुआ है। 'पदम्' नाम के भवन कमलाकार होते थे। जिन मकानों में पूरब की ओर द्वार नहीं होता था वे 'स्वस्तिक' कहलाते थे, और जिनमें दक्षिणाभिमुख द्वार नहीं होता था, वे 'वर्धमान' (5.4.8) कहलाते थे। लंका में वज्र और अंकुश के आकार के भी गृह बने थे।

मकानों में तोरण और चौक (कक्ष्या) बने होते थे। भवनों के अलंकरण में गवाक्षों (खिड़कियों) का प्रमुख स्थान था, उनपर सोने–चाँदी की जालियाँ मढ़ी रहती थीं। मकानों के ऊपर शिखरों और श्रृंगों के अतिरिक्त चन्द्रशालाएँ बनी होती थीं। रावण के महल में इनका आकार अर्धचंद्र या पूर्णचन्द्र के समान था। छत के नीचे कबूतरों तथा अन्य पक्षियों के रहने के लिए बनाए गए स्थान ''विटंक'' कहलाते थे। 'वलमी' गोल मुंडेर को कहते थे। चढ़ने की सीढ़ियाँ 'सोपान' कहलाती थी। प्रासादों के स्तंभ मणि–मोतियों से अलंकृत रहते थे।

राजमहलों के द्वारा युक्त अनेक कक्ष्याएँ (चौक) होती थी। दशरथ का राजभवन पाँच कक्ष्याओं वाला था। इनमें से तीन कक्ष्याओं के भीतर राम रथ पर चढ़कर चले गए थे, फिर दो कक्ष्याओं तक पैदल गए।

''स कक्ष्या धन्विभिर्गुप्तास्तिस्रोऽतिक्रम्य वाजिभिः
पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नरोत्तमः।।

– वा०रा० आयोध्या कांड 2/17/20

दशरथ अपने प्रासाद के ऊपरी तल्ले में रहते थे। राम उनके दर्शनार्थ प्रासाद के ऊपरी भाग में चढ़े थे। ''प्रासादमारूरोह'' (2.3.31)। इसी प्रकार वशिष्ठ भी प्रासाद पर चढ़कर ही राजा दशरथ से मिले थे (प्रसादमधिरुह्य 2.5.22)

युवराज राम का भवन दशरथ के राजभवन से भिन्न था, फिर भी उसका निर्माण बहुत कुछ राजभवन के ढंग ही पर था। राम के भवन में तीन कक्ष्याएँ थी। राम के भवन में वशिष्ठ का रथ तीसरी कक्ष्या के भीतर तक चला गया था।

''तिस्रः कक्ष्या रथेनैव विवेश मुनिसत्तमः'' –
वा०रा० 2.5.5

प्रथम कक्ष्या अथवा बाह्य कक्ष्या में सबसे आगे द्वारपद या प्रधान द्वार था। बीचवाली या मध्य कक्ष्या में राजा के प्रीति पात्रों, अश्वों, गजों आदि के लिए स्थान था। तीसरी कक्ष्या में राम–सीता का निजी वासगृह था, जिसे ''प्रविविक्तकक्ष्या'' कहा गया है। वहाँ बूढ़े ''स्त्र्यध्यक्ष'' नामक प्रतीहार हाथ में वेत्रदण्ड लिये तैनात थे और सेवासक्त युवक शस्त्र धारण किये उसकी रक्षा पर नियुक्त थे।

कौसल्या का महल सात कक्ष्याओं वाला था। पाँच कक्ष्याओं के बाद अन्तःपुर आता था जिसमें दो और कक्ष्याएँ होती थीं। वन से लौटकर सुमन्त्र को कौसल्या के महल में दशरथ से मिलने के लिए साथ कक्ष्याएँ पार करनी पड़ी थी।

''कक्ष्याः सप्ताभिचक्रम महाजनसमाकुलाः – वा०रा० 2.37.17

इसी प्रकार सुग्रीव के राजमहल में लक्ष्मण भी सात कक्ष्याएँ पर करने के बाद ही विस्तीर्ण अन्तःपुर में पहुँचे थे–

स सप्त कक्ष्या धर्मात्मा यानासनसामावृत्ताः
ददर्श सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तः पुरं महत्। – वा०रा० 4.33.19

सुंदरकांड के छठे और सातवें सर्ग में रावण के राजभवन का विस्तृत वर्णन है। उस समस्त राजकुल को 'आलय' कहा गया है। उसके मध्य भाग में रावण का भवन था। उसमें कई प्रासाद थे। प्रासाद के ऊपर कई ताल ऊँची बर्फ के समान अटारी थी, जिस पर से उसने वानरी सेना का निरीक्षण किया था।

आरूरोह ततः श्रीमान् प्रासादं हिमपाण्डुरम्
बहुतालसमुत्सेषं रावणोऽथ दिदृक्षया।।

अशोक वाटिका स्थित रावण का चैत्य प्रासाद गोलाकार और बहुत ऊँचा था। इस चैत्य प्रासाद से हनुमान् ने एक सुवर्णखचित सौ घुमावों वाला खंभा उखाड़कर राक्षसों को भयभीत करने के लिये हवा में जोर से घुमाया था।

प्रासादस्य महांस्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम्
उत्पादयित्वा वेगेन हनुमान् मारूतात्मजः
ततस्तं भ्रामयामास शतवारं महाबलः। – वा०रा० 5.43. 17, 18 Â

उत्तरकांड में वर्णित कुम्भकर्ण का महल एक योजन चौड़ा और दो योजन लंबा था। वह बड़ा मनोहर, सुखदायी और सब ऋतुओं में रहने लायक था।

धर्माचरण और कर्मकांड के निमित्त निर्मित भवन भी कलापूर्ण होते थे। इस प्रकार के भवनों में यज्ञशाला, अग्निशाला, देवायतन और चैत्यों के नाम उल्लेखनीय है। यज्ञशालाएँ प्रायः अस्थायी रूप से बनाई जाती थीं, पर कभी–कभी वे ईंट की बनी रहती थी। दशरथ के अश्वमेधयज्ञ में अठारह–अठारह ईंटों से छः गुरुडाकार वेदियाँ बनाई गईं थीं। उस समय के देवालय कैसे बनाये जाते थे, इसका कोई संकेत नहीं मिलता। यज्ञीय यूपों का शिल्पीगण कुशलता से निर्माण करते थे, उनके आठ पहलू होते थे।

रामायण में यद्यपि स्थापत्य की अनेक श्रेष्ठ कलाकृतियों के वर्णन मिलते हैं तथापि समृद्ध कवि कल्पना में लिपटे रहने के कारण यह पता नहीं चलता है कि इन भवनों की निर्माण सामग्री कैसी थी?कवि सर्वत्र मणि जटित वातायनों, सोपानों, शिखरों, स्फटिक के फर्शो तथा स्वर्ण–रजत की दीवारों की प्रशंसा में बह गए हैं। दो–तीन स्थलों पर अन्य निर्माण सामग्री का भी उल्लेख हुआ है। भवनों और वेदियों के निर्माण में ईंटों (इष्टकाः) तथा चूने (सुधा) के उपयोग की तरफ संकेत किया गया है। दशरथ के अश्वमेघ समारोह में हजारों ईंटों से राजोचित निवास–स्थल बनाए गए थे।

निष्कर्षः

इस प्रकार यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि वाल्मीकिरामायण कालीन समाज स्थापत्य कौशल से पूर्णतया परिचित था।

संदर्भ–सूची

1. वाल्मीकि रामायण खण्ड (1) गीताप्रेस, गोरखपुर
2. वाल्मीकि रामायण खण्ड (2) गीताप्रेस, गोरखपुर
3. रामायण कालीन समाज, लेखक– शांतिकुमार नानू राम व्यास, सस्ता साहित्य मंडल
4. रामायण कालीन संस्कृति, लेखक– शांति कुमार नानू राम व्यास, सस्ता साहित्य मंडल

डॉ० नीलमणि कुमार पाठक
महावीर स्थान, मौलाबाग
आरा, भोजपुर, 802301
मो.नं. 8102327064

6

नवजागरण प्रणेता : कबीर

डॉ. सुनीता सिंह

सारांश –

मध्ययुग में भक्ति आंदोलन एक महान सांस्कृतिक घटना मानी जाती है। भक्ति काव्य का विकास इस युग की सबसे बड़ी देन है। लगभग तीन सौ वर्श से भी ज्यादा समय तक चले इस भक्ति आंदोलन में भक्ति की जो अन्तर्धाराएं प्रवाहित हुईं इनमें निर्गुण भक्ति का अपना विशेष महत्व है। कबीर निर्गुण पंथ के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण पंथ सहज भक्ति का मार्ग प्रवर्तित करता है। जिसमें वर्ग, वर्ण, धर्म, जाति और सम्प्रदाय का कोई महत्व नहीं होता–"जाति पाति पूछे न कोइ, हरि को भजे सो हरि का होई"।

मध्ययुग में भक्ति आंदोलन एक महान सांस्कृतिक घटना मानी जाती है। भक्ति काव्य का विकास इस युग की सबसे बड़ी देन है। भक्ति आंदोलन के उदय की व्याख्या साहित्यकारों तथा इतिहासकारों ने अपने–अपने ढ़ंग से की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"भक्ति द्राविड़ी ऊपजी लाए रामानन्द"। भक्ति का स्रोत दक्षिण भारत से धीरे–धीरे उत्तर भारत की ओर आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति आंदोलन का प्रारम्भ हिन्दुओं की पराजित मनोवृत्ति को नहीं मानते। वे कहते हैं–"मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा उमड़ना था तो पहले सिंध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था पर हुई दक्षिण में।"

भक्ति आंदोलन की परंपरा में चैतन्य महाप्रभु, रामानुजाचार्य, संत कबीर, संत तुकाराम आदि शंकराचार्य और संत रविदास आदि हैं। लगभाग तीन सौ वर्श से भी ज्यादा समय तक चले इस भक्ति आंदोलन में भक्ति की जो अन्तर्धाराएं प्रवाहित हुईं इनमें निर्गुण भक्ति का अपना विशेश महत्व है। सगुण तथा निर्गुण धाराएं समानांतर चलती रही आगे चलकर निर्गुण धारा दो शाखाओं में बंट गई। एक शाखा ज्ञानाश्रयी तथा दूसरी शाखा प्रेममार्गी के रूप में प्रकट हुई। ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत रामकाव्य और कृश्णकाव्य हैं। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों को संत कवि कहा जाता है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर हैं। कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण पंथ सहज भक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। जिसमें वर्ग, वर्ण, धर्म, जाति और सम्प्रदाय का कोई महत्व नहीं होता–"जाति पाति पूछे न कोइ, हरि को भजे सो हरि का होई"।

लोकधर्म संत साहित्य का प्राण तत्व है। कबीर स्वभावतः संत थे, लेकिन प्रकृति से उपदेशक संग्रहवाद के बजाय अपरिग्रह को महत्व देते हैं। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत का सम्बन्ध 'शांत' से माना है और इसका अर्थ निरुपित किया है– निवृत्ति मार्गी या वैरागी। सामान्यतः सदाचार के लक्षण से युक्त व्यक्ति को संत कहा जाता है। जो आत्मोन्नति एवं लोकमंगल से जुड़ा हो। इस अर्थ में अगर देखें तो कबीरदास भक्तिकाल के महान कवि, समाज सुधारक थे जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। वर्ण भेद जैसी परम्पराओं का खण्डन किया। धर्मनिपेक्ष, लोकतांत्रिक भारत के लिए व आदर्श समाज के लिए कबीर की वाणियों से संदेश मिलते हैं।

कबीर अपने समय के क्रान्तिकारी प्रवक्ता थे। उन्होंने आडम्बरों, कुरीतियों, जड़ता, गूढ़ता एवं अंधविश्वासों का तर्कपूर्ण खण्डन किया। कबीर का अपने युग के प्रति यथार्थ बोध था। उन्होंने हर एक परम्परा, रूढ़ कुरीति तथा पाखण्ड को यथार्थ के धरातल पर खारिज़ किया। अबुलफज़ल ने आइने अकबरी में लिखा है कि–"कबीर ने समाज की खराब रीति–रिवाज़ों को नकार दिया।"कबीर ने समाज सुधार के लिए कोड़े खाए तो व्यंग्य तथा हँसी–ठिठौली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की। कबीर के साहित्य की ही देन है कि इतने वर्शों बाद भी हम सभी उनकी रचनाओं में अपनी समस्याओं का हल ढूंढते हैं। कबीर की साहित्य की प्रासंगिकता है, साहित्य चाहे किसी भी काल का हो यदि वह वास्तविक साहित्य है तो सदा ही प्रासंगिक व पठनीय रहेगा।

दूसरा कथ्य संदेश है, कबीर ने अपनी रचनाओं के द्वारा एक कथ्य और संदेश देने का प्रयास किया जो आज भी प्रासंगिक है और इन्हीं कथ्य संदेशो के द्वारा कबीर प्रासंगिक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह ने अपनी–अपनी पुस्तक क्रमशः हिन्दी साहित्य का इतिहास, कबीर, दूसरी परंपरा की खोज नामक पुस्तकों में कबीर की पुनः प्रतिश्ठा में काफी कुछ लिखा है। कवि गुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर की रचना "वन हंड्रेड पॉयम्स ऑफ कबीर" में कबीर को स्थापित किया है। इस पुस्तक में संत कबीर दास जी के दोहों का अंग्रेजी में अनुवाद है। "वन हंड्रेड पॉयम्स ऑफ कबीर" अपने पहले संस्कण के समय से लगातार छप रही है तथा इसमें पश्चिम में कबीर की लोकप्रिय छवि स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान है। रविन्द्रनाथ टैगोर व्यक्ति और परब्रह्म के बीच सम्बन्ध पर बात करते हुए अक्सर कबीर की सहायता लेते हैं।

कबीर मूलतः आध्यात्मिक भक्त थे, सन्त थे। कबीर का

सारा संघर्ष आशक्ति और तृश्णा के विरुद्ध था। यही बात उन्हें सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक बनाती है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी कबीर को समाज–सुधारक नहीं मानते थे। उनके अनुसार कबीर पहले कवि थे, व समाज सुधारक बाद में। जिस समाज के लोगों को वह सम्बोधित करते थे, वे समाज के हाशिये पर खड़े लोग थे। कबीर की सारी लड़ाई इस अन्याय के खिलाफ थी। कविता के माध्यम से कबीर समाज की बुराईयों पर जो चोट करते थे, वह समाज सुधार का ही हिस्सा हैं। आधुनिक प्रचलित तरीकों की दृश्टि से समाज सुधार भले ही न कहलाए लेकिन कबीर की कविताओं, दोहों, पदावलियों में समाज सुधार की भावना से मुक्त आध्यात्मिक भूमि दिखाई देती है।

कबीर की कविताओं में प्रगतीशीलता का तत्व प्रधान रूप से विद्यमान है। आचार्य शुक्ल ने कबीर को कवि न मानकर समाज–सुधारक माना है। जबकि आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें कवि माना है और यह सिद्ध किया है कि समाज सुधार उनकी कविता और कवित्व क्षमता के 'बाई प्रोडक्ट' के मानिन्द हैं। कबीर के साहित्य की सार्थकता कितनी है, यह इस शोध पत्र का केन्द्र बिन्दु है। वर्तमान दौर में कबीर एक साहित्यिक धर्म–गुरू के रूप में ज्यादा दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने अपनी पूरी जिन्दगी समाज में हाशिये पर पड़े लोगों को युग्म धारा में लाने हेतु संघर्षों में बिता दिया। ऊर्दू के प्रगतीशील शाभर अली सरदार जाफरी के अनुसार हमें आज भी कबीर के नेतृत्व की जरूरत है, उस रोशनी की जरूरत है जो इस सन्त के दिल से पैदा हुई थी आज पूरी आज़ाद हो रही है। विज्ञान की असाधारण प्रगति ने मनुष्य का प्रभुत्व बढ़ा दिया है। उद्योगों ने उसके बाहुबल में वृद्धि कर दी है। फिर भी वह तुच्छ है, संकट ग्रस्त है, दुःखी है, वह रंगों में बंटा हुआ है, जातियों में विभाजित है, आपस में धर्मों की दीवारें खड़ी हुई हैं। उपरोक्त पंक्तियों को अगर देखें तो भक्ति काल के समय की परिस्थिति और आज के समय में कबीर की कितनी जरूरत है। विशय और सांकेतिक व्यंजनाओं के कारण कबीर की वाणियाँ आज के पाठकों को झकझोरती हैं।

"वाणी ऐसी बोलिए, मन का आपा खोई" आज के भौतिकवादी युग में मानव जाति वाणी की शीतलता और आपा दोनों ही प्रतिदिन खोते जा रहे हैं। कबीर की सामाजिक दर्शना आज भी उतनी ही प्रासंगिक लगती है जितनी कि पहले थी। कबीर की लोक चिन्ता स्वीकृत पाखण्डी धर्मों से अलग एक नई विचारधरा को स्वीकार करने तथा नए मार्गों का अनुसंधान करने के लिए थी। अपने समय के श्रेष्ठ जनवादी कवि थे। समाज पर कबीर ने व्यंग्य भी किए। कई रूढ़ियों, परम्पराओं, धार्मिक आडम्बरों पर कबीर ने अपने शब्द बाण से प्रहार किए। हिन्दुओं की मूर्ति पूजा, मुस्लिमों का नमाज आदि का उन्होंने कट्टर विरोध किया। कबीर की निर्भिकता, बड़बोलापन और औजपूर्ण वाणी ने मृतप्रायः लोगों में प्राणों का संचार किया। कबीर ने मनुष्य की मनुष्यता को सर्वश्रेष्ठ माना है।

आज के परिवेश में कबीर का आन्धड़पन प्रासंगिक है। उनकी फटकार व पुचकार में वह शक्ति विद्यमान है जो साधारण जनमानस को आर्कषित करती है। कबीर के उपदेश, उनकी शिक्षाएं, समाज को एकत्र करने का काम करती हैं। वे लोगों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने को कहते हैं। पूजा पद्धति से बाहर निकलने को कहते हैं। कबीर ने मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना माना है। उन्होंने सभी को एक ईश्वर की सन्तान माना है। कबीर ने मनुष्य को विवेक और बुद्धि से सीखने का मार्ग बतलाया है। वे कहते हैं–"कबीरा खड़ा बाज़ार में, सबकी चाहे खैर, ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर" उनकी दूरदर्शिता इस बात में प्रकट होती है कि उन्होंने समय से आगे की बात कही है। सामुदायिक दंगे, धार्मिक भेदभाव की ––– को कबीर ने समझा लिया था। शायद इसलिए उन्होंने एकता पर बल दिया। आज भी समाज इन मानसिक बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। आज भी कबीर जैसे चिन्तकों की जरूरत है।

"चलती चाकी देखि के, दिया कबीरा रोय, दुई पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय" कबीर की सामाजिक चिन्तन की सबसे महत्वपूर्ण विशेशता है कि उनमें एक अद्भुत सन्तुलत है जो किसी भी रचनाकार की लेखनीय ईमानदारी का उदाहरण है पर उससे भी बड़ी बात है उनका मनुश्य होना। उनकी आत्म–पीड़ा, लोक–पीड़ा और लोकानुभूति से निश्पन एक ऐसी झटपटाहट है जो उनकी जीवन–साधना का अंग बन गई तथा जिसमें निश्पान कर अमृत बांटने का सन्देश है। जो शताब्दियों से दबी–कुचली मानवता के लिए लोक–वेद का मंत्र बन गये। इस अर्थ में कबीर गरलपायी हैं। कबीर ने भेदभाव की समस्त सीमाओं को तोड़कर भक्त के रूप में जिस आदर्श मानव को सामने रखा है वह मानव व्यक्तित्व के विकास की सम्पूर्ण संभावनाओं को निःशेश कर उसे ईश्वरत्व के स्तर पर पहुँचा देने वाला है। इस रास्ते में जो भी चीज़ उन्हें बाधक लगी, उस पर अत्यन्त सीधी सपाट भाषा मे वे तीखी चोट करते हैं।

कबीर की कविता प्रायः सम्बोधन की कविता है। उसमें सम्बोधन के तीन स्तर हैं। प्रथम स्तर पर कबीर की कविता "अवधू" अथवा "अवधूत" को सम्बोधित है तो दूसरे स्तर पर "पाँडे" अथवा "पंडित", "काजी" और "मुल्ला" को इसी प्रकार तीसरा स्तर जनता को सम्बोधित कविता हैं जहाँ सम्बोधन के शब्द हैं–"साधु" और "संतों"। व्यंग्य करने में उनका कोई साथी नहीं है। पंडित हो या काज़ी, अवधू हो या जोगिया, मुल्ला हो या मौलवी सभी को वे अपने व्यंग्य के निशाने पर रखते हैं।

भाषा पर कबीर का ––– अधिकार था। अतः वे जिस बात को जिस रूप में प्रकट करना चाहते थे, उसी रूप में भाषा से कहलवा देते थे। कबीर के व्यक्तित्व के सामने भाषा कुछ असहाय सी लगती है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'भाषा का डिक्टेटर' कहा है।

"एक ही ज्योति सकल घअ व्याप्त,
दूजा तत्व न कोई।
कहे कबीर सुनो रे सन्तों,
भटकि मरै जनि कोई।।"

कबीर ने नवमानववाद की स्थापना के लिए प्रयास किया। सभी धर्मों, पंथों, मत–मतांतरों को खारिज कर वे एक तत्व पर जोर दे रहे थे। जिसे कुछ विद्वान एकेश्वरवाद की संज्ञा दे रहे थे, कुछ निर्गुणवाद की। लेकिन सच्ची मायने में यह अनुभव पर आधारित नया ज्ञान था जिसे अनेक विद्वान ज्ञानमार्ग का नाम देते हैं। इसी कारण कबीर कहते हैं–"हरि है खांड रेतु महि बिखरी, हाथी चुनि न जाई, कहि कबीर गुरि भली बुझाई, कीटी होई कै खाई"अर्थात् हरी 'खांड' की तरह है जो संसार रूपी रेत में बिखरा हुआ, फैला हुआ मौजूद है। अहंकार से उन्मत रूपी हाथी उसे नहीं चुन सकता। कबीर का कहना है कि अपनी सहज और सूक्ष्म शक्ति से कीट की तरह या चींटी की तरह उस खांड को पाया जा सकता है। अर्थात् ईश्वर तो सर्वत्र है, सर्वज्ञ है। कबीर ने ईश्वर तत्व और मानव प्रेम दोनों को अभिन्न माना है। ईश्वर को पिता रूप, माता व मित्र के रूप में उन्होंने माना है। कबीर ने जाति प्रथा और वर्णाश्रम व्यवस्था पर चोट किया है–"यह जग अंधा, मैं केहि समझावो"।

निश्कर्श

कबीर ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की। उन्होंने धर्म, सहिष्णुता, कर्मयोग, गुरू सम्मान, प्रेम, मानवता, आत्मा की पवित्रता, दीन–दुखियों की सेवा, नैतिकता के पालन को मानवीय कर्त्तव्य माना है। 'माटी कहे कुम्हार से' के द्वारा सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। कबीर सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे। उन्होंने समाज को चेताया निर्बल को मत सताओ नहीं तो उसकी हाय लगेगी।

"निर्बल को न सताईये, जाकि मोटी हाय।
मुई खाल की श्वांस सौ, लौह भस्म हो जाय।।"

आज 21वीं सदी के विश्व में भारत जहाँ अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, वहाँ स्थानीय समस्याएँ, नस्लवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद के दौर में एक समग्र भारतीय व्यक्तित्व के रूप में कबीर हमारे लिए नक्षत्र के समान हैं। डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के लिए लिखा है–''वे मुसलमान नहीं थे, हिन्दू हो कर भी हिन्दू नहीं थे, वैश्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे, अतः वे भगवान के नरसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे''। नरसिंह की भाँति वे असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिन्दु पर अवतरित हुए थे, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर भक्ति का मार्ग।

निष्कर्ष

कबीर नवजागरण के प्रणेता थे। वे सत्य को ही धर्म मानते थे। भगवद् प्रेम को ही श्रेष्ठ मानते थे, वाणी की शीतलता पर बल देते थे। उनका काव्य युगों–युगों तक प्रेरणा देता रहेगा। आज के दौर में भी वे अति प्रासंगिक हैं। वे एक सच्चे विश्वप्रेमी थे। कबीर को जागरण युग का अग्रदूत कहा जाता है। डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि– साधाना के क्षेत्र में वे युग–युग के गुरू थे। उन्होंने संत काव्य पथ प्रदर्शन कर क्षेत्र में नव–निर्माण किया। कबीर अपने जीवन में प्राप्त की गई स्वयं की अनुभूति को ही काव्य में ढाल देते थे। उनका कहना था–''मैं कहता आँखन देखी, तू कहता कागद की लेखी''। कबीर के विचार उपनिशदों, भगवान बुद्ध की मान्यताओं, शैवों के विचारों और मध्यकालीन सिद्धों की शिक्षाओं के सार हैं। कबीर की साधना पद्धति उनकी भक्ति और उनके समाज सुधार के विचार उस समय भी महत्वपूर्ण थे आज भी महत्वपूर्ण हैं। आज भौतिकवादी युग में कबीर के विचार और भी महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ –

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
3. हजारी प्रसाद दिवेदी, कबीर
4. डॉ0 युगेश्वर, कबीर षोजक
5. डॉ0 धर्मवीर, कबीज बाज भी कबीर कपोत भी

डॉ. सुनीता सिंह
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक
Email Address:- sksinghsingh4146@gmail.com

7

पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक चिंतन

डॉ0 शैलेन्द्र कुमार सिंह

सारांश –

पं0 दीनदयाल उपाध्याय प्रखर विचारक उत्कृष्ट संगठनकर्त्ता और सत्यनिष्ठा को महत्व देने वाले प्रखर विचारक थे। वे जीवन पर्यन्त अपनी व्यक्तिगत ईमानदारी को वैचारिक मार्गदर्शन और नैतिक प्रेरणा के स्त्रोत के रूप में मानते रहे। भारतीय जनसंघ नेता ने मजहब और सम्प्रदाय के आधार पर भारतीय संस्कृति को अलग करने वालों को देश के विभाजन को जिम्मेदार मानते थे। वे हिन्दू राष्ट्रवादी तो थे ही इसके साथ ही साथ भारतीय राजनीति के पुरोधा भी थे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय की मान्यता थी कि हिन्दू कोई धर्म या सम्प्रदाय नहीं है, बल्कि भारत की राष्ट्रीय संस्कृति है। इनकी पुस्तक 'एकातममानववाद' (इंटीगरल ह्यूमेनिज्म) में साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों की समालोचना की है। लखनऊ में राष्ट्रधर्म प्रकाशन संस्थान की स्थापना की और अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए मासिक पत्रिका 'राष्ट्रधर्म' शुरू किया। बाद में 'पांचजन्य' साप्ताहिक तथा स्वदेश दैनिक की शुरूआत की।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 21 सितम्बर, 1951 को उत्तरप्रदेश में एक राजनीतिक सम्मेलन आयोजित किया और नई पार्टी की राज्य इकाई भारतीय जनसंघ की नींव डाली। पंडित जी इसके सक्रिय शक्ति के रूप में थे। कानपुर विश्वविद्यालय से बी0 ए0 पास किया। सिविल सेवा परीक्षा उत्तीर्ण की, लेकिन उसे त्याग दिया। 1937 में राष्ट्रीय स्वयं सेवा संघ से जुड़ गये। 1942 में पूरी तरह राष्ट्रीय स्वयं संघ के लिए कार्य करना शुरु किया। राष्ट्र धर्म, पांचजन्य, स्वदेश जैसी पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। 1951 में श्यामा प्रसाद मुखर्जी के जनसंघ की स्थापना के समय उत्तरप्रदेश के महासचिव बने। इनका राजनीतिक जीवन दर्शन था– मानव समूह एक जन है।

जीवन परिचय

दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म 25 सितम्बर, 1916 को ब्रज के पवित्र क्षेत्र मथुरा जिले के छोटे से गांव नगला चन्द्रभान में हुआ था। पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय था। होनहार बिखान के होत चीकने पात कहावत को दीनदयाल उपाध्याय ने चरितार्थ कर दिखाया। प्रारम्भिक जीवन की कठिनाइयों को झेलते हुए भी हाई स्कूल की परीक्षा में प्रथम आये बल्कि कई विषयों में नया रिकार्ड भी बनाया। पंडित जी विलक्षण बुद्धि सरल व्यक्तित्व एवं नेतृत्व के अनगणित गुणों के स्वामी थे। दीनदयाल जी की मृत्यु बावन वर्ष की अवस्था में हुई थी। 11 फरवरी, 1968 को मुगल सराय के पास रेलगाड़ी में यात्रा करते समय हुई थी। हम ऐसे महान नेता को सतसत नमन करते हैं।

जीवन संघर्ष

पं0 जी बेसिक ट्रेनिंग (बी0 टी0) करने के लिए प्रयाग चले गये और प्रयाग में उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की प्रतिनिधियों में भाग लेना जारी रखा। बेसिक ट्रेनिंग पूरी करने के बाद पूरी तरह से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्य में जुट गये और प्रचारक के रूप में जिला लखमीपुर (उ0 प्र0) चले गए। 1955 में उत्तरप्रदेश में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रांतीय प्रचारक बन गये।

देश सेवा

पंडित जी घर गृहस्थी की तुलना में देश सेवा को अधिक श्रेष्ठ मानते थे। ये देश सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। उन्होंने कहा था हमारी राष्ट्रीयता का आधार भारत माता हैं। केवल भारत ही नहीं माता शब्द हटा दीजिये तो भारत केवल जमीन का टुकड़ा मात्र बनकर रह जायेगा। पंडित जी ने अपना जीवन पूरी रचनात्मकता और विश्लेषणात्मक गहराई से जीया है। पत्रकारिता जीवन में ये प्रारम्भ में पॉलिटिकल डायरी नामक स्तंभ लिखा करते थे। पंडित राजनीतिक लेखन को भी दीर्घकालिक विषयों से जोड़कर रचना कार्य को सदैव उपयोगी बना दिया।

राष्ट्रधर्म का प्रकाशन

दीनदयाल ने लखनऊ में राष्ट्र धर्म प्रकाशन संस्थान की और अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए एक मासिक पत्रिका राष्ट्र धर्म शुरू किया था। बाद में उन्होंने पांचजन्य (साप्ताहिक) तथा स्वदेश (दैनिक) की शुरूआत की। सन् 1950 में पूर्व मंत्री डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने नेहरू लियाकल समझौते का विरोध किया और मंत्रिमण्डल के अपने पद से त्याग पत्र दे दिया तथा लोकतांत्रिक ताकतों का एक साझा मंच बनाने के लिए वे विरोधी पक्ष में शामिल हो गये। डॉ0 मुखर्जी ने राजनीतिक स्तर पर कार्य को आगे बढ़ाने के लिए निष्ठावान युवाओं को संगठित करने में श्रीगुरु जी से मदद् मांगी।

सर्वोच्च अध्यक्ष

पं0 दीनदयाल जी की संगठनात्मक कुशलता बेजोड़ थी। 1968 में पार्टी के सर्वोच्च अध्यक्ष पद पर बिठाया गया। दीनदयाल जी इस महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को सम्भालने के पश्चात् जनसेवक का संदेश लेकर दक्षिण भारत गये।

जनसंघ के निर्माता के रूप में :

जनसंघ के राष्ट्रीय जीवन दर्शन के निर्माता दीनदयाल जी के उद्देश्य स्वतंत्रता की पुर्नसंरचना के प्रयासों के लिए विशुद्ध भारतीय तत्त्व दृष्टि प्रदान करना था। उन्होंने भारतीय सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानवता जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी। उनका विचार था– स्वातं=य के इस युग में मानव कल्याण के लिए अनेक विचारधारा को पनपने का अवसर मिला है। इसमें समाजवाद, पूँजीवाद, अन्त्योदय, सर्वोदय आदि मुख्य हैं।

दीनदयाल जी के राजनैतिक जीवन दर्शन का पहला सूत्र है– भारत में रहने वाले और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन है। उसकी जीवन प्रणाली कला, साहित्य, दर्शन सब भारतीय संस्कृति है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति है। इस संस्कृति में निष्ठा रहे तभी भारत एकात्म रहेगा।

उपाध्याय जी पत्रकार थे, चिन्तक थे और लेखक भी थे। वह भारतीय राजनीति को जिस धारा में ले जाना चाहते थे वह धारा हिन्दुतव की थी। इनकी प्रमुख पुस्तकें – (1) दो योजनाएँ (2) भारतीय डायरी (3) भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन (4) सम्राट चन्द्रगुप्त (5) जगद्गुरू शंकराचार्य और (6) एकात्ममानववाद (7) राष्ट्र जीवन की दिशा।

पत्रकारिता व लेखन

श्री भाऊराव देवरस से प्रेरणा पाकर सन् 1947 में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने लखनऊ में "राष्ट्रधर्म प्रकाशन" स्थापित किया जिसके अतर्गत मासिक पत्रिका "राष्ट्रधर्म" प्रकाशित एवं प्रसारित की जाने लगी, बाद में "पांचजन्य" साप्ताहिक और दैनिक समाचार पत्र "स्वदेश" का भी प्रकाशन यहाँ से हुआ, प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य हिन्दू विचारधारा को बढ़ावा देना था।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि ये सभी प्रकाशन आज तक चल रहे हैं, पांचजन्य दिल्ली से तो स्वदेश और राष्ट्रधर्म लखनऊ से प्रकाशित होते हैं, स्वदेश का नाम अब बदलकर "तरूण भारत" कर दिया गया है।

यह उल्लेखनीय हैं कि पंडित जी कभी भी इन प्रकाशनों के प्रत्यक्ष संपादक नहीं रहे, लेकिन वास्तविक संचालक, संपादक व आवश्यकता होने पर उसके कम्पोजीटर, मशीनमैन व छोटे–बड़े सभी काम उन्होंने खुद किये। वह छोटे से छोटा काम भी अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध नहीं मानते थे, वे हमेशा कार्य को महत्त्व देते थे ना कि पद और स्तर को।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी एक अच्छे साहित्यकार व लेखक भी थे। 1946 में जब संघ से जुड़े किशारों तक अपनी विचारधारा सरल शब्दों में पहुँचाने की बात आयी तो पंडित जी ने बिना किसी से कुछ कहे रात भर जाग कर चाणक्य और सम्राट चन्द्रगुप्त का केंद्र में रखकर "सम्राट चन्द्रगुप्त" नाम से एक उपन्यास लिख डाला, अगली सुबह जब उन्होंने यह पुस्तक भाऊराव जी को दी तो सभी आश्चर्यचकित थे।

इस उपन्यास की सफलता के बाद युवाओं के लिए भी कुछ ऐसे ही लेखन की मांग उठी और तब उन्होंने "जगद्–गुरु शंकराचार्य" नाम से अपना दूसरा उपन्यास लिखा।

इसके बाद उन्होंने कोई उपन्यास नहीं लिखा, लेकिन अपने विचारों को विभिन्न लेखों के माध्यम से रखते रहे, जिनमें प्रमुख हैं –

- अखंड भारत क्यों?
- राष्ट्र–जीवन की समस्याएँ
- राष्ट्र चिंतन
- राष्ट्र जीवन की दिशा
- भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन

पंडित जी स्वाध्याय पर बहुत जोर देते थे, उनका मानना था कि पठन–पाठन और चिंतन–मनन के सहारे ही मनुष्य ज्ञान को आत्मसात करता है।

राजनीति में पदार्पण

अपने जीवन में सफलता की अनेक सीढियाँ चढ़ने के बाद पंडित जी ने स्वयं को पूर्ण रूप से देश के प्रति अर्पित कर दिया, 21 अक्तूबर सन् 1951 में डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने आर.एस.एस. को विश्वास में लेकर भारतीय जनसंघ (अब भारतीय जनता पार्टी) की स्थापना की।

1952 कानपुर में हुए पार्टी के पहले अधिवेशन मे पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी को इस नवीन दल का महामंत्री निर्वाचित किया गया, यहीं से अखिल भारतीय स्तर पर पंडित जी की राजनैतिक यात्रा प्रारंभ हुई, पंडित जी ने प्रथम अधिवेश में ही अपनी वैचारिक क्षमता का परिचय देते हुए 7 प्रस्ताव प्रस्तुत किये और सभी को पारित कर दिया गया, उनकी कार्यक्षमता, परिश्रम और परिपूर्णता के गुणों से प्रभावित होकर डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा था– यदि मुझे ऐसे दो दीनदयाल मिल जाएं तो मैं देश का राजनीतिक नक्शा बदल दूँगा।

डॉ0 साहब की यही बातें पंडित जी का हौसला और भी बढ़ाती गयीं, परंतु 1953 में डॉ0 साहब की आकस्मिक मौत हो गयी और संघ को ठीक से चलाने का उत्तरदायित्व दीनदयाल जी व अन्य सदस्यों पर आ गया।

जन सेवा में समर्पित जीवन

पंडित जी राष्ट्र निर्माण व जनसेवा में इतने लीन थे कि उनका कोई व्यक्तिगत जीवन ही नहीं रहा, बाकी का जीवन आर0 एस0 एस0 और जनसंघ को मजबूत बनाने और इन संगठनों के माध्यम से राष्ट्र की सेवा करने में अर्पित कर दिया। दीनदयाल

उपाध्याय के विचार उन्हें औरों से बिल्कुल अलग साबित करते हैं, उनकी अवधारणा और चिंता का विषय था कि – लम्बे वर्षों की गुलामी के पश्चात् कहीं पश्चिमी विचारधारा भारतीय संस्कृति पर हावी न हो जाये।

भारत एक लोकतांत्रिक देश बन चुका था, परन्तु पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के मन में भारत के विकास को लेकर चिंता थी, वे मानते थे कि लोकतंत्र भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है न कि अंग्रेजो का उपहार, उनका मकसद था कि कर्मचारियों और मजदूरों को सरकार की शिकायतों के समाधान पर ध्यान देना चाहिए और प्रशासन का कर्तव्य होना चाहिए कि वे राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान करें।

उनके अनुसार लोकतंत्र अपनी सीमाओं से परे नहीं जाना चाहिए और जनता की राय, उनके विश्वास और धर्म के आलोक में सुनिश्चित करना चाहिए, यही देश की उन्नति और प्रगति के लिए श्रेष्ठ होगा।

एकात्म मानववाद

पंडित दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद के आधार पर एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की जिसमें विभिन्न राज्यों की संस्कृतियाँ विकसित हों और एक ऐसा मानव धर्म उत्पन्न हो जिसमें सभी धर्मों का समावेश हो, जिसमें व्यक्ति को समान अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो जो एक सुदृढ़, सम्पन्न एवं जागरूक राष्ट्र कहलाये।

पंडित जी के शब्दों में एकात्म मानववाद का सारा कुछ इस तरह है – "हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र 'मानव' होना चाहिए, जो "यत् पिंडे तत् ब्रहमांड" के न्याय के अनुसार समिष्ट का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है, भौतिक चीजें मानव के सुख के साधन हैं, साध्य नहीं।

पंडित जी का मानना था कि व्यक्ति का अर्थ सिर्फ उसका शरीर नहीं है, बल्कि उसका मन, बुद्धि और आत्मा भी हैं यदि इन चारों में से किसी एक की भी उपेक्षा की जाए तो व्यक्ति का सुख विकलांग हो जाएगा।"

भारतीय जन संघ के अध्यक्ष व अकस्मात मृत्यु

1951 से 1967, 16 वर्षों तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे, 29 दिसम्बर, 1967 को उन्हें पार्टी का अध्यक्ष चुन लिया गया, पर ये विडम्बना ही कहीं जायेगी कि पंडित जी सिर्फ 44 दिनों तक ही बतौर अध्यक्ष कार्य कर पाए, जिसके बाद रहस्यमय परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गयी।

11 फरवरी, 1968 को पंडित जी का मृत शरीर मुगल सराय रेलवे स्टेशन पर पाया गया, वे ट्रेन द्वारा लखनऊ से पटना जा रहे थे।

पंडित जी हमेशा पैसेंजर ट्रेन की तृतीय श्रेणी में यात्रा करते थे, ताकि वे रास्ते में अधिक से अधिक कार्यकताओं से मिल सकें, पर अध्यक्ष बनने के बाद पार्टी सदस्यों ने उनके लिए प्रथम श्रेणी का टिकट बुक कर दिया था और ये सफर उनका आखिरी सफर बन गया। इस खबर को सुनकर पूरा देश शोकमय हो गया, दीनदयाल उपाध्याय जी के चाहने वालों के ऊपर मानो अचानक से बिजली गिर पड़ी हो।

देश को एक नयी विचारधारा प्रदान करने वाले पंडित की मृत्यु किस प्रकार हुई, यह सवाल आज भी एक पहेली बना हुआ हैं।

इस महान नेता, पत्रकार, साहित्यकार, अर्थशास्त्री, इतिहासकार के पार्थिव शरीर को 12 फरवरी, 1968 को श्रद्धांजलि देने के लिए दिल्ली के राजेंद्र प्रसाद मार्ग ले आया गया, जहाँ पर लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी, राष्ट्रपति डॉ0 जाकिर हुसैन और मोरारजी देसाई द्वारा इन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

आज भी पंडित जी लोगों के दिलो–दिमाग में जिंदा है। उनके विचार आज भी देश को प्रगति के मार्ग पर ले जा रहे हैं और यह उनकी ही देन है। देश में लोकतंत्र का मतलब सबके लिए एक समान है। विरासत के तौर पर उनकी याद में कई संस्थानों, विश्वविद्यालयों, अस्पतालों का निर्माण किया गया।

परम ब्रहम में विलीन होने के बाद भी पंडित जी अपनी लेखनी, ज्ञान, शिक्षा और उच्च विचारों से आज भी हमारे बीच लोकप्रिय हैं, ऐसे महान् व्यक्तित्व को हम शत–शत नमन करते हैं।

एनडीए सरकार ने दीन दयाल अंत्योदय योजना (डीएवाय) शुरू की। यह राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन का समन्वित स्वरूप हैं। इसके जरिए योजना को ज्यादा स्पष्ट, परिभाषित और केंद्रित किया गया। डीएवाय के शहरी और ग्रामीण कमपोनेंट्स का नाम भी बदला गया है, जो इस तरह हैं – दीन दयाल अंत्योदय योजना (एनयूएलएम), शहरी क्षेत्रों के लिए योजना का कार्यान्वयन आवास एवं शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय कर रहा है, और दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना ग्रामीण क्षेत्रों के लिए है। इसका कार्यान्वयन ग्रामीण विकास मंत्रालय कर रहा है।

डीएवाय पर फोकस क्यों है?दो पूर्व से चल रही शहरी आजीविका योजनाओं को काफी कम प्रतिसाद मिला। रोजगार के साथ ही तरक्की के नए अवसरों को तलाशने में यह योजनाएँ ज्यादा सफल नहीं हो सकी। ऐसे में प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी की महत्वाकांक्षी योजना 'मेक इन इंडिया' अभियान के आधार के तौर पर यह देखा गया कि विकसित देशों के पास कुशल कामगारों की कमी हैं। कुछ अध्ययन बताते हैं कि 2020 तक इन देशों को अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए 5.7 करोड़ लोगों की जरूरत होगी। ऐसे में भारत के पास एक बेहतरीन मैन्यूफेक्चरिंग हब बनने की प्रचुर संभावना है। मेक इन इंडिया का उद्देश्य भी मैन्युफेक्चरिंग इंडस्ट्री को ताकत प्रदान करना है। इस सपने को पूरा करने के लिए कुशल कामगारों

का एक बड़ा पुल तैयार करना जरूरी है। इस समय, डीएवाय इसी काम में लगा है।

शहरी क्षेत्रों के लिए डीएवाय योजना अब तक 4,041 शहरों और कस्बों में शुरू की जा चुकी हैं। इसका मतलब यह है कि डीएवाय का दायरा देश का समूची शहरी आबादी तक पहुंच गया है। जबकि इससे पहले के शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम महज 790 शहरों और कस्बों तक ही पहुंच सके थे।

डीएवाय की विशेषताएँ

दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना

डीएवाय के ग्रामीण घटक को 2014 में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य तीन साल (2014–2017) के भीतर भारत के गाँवों के करीब 10 लाख युवाओं को प्रशिक्षित करना था। उन्हें रोजगार उपलब्ध कराने के लिए क्षमतावान बनाना था। इस उद्देश्य के लिए युवा की परिभाषा में 15 वर्ष या उससे ज्यादा आयु वाले युवाओं को शामिल किया गया। कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार की ओर से शुरू किए गए विशेष केंद्रों पर आयोजित किए गए।

दीन दयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना

डीएवाय के शहरी घटक में हर साल शहरी गरीबों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य है। सरकार ने इस प्रशिक्षण के लिए प्रति व्यक्ति 15 हजार रुपए (पूर्वोत्तर के राज्यों और जम्मू–कश्मीर में 18,000 रुपए) का खर्च उठाने का फैसला किया है। इस प्रशिक्षण का मुख्य घटक है बाजार की मांग आधारित प्रशिक्षण। स्वसहायता समूह (एसएचजी) बनाकर प्रशिक्षित सदस्यों के लिए सहयोगी माहौल तैयार किया जाएगा। हर ग्रुप को शुरूआत में 10 हजार रुपए की राशि दी जाएगी, जिससे वे अपने कारोबार का शुरू कर सके। इसके अलावा क्षेत्र के आधार पर पंजीकृत फेडरेशंस को 50,000 रुपए की आर्थिक मदद भी दी जाएगी।

शहरी गरीब के लिए सब्सिडी

रोजगार के अवसर पैदा किए बिना शहरी गरीबों को कौशल सिखाना या कुशल बनाना किसी काम का नहीं है। सरकार ने प्रशिक्षित युवाओं का अपना उपक्रम स्थापित करने के लिए ब्याज की रियायत देने की योजना भी शुरू की है। इसके तहत (दो लाख रुपए तक के) कर्ज पर पांच प्रतिशत ब्याज में छूट दी जा रही है। समूह में उपक्रम शुरू करने पर (10 लाख रुपए तक के) कर्ज पर सात प्रतिशत तक की ब्याज छूट दी जा रही है। सड़कों पर सामान बेचने वाले भी स्किल डेवलपमेंट के जरिए अपने कारोबार को आगे बढ़ा सकते हैं।

काम और रोजगार तभी संभव है जब परिवार की चिंताओं को हटाया जा सके। इसके लिए, केंद्र सरकार न देश के शहरी बेघरों के लिए आश्रय स्थल बनाने का फैसला किया है।

कार्यान्वयन और प्रगति

डीएवाय के कार्यान्वयन के लिए, आवास और शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय ने राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) के साथ करार पर हस्ताक्षर किए हैं। एनएसडीसी को अब हितग्राहियों की पहचान, सिलेबस तय करने और ट्रेनिंग सत्रों के मानदंड तय करने के साथ ही प्रशिक्षित सदस्यों को प्रमाण–पत्र जारी करने की जिम्मेदारी दी गई है। प्रशिक्षण को बाजारोन्मुखी बनाए रखने के लिए एनएसडीसी इस समय सेक्टर स्किल कांउसिल (एसएससी) की मदद ले रही है, जो बाजार की अगुवाई में चलने वाले समूह हैं।

हालिया समाचारों के मुताबिक, करीब 4.54 लाख शहरी गरीबों ने 2014 से 2016 के बीच इस योजना के तहत प्रशिक्षण हासिल किया। प्रशिक्षण हासिल करने वालों में से 22 प्रतिशत को रोजगार मिल गया। कई ने सरकारी काम शुरू किया तो कुछ ने अपने उपक्रम शुरू किए। इकोनॉमिक टाइम्स में छपी एक रिपोर्ट कहती है कि 73,476 हितग्राहियों को (सूक्ष्म–स्तर के व्यक्तिगत उपक्रम बनाने के लिए) इस अवधिक में कुल 551 करोड़ रुपए का कर्ज दिया गया। इसके अतिरिक्त 54 करोड़ रुपए 2,527 ग्रुप उद्यानिकी पर खर्च किए गए। तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना इस योजना के कार्यान्वयन का नेतृत्व कर रहे हैं।

दीनदयाल अन्त्योदय योजना– राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन

शहरी गरीबों के लिए रोज़गारोन्मुखी प्रशिक्षण एवं स्वरोज़गार का सुनहरा अवसर..... यदि आप शहरी क्षेत्र के गरीब परिवार के 18 से 35 आयु वर्ग के बेरोज़गार युवा हैं और स्वरोज़गार स्थापित करना चाहते हैं तो अपने शहर की नगरीय निकाय में स्थित दीनदयाल अन्त्योदय योजना–राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन शाखा में निःशुल्क प्रशिक्षण हेतु कभी भी सम्पर्क करें।

प्रशिक्षण के मुख्य ट्रेड :

रिटेल, भवन निर्माण, सुरक्षाकर्मी, होटल, ऑटो रिपेयर, मार्केटिग, आईटी, गारमेंट्स मेंकिंग, मेडिकल एण्ड नसिंग हैल्थकेयर, बैकिंग एण्ड एकाउंट्स, इलेक्ट्रोनिक्स, ब्यूटी कल्चर, कृषि, एग्रो एण्ड फूड प्रोसेसिंग, ज्वैलरी मेंकिग, कम्प्यूटर हार्डवेयर, कूरियर एण्ड लॉजिस्टिक्स आदि।

पात्रता

- स्टेट बीपीएल सूची में सम्मिलित परिवार
- शहरी बीपीएल सूची 2003 में सम्मिलित परिवार
- अन्त्योदय परिवार
- आस्था कार्डधारी परिवार
- अन्य शहरी गरीब परिवार जिनकी वार्षिक आय रुपये 3

लाख तक है।

स्वरोज़गार हेतु बैंक ऋण

- वार्षिक 7 प्रतिशत ब्याज दर पर बैंक लोक उपलब्ध
- उद्यम/व्यवसाय स्थापित करने हेतु व्यक्तिगत ऋण बिना किसी बैंक गारण्टी/ जमानत के उपलब्ध
- उद्यम स्थापित करने हेतु आवश्यक निःशुल्क प्रशिक्षण भी इसी योजना में प्राप्त किया जा सकता है।

आवश्यक दस्तावेज

- बी.पी. एल./राशन कार्ड/भामाशाह कार्ड
- पहचान प्रमाण पत्र : आधार कार्ड, वोटर कार्ड, ड्राईविंग लाइसैंस
- जन्म प्रमाण पत्र : आठवीं/दसवीं की अंकतालिका
- बैंक पास बुक
- ए. पी. एल. : आय प्रमाण पत्र, 3 लाख रुपये वार्षिक, नोटरी व दो उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा प्रमाणित।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पं0 दीनदयाल उपाध्याय भारतीय सनातन विचारधारा के प्रतिनिधि व्यक्ति के रूप में थे। उन्होंने एकात्म मानववाद जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी। उनका विचार था हर युग में मानव का कल्याण होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची

– भारतीयता का संचारक
पं0 दीनदयाल उपाध्याय
लेखक – संजय द्विवेदी
– एकात्मदर्शन, दीनदयाल, गुरुजी, दीन दयाल शोध संस्थान।
– एकात्ममानववाद, लेखक – पं0 दीनदयाल
– http.www.edu.com.in
– www.pandit.din.com

डॉ0 शैलेन्द्र कुमार सिंह
अध्यक्ष
राजनीति विज्ञान व लोक प्रशासन विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक

8

रमेश उपाध्याय के कहानी साहित्य में भूमण्डलीय यथार्थ

मीनाक्षी, डॉ0 सुमन राठी

सारांश –

बदलते समय के साथ समाज में परिवर्तन होता है। बदलते समाज को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। आज हम भूमंडलीकरण के दौर में है। जिसके कारण विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में नए–नए आविष्कार हो रहे हैं। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। साहित्य में समय के साथ बदलाव आते रहते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में परिवर्तन आया। परंपरागत भारतीय समाज में राजनीतिक–सामाजिक संस्कृति की रचना हुई थी। 'चार दशक से ज्यादा की अवधि में जिस राष्ट्रीय राजनीतिक–सामाजिक संस्कृति की रचना हुई थीं एक पल में उसकी बागडोर ऐसे हाथों में चली गई जो शुद्ध रूप से भारतीय हाथ नहीं थे। यह भारत के ग्लोबलाइजेशन यानि भूमण्डलीकरण की शुरुआत थी।' 1990 के बाद में विश्व में अनेक घटनाएँ घटित हुई। जिसमें सोवियत संघ का पतन होना एक मुख्य घटना थी। आचार–विचार, पहनावा, रिश्तों तक में बदलाव दिखाई देने लगे। इस परिवर्तन का प्रभाव भाषा पर भी पड़ा। भाषा में शिश्ट शब्दों की अपेक्षा रोजमर्रा की जिन्दगी के प्रयोग होने वाले शब्दों का प्रयोग होने लगा।

प्रस्तावना – भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी साहित्य में भाषाओं की जातीय अस्मिता और चरित्र की निजता विलुप्ति की प्रक्रिया में है। परन्तु भीषण संकट के इस दौर में भी भविष्य की उजली संभावनाएँ होती हैं। कई साल पहले फ्रांसीसी फिल्मकार त्रुफो ने एक फिल्म बनाई थी। उसमें फासीवाद की सी तानाशाही वाले एक राज्य का चित्रण था, जिसमें पुस्तकें पढ़ना और अपने घर में रखना अपराध माना जाता है। परन्तु आज याद करने पर लगता है कि यह फिल्म मानो साहित्य पर संकट की बात करने वालों के लिए ही बनायी गई है। फिल्म का संदेश स्पश्ट था, संकट है तो संभावना भी हैं।

रमेश उपाध्याय के कहानी साहित्य में कथ्य, रूप और शिल्प की विविधता है। लेखक परंपरागत आख्यान वाली कहानी भी लिखते हैं और उनके नए–नए प्रयोग भी करते हैं। इनकी 'पैदल अंधेरे में' और 'चिंदियों की लूट' जैसी छोटी सूक्ष्म सांकेतिक कहानियाँ, 'अंधा कुआँ' और 'पानी की लकीर' जैसी विस्तृत विवरणों वाली लंबी कहानियाँ हैं। पौराणिक आख्यानों को नया रूप देकर नए अर्थों–संदर्भों वाली 'कल्पवृक्ष', 'कामधेनु' और 'विश्वामित्र' कहानियों पर लेखन कार्य किया। रमेश उपाध्याय जी प्रयोगशील लेखक हैं। इसका प्रमाण इनकी कहानी–श्रृंखला 'किसी देश के किसी शहर में' है। जिसमें आपने लोककथा के शिल्प में यथार्थ और फैंटेसी तथा व्यंग्य और विडंबना के अद्भुत प्रयोग किए हैं।

हिंदी कहानियों में परिवर्तन होना उस समय का सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक वातावरण पर निर्भर करता है। जब सामाजिक–राजनीतिक जीवन में निराशा छाने लगी, युवाओं में देश–विदेशी प्रभावों से विद्रोह के स्वर उभरने लगे, शीतयुद्ध के राजनीति के तहत साहित्य में खेमेबंदी होने लगी, तब वाम, राजनीति और विचारधारा पर आक्रमण होने लगे। कम्युनिस्ट आंदोलन में विभाजन दर विभाजन से भी साहित्यिक वातावरण बदला। हिन्दी कहानी साहित्य भी इन परिवर्तनों से अप्रभावित नहीं रहा। रमेश उपाध्याय की कहानियाँ – 'प्राइवेट पब्लिक', 'त्रासदी..... माइ फुट' और 'हम किस देश के वासी हैं', ये तीनों कहानियाँ निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रियाओं में बदलते हुए भूमंडलीय यथार्थ की कहानियाँ हैं।

'त्रासदी..... माइ फुट' कहानी में भोपाल गैस कांड में मारे गए और जीवन भर के लिए बीमार और अपाहिज हो गए सर्वथा निर्दोष लोगों की कहानी है। इसमें कंपनी के क्रियाकलाप के बारे में तथ्य आए हैं, जिनको कंपनी ने छिपाने की कोशिशें की। कहानी के पात्र नूर भोपाली ने उस कांड को लेकर बहुत सारे तथ्य जुटाए हैं। इस कांड पर वे उपन्यास लिखना चाह रहे हैं, लेकिन वे उपन्यास का रूपबंध तैयार नहीं कर पा रहे हैं। नूर कहते हैं – 'उपन्यास के लिए मसाला तो मैंने बहुत सारा जमा कर लिया है। लेकिन यह नहीं समझ पा रहा हूं कि इसे कहानी के रूप में किस तरह ढालूँ। मैं जो कहानी कहना चाहता हूँ, वह किसी एक व्यक्ति की, एक परिवार की, एक शहर की या एक देश की नहीं बल्कि सारी दुनिया की कहानी होगी। मुझे लगता है, ग्लोबलाइजेशन के दौर में साहित्य को भी ग्लोबल होना पड़ेगा। मगर किस तरह?' इस कहानी में रमेश उपाध्याय के भूमंडलीय यथार्थ की नई अवधारणा प्रस्तुत की है। डॉ0 अमरनाथ में भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के पीछे अमेरिका का हाथ माना है। उनके अनुसार – 'यह शब्द बीसवीं सदी के अंतिम दशक में व्यापक रूप में प्रयोग में आया। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद जब दुनिया एक ध्रुवीय हो गई और अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने दुनिया के, खासतौर पर तीसरी दुनिया के बाजार पर कब्जा जमाना शुरू कर दिया तो इसे न्याय संगत ठहराने के लिए भूमंडलीकरण जैसा आकर्षक नाम दिया गया।' भूमंडलीकरण का अर्थ है विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं को

जोड़ देना और एक नई भूमंडलीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति का निर्माण करना।

समाज में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि देश की अर्थव्यवस्था अच्छी होगी तो देश भी उन्नति करेगा। यदि अर्थव्यवस्था कमजोर होगी तो वह देश उन्नति नहीं करेगा। रमेश उपाध्याय ने अपनी कहानियों में समाज के असहाय, निर्धन, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, विवश परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण किया है। शोषक और शोषित वर्गों का उद्‌भव और विकास सामंतवादी और पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्थाओं में ही सम्भव हो सका है।

आधुनिक युग में पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने आम लोगों का जीवन अस्त–व्यस्त कर दिया है। पूंजीवादी व्यवस्था ने जहाँ शोषक वर्ग को भोग–विलास के दलदल में धकेला है, वही शोषित वर्ग को भुखमरी, बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता, महँगाई आदि के लिए मजबूर किया है। 'अर्थहीन' कहानी में रमेश उपाध्याय ने नवयुवक रवि को नौकरी न मिल पाने की व्यथा भोगते हुए दिखाया है। रवि का मित्र सुभाष क्षमा–याचना करते हुए कहता है कि 'यार यह रुखा–सुखा तुम्हें अच्छा तो नहीं लगेगा, पर महीना खत्म हो रहा है।' इस प्रकार रमेश उपाध्याय ने हिंदी कहानी साहित्य में भूमंडलीय यथार्थ का चित्रण किया है। उनका भूमंडलीय यथार्थ आशावाद का आधार है।

निष्कर्ष –

दुनियाँ के बदल सकने के बारे में आशावादी होना आजकल अच्छा नहीं माना जाता, बल्कि यथार्थ को न समझने की निशानी माना जाता है। अब यह मान लिया गया है कि दुनिया जितनी बदलनी थी बदल चुकी है। यानी अब हमेशा पूँजीवाद ही रहेगा। परन्तु छोटे–छोटे बदलावों के साथ अचानक किसी बड़े गुणात्मक बदलाव का हो जाना ही बेहतर है। यह इतिहास और विज्ञान दोनों का सच है। किसी व्यवस्था के बने रहने के कुछ आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक आधार होते हैं। लेकिन उसका एक आधार नैतिक भी होता है। आज के भूमंडलीय पूँजीवाद के पास स्वयं को टिकाय रखने के लिए दमन और ध्वंस की दानवीय शक्तियाँ हैं, पर मानवीय मूल्यों वाली कोई नैतिक शक्ति नहीं है। समयानुसार उसका बदलना अवश्यम्भावी है और यही आज का भूमंडलीय यथार्थ है

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शीतल वाणी, त्रैमासिक पत्रिका, संपादक – डॉ0 वीरेन्द्र आजम, अगस्त–अक्टूबर 2012, सहारनपुर।
2. रमेश उपाध्याय, साहित्य और भूमंडलीय यथार्थ, शब्दसंधान।
3. 'परिकथा' पत्रिका के जनवरी–फरवरी, 2019 के अंक में संपादक शंकर द्वारा लिया गया इंटरव्यू।
4. हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, डॉ अमरनाथ राजकमल प्रकाशन, पहला संस्मरण 2007।
5. रमेश उपाध्याय, एक घर की डायरी, शब्दसंधान।

मीनाक्षी
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
अस्थल बोहर, रोहतक।

डॉ0 सुमन राठी
निर्देशक
सहायक प्राध्यापक,
बाबा मस्तनाथ, विश्वविद्यालय,
अस्थल चबोहर, रोहतक।

9

कथा शिल्पी फणीश्वर नाथ रेणु और उनका 'मैला–आँचल'

डा0–सुनन्दा सिंह

सारांश –

पूर्णियाँ की पावन धरती सदा से साहित्य–सृजन के क्षेत्र में उर्वरक रही है। कोशी और महानन्दा से सिंचित इस धरती पर सरहजा, मुल्ला दाउद, किफायत अली, रामदेनी तिवारी द्विजदेनी, सतीनाथ भादुड़ी, केदारनाथ बंद्योपाध्याय, बलाय चन्द्र मुखोपाध्याय 'बनफूल', अनूपलाल मंडल, डॉ0 लक्ष्मीनारायण सुधांशु एवं फणीश्वरनाथ रेणु प्रभृति साहित्यकारों की रचनाएँ यहाँ की मिट्टी की सोंधी गंध से आप्लावित हैं। भूलोग के आईने में कल का पूर्णियाँ आज कई खण्डों में बँटा दिखता है, पर साहित्य के आईने में इसका अखंडित रूप आज भी ज्यों–का–त्यों दिखाई पड़ रहा है। इसी साहित्य–प्रसविनी धरती पर पूर्णियाँ (अब अररिया) जिले में फारबिसगंज से बारह–तेरह किलोमीटर दूर सिमराहा स्टेशन के समीप औराही–हिंगना गाँव में श्री शिलानाथ मंडल,–'एक सामान्य किसान के घर फणीश्वरनाथ रेणु का आविर्भाव हुआ। पिता शिलानाथ की साहित्यिक रूझान तथा राजनीतिक जागरूकता ने रेणु पर एक अमिट छाप छोड़ी थी। आगे चलकर रामदेनी द्विजदेनी तिवारी ने उन्हें राजनीतिक सूझ–बूझ प्रदान कर साहित्यिक–दिशा–निर्देश दिया। फलतः उनके जीवन में उचाटपन आ गया । कहीं एक स्थान पर स्थिर होकर नहीं रह सके। किसी एक विद्यालय में नहीं टिक पाए, और कभी फारबिसगंज, कभी सिमराहा, कभी सिमरबन्नी, तो कभी विराटनगर के कोईराला परिवार की संगति ने उन्हें सच्ची क्रांतिकारी मानसिकता प्रदान की, तो बंगला के प्रख्यात साहित्यकार सतीनाथ भादुड़ी की संगति ने उन्हें कवि से कहानीकार बना दिया। फिर काशी विद्यापीठ की पढ़ाई ने उन्हें आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे समाजवादियों की संगति में ला दिया और अंत में जयप्रकाश नारायण के कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले एक ऐसे साहित्यकार बने जिन्होंने बिहार के बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को उद्वेलित किया जो साहित्य–सृजन के क्षेत्र में प्रायः निष्क्रय हो गए थे। सतीनाथ भादुड़ी जी 'जागरी' और 'ढोढ़ाय' की आत्मकथा लिखकर बंगला–साहित्य में भूचाल ला चुके थे। वहीं रेणजी ने 'मैला–आँचल' की कल्पना की, जो दस वर्षों बाद 1954 में प्रकाशित हुआ। 'मैला–आँचल' छपा तो कुछ लोगों ने रेणुजी पर 'जागरी' की पृष्ठभूमि की चोरी करने का आरोप लगाया। लेकिन स्वयं भादुड़ी जी ने कहा था 'रेणु हमसे अच्छे निकले।' मैला–आँचल' छपा तो कुछ लोगों ने रेणजी मर 'जागरी' की पृष्ठभूमि की चोरी करने का आरोप लगाया। लेकिन स्वयं भादुड़ी जी ने कहा था– 'रेणु हमसे अच्छे निकले।'' 'मैला–आँचल' छपते ही रेणु एक महान उपन्यासकार हो गए और मात्र एक रचना ने उन्हें विश्व–साहित्य–पटल पर लाकर खड़ा कर दिया। रेणुजी की कृतियों का प्रकाशन छितराया हुआ है। 'मैला–आँचल', 'परती परिकथा', और 'ठुमरी', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुए तथा 'आदिम रात्रि की महक', 'कितने चौराहे', और 'पलटू बाबू रोड' पटना के अनुपम प्रकाशन से, 'जुलुस' साहित्य अकादमी नई दिल्ली से। कहानी संग्रह के साथ–साथ 'पहलवान की ढोलक' और 'मैला–आँचल' का अन्य तीन भारतीय भाषाओं में प्रकाशन का अधिकार नेशनल–बुक ट्रस्ट दिल्ली को प्राप्त है। 'अग्निखोर' बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना से तथा 'दीर्घतया' के प्रकाशन का अनुबंध गजियाबाद के एक प्रकाशन के साथ है। राजनीतिक रूझान के चलते 1972 में रेणु जी फारबिसगंज विधान–सभा–क्षेत्र से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़े, किस्मत ने साथ नहीं दिया। विधान–सभा चुनाव में परास्त होने के बाद रेणुजी प्रत्यक्ष राजनीति से अलग हो गए। फिर भी समाजवादी नेता के साथ उनका संबंध बना रहा । जयप्रकाश नारायण के साथ जुड़ाव उसी की एक कड़ी थी। जे0 पी0 आन्दोलन के दौरान उन्हें निर्वासन की जिन्दगी गुजारनी पड़ी थी। बिहार और केन्द्र की सत्ता पर काबिज कई नेताओं के साथ उनका अच्छा संबंध था, और वे लोग रेणुजी के सान्निद्व में रहकर गौरवान्वित महसूस करते थे। जो रह वक्त उनके सुख–दुख में साथ देने का वादा करते थे, ग्यारह अप्रैल, 1997 को उनके निधन के बाद सब के सब दुम छिपाकर भाग निकले। रेणुजी वैसे ही लोगां के भरोसे अपने वारिसों को उम्मीद बंधाया करते थे कि उनके मरने के बाद वहीं उनका खयाल रखा करेंगे। पर वह उम्मीद उनकी मृत्यु के साथ ही दफन हो गई।

वारिसों की उम्मीद की बात तो दूर रही, निधन के बाद रेणुजी का शव घंटों इसलिए पड़ा रहा कि अंतिम संस्कार के लिए परिजनों के पास पैसे नहीं थे।

रेणु जी ने साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज को जितना सम्मान दिलाया उसका एक हिस्सा भी उन्हें नहीं मिला। राहुलसांस्कृत्यायन और प्रेमचंद की श्रेणी का यह महान लेखक आजभी एक सार्वजनिक सम्मान से वंचित रहा। समाज ने उन्हें क्या दिया? साहित्य–अकादमी पुरस्कार या ज्ञान–पीठ पुरस्कार को 'मैला–आँचल' जैसी रचना संतुष्ट नहीं करती है?उनके कनिष्ठ पुत्र पप्पू जी कहते हैं– शायद हमारी जाति और बाबूजी का क्रांतिकारी

मिजाज आज भी देश और राज्य को पच नहीं रहा है। वह व्यक्ति जिन्होंने पद्मश्री की उपाधि एक झटके से लौठा दिया, उक्त पुरस्कार लेकर क्या करेगा?

रेणुजी एक हरफन मौला, मन के राजा और अपने पास में मस्त रहने वाले एक निरंकुश लेखक थे और एक निरंकुश मर्द भी। वह कब कहां चले जाएँगे यह भी वह स्वयं नहीं बता सकते थे। वह जिनके पास चले जाते, उन्हीं के होकर रह जाते थे।

रेणुजी ने अपने बारे में नही ंके बराबर लिखा है। इससे उनके अपने दृष्टिकोण का विशेष पता नहीं चलता, लेकिन अधिकांश प्रबुद्ध आलोचकों का विचार है कि लेखक अपने कृतित्व से अलग कुछ भी नहीं होता। श्री हर्बट रीड के अनुसार पुस्तक पढ़ते समय पुस्तक के पीछे बैठे हुए आदमी को भी पढ़ना चाहिए। हर पुस्तक के पीछे पुस्तककार या लेखक बैठा रहता है। रेणुजी पर तो यह और भी लागू होता है। अपनी हर कहानी में रेणु बार–बार जी उठता है और पाठक के सामने चित्रित होता है।

रेणु के जीवन–अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि न वे जमींदार थे और न ही सामन्त। उनका जीवन इतनी मुश्किलों से गुजरा और इतनी प्रताड़नाएँ उन्होंने सहीं कि उन्हें जनसाधारण के सामान्य स्तर से ऊपर उठाना उनके साथ अन्याय होगा। रेणु साधारण जन के कथाकार थे और सामान्य बातों को ही अपनी रचना में प्रश्रय देते थे। अतः उनमें भले ही आकारगत संभ्रान्तता हो, वह केवल साधारण थे और सामान्य जन रहना और कहलाना ही श्रेयस्र समझते और फिर आलोचक मानते हैं कि रेण लेखक में सर्वहारा थे।

जब रेणुजी का पहला उपन्यास 'मैला–आंचल' 1954 में प्रकाशित हुआ तो हिन्दी गल्प–संसार में एक सनसनी फैल गई। यह एक नया दिशा–संकेत था और हमारे लिए सर्वथा एक नव्य और प्रौढ़ चीज। हर रूचि के लेखकों और आलोचकों ने उसे सराहा और रेणु को मैथिल–कोकिल कहा और उन्हें प्रेमचन्द के समकक्ष ग्रामीण जीवन का चित्रकार बताया। खुद रेण भी शायद इससे विस्मित और घबरा गए, वे रातों–रात इतने विख्यात हुए और उनका डंका हिन्दी–संसार में इतना बनजे लगा कि खुद उन्होंने इसकी कल्पना नहीं की थी। 'मैला–आँचल' ने वास्तव में हमारे उपन्यास साहित्य को मान और मर्यादा प्रदान की और रेणु को अलभ्य यश प्रदान किया जिसके कारण बिहार के तथाकथित साहित्यकारों की आँचों की किरकिरी बन गए। कुछ तो उनकी ख्याति सुनकर उनसे ईर्ष्या करने लगे। लेकिन अपने धुन के पक्के रेणु इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। अपनी साहित्य–सर्जना के पथ पर अग्रसर होते रहे।

स्वतंत्रता के उपरान्त हिन्दी उपन्यास में आंचलित उपन्यासों की रचनाओं का जन्म हुआ। इसमें किसी अंचल विशेष को समग्र रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसके अंतर्गत उस अंचल विशेष की संस्कृति, रीति–रिवाज, लोककला और नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन दृष्टि को समयक अभिव्यक्ति मिलती है। रेणुका 'मैला–आँचल' एक ऐसा ही उपन्यास है। इसमें पूर्णिया जिले के एक गाँव मेरीगंज (अब अररिया जिला) का विवरण है पूरे कवित्व के साथ और इस कवित्वपूर्ण विवरण में उन्हें पात्रों के प्रति आकर्षण–निष्ठा भावुकता से उत्पन्न हुआ है, तो दूसरी और 1942 के बाद से स्वतंत्रता–प्राप्ति तक के सारे परिवर्त्तन भी प्रदर्शित किए गए है। मुख्यतः ये दो ही आकर्षण इस उपन्यास को इतना प्रसिद्ध बनाने के कारण हैं। किन्तु किसी भी अच्छे गुण की अति वर्जित है। पात्रों में जितनी भावुकता उत्पन्न की गई है अथवा उनकी विचित्र और अयथार्थ मारसिक स्थिति का वर्णन किया है वह स्वयं उपन्यास की यथार्थता पर आघात करती है। तथा तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद में सहसा परिवर्त्तन प्रस्तुत कर दिया गया है और नाना षड़यंत्रों के बाद प्राप्त सात सौ बीघा जमीन को स्वयं तहसीलदार अंत में जनता में बांट देता है। यह आदर्शवाद उन जमींदारों एवं भूमि पतियों में नहीं मिलता जो झगड़े कराकर, पुलिस को रिश्वत देकर गरीब किसानों या अपने प्रतिद्धन्द्वियों की जमीन हड़प लेते हैं। विश्वनाथ की लड़की कमला को डाक्टर का गर्भ है और डाक्टर द्वारा कमला की अप्रत्याशित स्वीकृति से सहसा तहसीलदार विश्वनाथ बदल जाता है। प्रसन्नता के कारण यदि लेखक ने यथार्थ की रक्षा की होती तो या तो डाक्टर पर गोली चलती या चूपचाप उसे मार दिया जाता या भ्रूण हत्या होती और जमीन कभी न वितरित की जाती। विनोवा भावे की मांग पर विश्वनाथ ऊसर बंजर दान कर देता और ठाठ से शोषितों पर शासन करता। इसी प्रकार एक क्षेत्र विशेष के सामाजिक जीवन का चित्रण करते समय संतुलन बनाए रखने की आवश्यक्ता थी। पूर्वार्द्व में तो ग्रामीण उत्सव, रीति–रिवाज आदि का वर्णन आवश्यकता से अधिक है। यह जानते हुए कि गाँव का आदमी व्यावहारिक बुद्धि में चालाक हो गया है, अशिक्षित होने पर भी कूटनीति में दक्ष होता है, नैतिकता का कोई भी रूप वहां नहीं रह गया है। भावुकता का कवित्वपूर्ण वातावरण जहाँ उपन्यास को कलापूर्ण बनाता है वहीं 'गाँव जैसा है वैसा ही चित्रित हो' यह सिद्धांत पूर्णतया रक्षित नहीं हो पाया।

यद्यपि लेखक के हृदय–परिवर्तनवाद, अतिशय भावुकतावाद तथा गाने–बजाने के विस्तृत विवरणों को बांछनीय नहीं कहा जा सकता। इसमें एक ओर यथार्थ धुंधला पड़ जाता है और थकाने वाले विवरण छोड़ने पड़ते हैं जो कला की दृष्टि से दोष है। गाँव के धिनकधिन्ना से हम परिचित हों, यह तो उचित है परनतु वह एक स्वयं 'वाद' के रूप में उपन्यास में वर्णित हो यह उचित नहीं प्रतीत होता। प्रश्न यह है कि लेखक यथार्थ के किन–किन रूपों को विषय बनाता है। अतः ग्राम की तात्कालिक राजनीतिक, सामाजिक दशा, कृषक, शासक, पुलिस, भूमि सारी समस्याओं पर लेखक प्रकाश डालता है। अतः लेखक के आदर्शवाद या धिनकधिन्नावाद के

दोषों के अतिरिक्त भी इस उपन्यास से चौमुखी चित्रण का महत्व स्वीकृत होगा।

सक्षेप में, 'मैला–आंचल' आदर्शवाद व भावुकता से ओत–प्रोत होने पर भी यथार्थवादी उपन्यास है और किसी अच्छे विदेशी उपन्यास के सम्मुख रखा जा सकता है।

आज इस नवीन पद्धति के हिन्दी उपन्यासों का विवेचना अपूर्ण और एकांगी ही माना जाएगा यदि फणीश्वरनाथ रेण की अप्रतिम कृति 'मैला–आंचल' का उल्लेख न हो। यक कृति हिन्दी साहित्य में पिछले दिनों काफी गर्मागर्म चर्चा का विषय रही है। इसे हिन्दी का सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास माना गया है। यद्यपि इसकी कथावस्तु बिहार के पूर्णिया जिला (अब अररिया) के एक गाँव मेरीगंज तक ही सीमित अपना चित्रण किया है। इस प्रकार आंचलिक उपन्यास होते हुए भी इसके कथानक की व्यक्ति अधिक बढ़ जाती है। पिछले दिनों उपन्यास–साहित्य में एक पद्धति विकसित हुई 'नायकहीन उपन्यास' उपन्यास लिखने की। अंग्रेजी और रूसी साहित्य में इस प्रकार के एकाधिक उपन्यास लिखे जा चुके हैं। रेणु का यह उपन्यास उसी कोटि में परिगणनीय है। इसका नायक यदि कोई हो सकता है तत्कालीन आंचलिक जीवन ही।

किसी छोटे से कसबे में संपूर्ण जीवन को इतनी सूक्ष्मता सजीवता और तटस्थता से देखने का यह प्रथम प्रयास है और अपने इस सीमित क्षेत्र में रेण को प्रेमचन्द्र के ही समान सफलता मिली है जिनका विश्रुत उपन्यास 'गोदान' भारतीय जीवन का विशाल और गतिशील दर्पण है। इस उपन्यास का कोई एक पात्र प्रमुख न होते हुए भी इसमें स्थापत्य की सुसम्बद्धता वर्त्तमान है और विविध सूक्ष्म वर्णनों के होते हुए भी कथावस्तु में अनावश्यक ठहराव नहीं आने पाया है।

रेणु के पूर्ववर्ती आंचलिक उपन्यासकार नागार्जुन अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द की परम्परा को स्थापित कर जन–साधारण को वाणी देने में न सिर्फ समर्थ हुए हैं, बल्कि इसी तरह उन्होंने प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया है। नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'रतिनाथ की चाची' में मिथिला के जनपदीय जीवन की समस्त हलचलें सजीव रूप में अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने दिखाया है कि प्रेमचन्द्र का होरी और गोबर, आज न केवल सामाजिक विकृतियों और पिचासों का शिकार होकर मर जाता है, बल्कि उससे मुक्ति के लिए वह संघर्ष करता है। वह जाग रहा है। उसमें दृढ़ता आ गई है। बलचनमा और विशेसरी और गाँव के नवजवान टूट सकते हैं, पर झुक नहीं सकते। यही आज के मानव का चित्र है। उसकी विशेषता है–उनका गौरव, उनकी मानवता।

'हिन्दी उपन्यास की नवीन परम्परा' शीर्षक अपने लेख में श्री विषणुकिशोर 'बेचन' ने उल्लेख किया है कि –'' नये मूल्यों की उपर्युक्त परम्परा में फणीश्वर नाथ रेणु का नव प्रकाशित उपन्यास 'मैला–आँचल' भी अपना स्थान रखता है। उपन्यास का संक्षिप्त परिचय देते हुए लेखक स्वयं कता है ''यह है 'मैला–आंचल' एक आंचलिक उपन्यास, कथास्थल है पूर्णिया जिले का एक छोटा कस्बा मेरीगंज। मैनें इसके हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस किताब का कथा क्षेत्र बनाया है''। लेकिन 'मैला–आंचल' केवल आंचलिक उपन्यास ही नहीं है। यह आज के युग की जनवादी भावना और नए औपन्यासिक मूल्य, जिसकी चर्चा मैनें की है, उसके लिए प्रसिद्ध है। कथा का कोई सबल मेरूदंड न रहने पर भी आज के जीवन की रेखाऐं कथाकार स्पष्ट कर देता है। आज का जीवन जिस प्रकार रेखाओं में अंकित है, उसका शुद्ध और सफल अंकन इस उपन्यास में हो पाया है। फिर भी यह बात यथार्थवादी कृति के साथ–साथ भविष्य में जीवन की सूचना देने वाली कृति है। फलतः आंचलिक उपन्यास की सीमाएँ इस उपन्यास को नहीं घेरती हैं, हलांकि लेखक इसे आंचलिक उपन्यास ही कहता है। लेखक की एकमात्र यही धारणा इस उपन्यास को 'गोदान' एवं 'बलचनमा' से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं बना सकी। अगर इस कृति की सारी रेखाएँ स्पष्टतः उभर कर सामने आती और आज की जनवादी भावना को लेखक अधिक रंग दे सकता तो प्रेमचन्द और नागार्जुन की कृतियों की तरह अवश्य ही यह 'गोदान' और 'बलचनमा' के बाद हिन्दी का तीसरा मील–स्पम्भ कायम करती।

आंचलिक उपन्यास के साथ–साथ हिन्दी उपन्यास अर्थात प्रेमचन्द एवं नागार्जुन की परम्परा का उदाहरण पेश करते हुए भविष्य के नए इन्सान और नई दुनिया की शुभ सूचना देने वाला यह उपन्यास है। इसकी भाषा नागार्जुन की परम्परा का स्पष्ट विकास तो है ही। साथ–साथ इसमें मैथिली भाषा एवं मिथिला की मिट्टी की की सोंधी गंध है।

निष्कर्ष –

रेणु से संबधित लोगों का आरोप है कि उनके ज्येष्ठ पुत्र पद्मपराग राय 'वेणु' ने 'मैला–आंचल– की टेली सिरियल का अधिकार बेचकर 'मैला–आंचल' को तार–तार करवा दिया। 1997 में 'मैला–आंचल' पर फिल्म निर्माता किशोर डंग और निर्देशक अशोक तलवार ने एक धारावाहिक बनाई। काफी पैसा बटोरा उनके पुत्र 'वेणु' ने, किन्तु उस धारावाहिक से रेणु की आत्मा रो पड़ी होगी। क्योंकि उसमें न तो 'मैला–आंचल' की भाषा है, न प्रकृति और न ही कोई चरित्र । धारावाहिक में जो भी दृश्य दिखाए गए हैं एक भी दृश्य इस क्षेत्र से संबंधित नहीं है। सबके–सब बम्बई (मुम्बई) के आस–पास के दृश्य हैं जिनमें तनिक भी स्वाभाविकता नहीं आ पायी है। कथा से संबंधित क्षेत्रों का मात्र खाना–पुरी भर कर दिया गया है। लेकिन जो कुछ भी हुआ, अच्छा नहीं हुआ, इससे रेण की मर्यादा को आँच पहुँची है।

संदर्भ :

सीमांचल टाइम्स, रेणु विशेषांक
पृष्ठ–50–68
पृष्ट–79–90
हिन्दी उपन्यास साहित्य की नवीन
परम्परा शीर्षक–विष्णु किशोर
'वेचन' के लेख से
पृ0 स0–32–36
पृ0 स0–68–72
पृ0 सं0–78–84
बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के शोध
सहायक जानकीजी की पाण्डु लिपी के
टंकित अंशों से
पृ0 स0–34–44
पृ0 स0–70–83
पृ0 सं0–86–79
शुक्ल जी–दिल्ली राजकमल
प्रकाशन : दिसम्बर–अक्टुबर
2000 पृष्ठ 19–32

डा0 सुनंदा सिंह
साकेत सुधांशु नगर, पो0–रूपसपुर जिला–पूर्णिया
घर का पता : ताड़र महाविद्यालय, ताड़र, भागलपुर
मो0 9304221477

10

रमेश उपाध्याय की कहानियाँ : मनोवैज्ञानिक चित्रण

मीनाक्षी, डॉ0 सुमन राठी

सारांश –

मनोविज्ञान का क्षेत्र अति विस्तृत है। साहित्य के क्षेत्र में भी इसका वर्णन मिलता है। प्राचीन साहित्यकारों का भी यही माना है कि साहित्य में मनोविज्ञान का प्रयोग आवश्यक है। आधुनिक युग में उत्कृष्ट कोटि की रचना के लिए साहित्य में मनोवैज्ञानिक वर्णन आवश्यक है। कहानी साहित्य में सर्वप्रधान मनोविज्ञान का समावेश है, जो मनुष्य के मन के विज्ञान को समझता है।

प्रस्तावना – मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। यह अंग्रेजी शब्द Psychology का पर्याय है। यह दो शब्दों के मेल से बना है – 'Psyche' + 'Logos'। 'Psyche' शब्द का अर्थ 'मन' तथा 'Logos' शब्द का अर्थ 'अध्ययन' है। इस प्रकार मन का अध्ययन मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान शब्द के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए वुडवर्थ लिखते हैं – "मनोविज्ञान वातावरण के अनुसार व्यक्ति के कार्यों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।"[1]

लालजीराम शुक्ल ने मन की चेतन और अचेतन क्रियाओं का मनावैज्ञानिक अध्ययन करते हुए कहा है कि – "मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो मन की चेतन और अचेतन क्रियाओं का अध्ययन अपरोक्ष अनुभूति द्वारा तथा मानव स्वभाव का भली–भाँति अध्ययन करता है।"[2]

मनोविज्ञान और कहानी–साहित्य का प्रगाढ़ सम्बंध है। साहित्य का उद्देश्य समाज में मंगल की स्थापना करना होता है। व्यक्ति सदा समाज से जुड़ा रहता है और मनोविज्ञान व्यक्ति का अध्ययन करता है। अतः समाज, साहित्य और मनोविज्ञान एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। पिछले दशकों के हिन्दी साहित्यकारों ने यथार्थ को सूक्ष्म दृष्टि से व्यक्त किया है। जीवन में विभिन्न प्रकार के बदलाव आते हैं और समाज में होने वाले उतार–चढ़ाव का यथार्थ वर्णन साहित्य में होता है।

यहाँ पर हमारा मुख्य विषय 'मनोविज्ञान' या 'मनोवैज्ञानिक कहानी–साहित्य' से सम्बंधित न होकर 'रमेश उपाध्याय की कहानियों में मनोवैज्ञानिक चित्रण' से है।

रमेश उपाध्याय की कहानियों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। उनके कई पात्र कुंठित, आक्रमक, हीनताग्रंथि से पीड़ित तथा पलायनवृत्ति के हैं। उनकी कहानियों की एक सामान्य बात यह है कि वे आम आदमी के जीवन की रोजमर्रा की समस्याओं और जटिलताओं को बड़ी सरलता से पाठक के सामने उभारते हैं। लेखक की कहानियों में यौन संबंधों, अकेलापन, भय, कुंठा, तनाव, हीनता, घुटन, टूटन, निराशा आदि का चित्रण हुआ है।

मुंशी प्रेमचंद के अनुसार – "सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"[3]

वर्तमान समाज में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी घुटन, टूटन से ग्रसित है। यह घुटन, टूटन कहीं व्यक्तिगत स्तर पर है तो कहीं सामाजिक स्तर पर है। 'एक घर की डायरी' कहानी में कुसुम की डायरी के पन्नों में लिखी आपबीती से उसके जीवन में व्याप्त घुटन का आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है। रोज–रोज माता–पिता के झगड़ों से परेशान होकर कुसुम की दसवीं के बाद पढ़ाई छुड़वा दी गई है। कुसुम के पिता कुसुम से कहते हैं कि – "कुसुम अपनी माँ के लक्षणों को मत लेना नहीं तो तेरी जिन्दगी भी जहर बन जाएगी।"[4] तब माँ क्रोध में भरकर कहती है कि – "तुम जैसा ही कोई मिल गया तो इसका भी वही हाल होगा जो मेरा हुआ है।"[5] अतः पति–पत्नी के वैवाहिक–जीवन में तनाव, टूटन और घुटन भरी हुई है।

आधुनिक युग में माता–पिता अपने कार्यों में व्यस्त रहते हुए अपने बच्चों को समय नहीं दे पाते। बच्चों के अन्दर चल रहे द्वन्द्व को ना समझकर, उन्हें भटकाव के मार्ग पर धकेल देते हैं। उचित मार्गदर्शन के अभाव में वे भटक जाते हैं। 'दूसरा दरवाजा' कहानी में सुरेन्द्र कहता है कि – "एक बार मैं परीक्षा में फेल हो गया। क्लास टीचर ने मुझे भरी क्लास में फटकारा और रिजल्ट कार्ड थमाते हुए कहा, "कल इस पर अपने फादर के साईन करवा कर लाना।" लेकिन पापा से मैं बहुत डरता था। दस में से एक विषय में फेल होने पर भी वे मेरी धुनाई कर देते थे।..... पापा तो कुछ कहने का मौका दिए बिना ही धुनाई शुरू कर देंगे।"[6] इस प्रकार हम देखते हैं कि घर का तनावपूर्ण माहौल बच्चों के मस्तिष्क पर गहरी चोट करता है। घुटन और घबराहट वह स्थिति है जो व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक आघात पहुँचाती है।

वर्तमान समाज में नारी सदियों से चली आ रही पुरूषों की तानाशाही प्रवृत्ति, दमघोंटू वातावरण से मुक्त होना चाहती है। दमघोंटू परिस्थितियों में 'अपने ही शहर में' कहानी में नीना उस घुटन, संताप और संग्राम से पीड़ित है। उसका पति उसके पूर्व प्रेमी के बारे में जानकर, शादी के इतने वर्ष बीत जाने पर भी उस पर शक करता है और शारीरिक, मानसिक यातना देकर प्रताड़ित करता है। इस पीड़ा से मुक्त होने के लिए नीना अपने पति को तलाक दे देती है

ताकि वह स्वतंत्र होकर अपना जीवनयापन कर सके। वह अपने वैवाहिक जीवन की घुटन, दर्द और यातना भरी व्यथा बताते हुए कहती है कि – "वह आदमी बड़ा शक्की और घटिया था। उसने किसी से सुन लिया था कि कॉलेज में किसी लड़के से मेरा लव–अफेयर चला था। मैंने उससे बहुत कहा, हर तरह से विश्वास दिलाया कि ऐसा कुछ नहीं था। अगर था भी तो एक तरफा था। एक सहपाठी मुझे चाहता था, मुझसे शादी करना चाहता था, लेकिन मैंने उसे साफ कह दिया था कि मेरी शादी कहीं ओर तय हो चुकी है। फिर भी वह आदमी मुझ पर शक करता रहा और मुझे मारता रहा। मैं दस साल तक उसकी पत्नी थी। उसके दो बच्चों की माँ थी। फिर भी वह मुझ पर शक करता था और मुझे मारता था।"[7]

सामाजिक जीवन की ऊब, झटपटाहट, संत्रास, अस्तित्व बोध एवम् अकेलेपन की भावना को रमेश उपाध्याय की कहानियों में प्रमुख स्वर मिला है। नगरीकरण की व्यावसायिक गतिशीलता ने व्यक्ति का पारिवारिक विघटन कर उसे अकेला कर दिया है। मनुष्य मानसिक रोगों के जाल में उलझ कर रह गया है। उसका जीवन बिखराव की ओर जा रहा है। 'अलग और विपरीत' कहानी में अनु का व्यवहार अपने पति के व्यवहार के विपरीत है। अनु विवाह के पश्चात् ससुराल में नहीं अपितु अपने पति के साथ अपने पिता के घर में रहती है। पति–पत्नी के बीच सम्बन्ध मधुर नहीं हैं। वे एक–दूसरे का ख्याल नहीं रखते जिस कारण उनमें हमेशा तनाव की स्थिति बनी रहती है। घर–जमाई बनने के बाद वह अपने आपको बेकार, वाहियात और बेहद कमजोर महसूस करने लगता है। उसे लगता है जैसे अनु के माता–पिता ने उसे खरीद लिया है। हर पल अनु अपने पति की आर्थिक स्थिति पर व्यंग्य करती है। ऐसे दाम्पत्य जीवन में मनोवैज्ञानिक रूप से दम्पति कुंठित, तनावग्रस्त और पीड़ित हो जाती है।

जीवन की आम समस्याओं के साथ संघर्ष करते हुए जब मनुष्य आर्थिक रूप से कमजोर हो जाता है तो वह परिस्थितियों के आगे घुटने टेक देता है। मनुष्य के योग्य होने के बावजूद भी जब उसे असफलता का सामना करना पड़ता है तो वह गहन निराशा और अवसादग्रस्त हो जाता है। 'दोहरी जिन्दगी' कहानी का नायक पढ़ाई छोड़कर शहर में नौकरी के लिए आ गया है परन्तु फिर भी वह गाँव की स्मृतियों में खोया रहता है। वह कहता है कि – "प्रेम और विवाह के मामले में तो यह इतना बड़ा शहर भी गाँव ही है। कौन जात हो?कहाँ के हो?क्या करते हो?कितना कमाते हो?कितनी जमीन है?कितनी जायदाद है? शायद इसीलिए मैं शहर में हूँ, जीता गाँव में हूँ।"[8] जीवन में व्याप्त विसंगतियों के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से घिरा हुआ व्यक्ति निरंतर हताशा, निराशा और तनाव में घुट रहा है। रमेश उपाध्याय की कहानियों में तनावग्रस्त व्यक्ति का यथार्थ चित्रण हुआ है। यह चित्रण कल्पनामात्र नहीं है बल्कि भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है।

प्रत्येक व्यक्ति में आंगिक, मानसिक, आर्थिक आदि किसी न किसी प्रकार की हीनता पाई जाती है। यह हीनता की भावना बाद में ग्रंथि के रूप में विकसति हो जाती है। हीनता की भावना को एडलर ने हीनताग्रंथि का नाम दिया है। हीनताग्रंथि विकृत भावों से उत्पन्न वेदना या तीव्र भावों के संघर्ष से बने हुए विचारों का एक ऐसा समूह है जो मनुष्य के व्यक्तित्व के अन्दर निवास तो करता है परन्तु उसका अंग नहीं बन पाता क्योंकि व्यक्ति के अंतर्मन को उससे चोट लगती रहती है। हीनता के कारण व्यक्ति टूटता–बिखरता जा रहा है। पत्नी की बेरूखी के कारण अनिल देर तक, दफ्तर में रूकने लगता है। 'अलग–अलग मौसम' कहानी में रेनू अपने पति अनिल की तुलना अपनी बहन के पति राजीव से करती है। परन्तु बाद में उसे अहसास होता है कि उसने अकारण ही अपने पति को परेशान किया। इस कारण पति–पत्नी के संबंधों में कड़वाहट आ जाती है। रेनू को गल्ती का अहसास होने के कारण वह हीनता भाव से ग्रस्त हो जाती है। वह कहती है कि – "अपने आपसे पूछती हूँ क्यों उन्हें इतना दुखी किया मैंने?क्यों उनकी धैर्य–परीक्षा का खेल खेलती रही? क्यों नहीं समझा सकी उन्हें कि मैं ऊपरी मन से ही चिढ़ाती हूँ, भीतर से तो.....। .....उन्होनें जब भी कोई बात कही, मेरे मुँह से उल्टी ही बात निकली। क्यों निकली, जबकि वैसा मैं सचमुच नहीं चाहती थी।"[9] इस प्रकार हीनताग्रंथि मनुष्य पर शारीरिक तथा मानसिक रूप से प्रभाव डालती हे। उपेक्षा भाव के कारण व्यक्ति हीनताग्रंथि का शिकार हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार व्यक्ति में यदि सकारात्मकता का अभाव हो तो उस पर आत्महत्या के भाव हावी हो जाते हैं। परिवार में मनमुटाव, संयम का अभाव, पति द्वारा लांछित व प्रताड़ित किया जाना व्यक्ति को आत्महत्या की ओर अग्रसर करता है। हमारे समय का यथार्थ बहुत मलिन, रूग्ण और बीमार है। काम वासना की परिणति भोग में होती है। मनुष्य समुदाय में रहता है और काम तृप्ति के लिए समर्पण की भावना होना आवश्यक है। 'माटी मिली', 'ब्रह्मराक्षस' तथा 'संतुलन' कहानियों में विधवा स्त्री की काम–पीड़ा का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'माटी मिली' कहानी की रधिया, सोबरन के साथ भोग की तृप्ति करती थी। "नजर तो सोबरन की भी थी रधिया पर, लेकिन डरता था। लेकिन उसे आश्चर्य हुआ था कि रधिया ने उसकी छेड़कानी का विरोध नहीं किया।"[10]

निष्कर्ष – रमेश उपाध्याय की कहानियों का विवेचन कर लेने के उपरान्त हम निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि उनकी कहानियों में मनोविज्ञान का यथार्थ वर्णन हुआ है। उन्होनें अपनी कहानियों में व्यक्ति के मानसिक पक्ष का सुन्दर चित्रण किया है। मानव मन में समय–समय पर विचार रूपी तरंगे उठती रहती हैं। उन्हीं तरंगों को लेखक ने अपनी कहानियों में मानव के विभिन्न मानसिक स्तरों का चित्रण किया है। अतः रमेश उपाध्याय की कहानियों पर

मनोवैज्ञानिक प्रभाव पूर्णरूप से पड़ा है। जिसका सफलतापूर्वक चित्रण लेखक ने अपनी कहानियों में किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सी वुडवर्थ, मनोविज्ञान, पृ0 4
2. लालजीराम शुक्ल, सामान्य मनोविज्ञान, पृ0 4
3. प्रेमचन्द,कुछ विचार, पृ0 30
4. रमेश उपाध्याय, एक घर की डायरी, शब्दसंधान, पृ0 11
5. रमेश उपाध्याय, एक घर की डायरी, शब्दसंधान, पृ0 11
6. रमेश उपाध्याय, डाक्यूड्रामा तथा अन्य कहानियाँ, शब्दसंधान पृ0 2
7. रमेश उपाध्याय, पुराने जूतों की जोड़ी, शब्दसंधान, पृ0 259
8. रमेश उपाध्याय, एक घर की डायरी, शब्दसंधान, पृ0 19
9. रमेश उपाध्याय, एक घर की डायरी, शब्दसंधान, पृ0 97
10. रमेश उपाध्याय, पानी की लकीर, शब्दसंधान, पृ0 138

मीनाक्षी
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
अस्थल बोहर, रोहतक।

डॉ0 सुमन राठी
निर्देशक
सहायक प्राध्यापक,
बाबा मस्तनाथ, विश्वविद्यालय,
अस्थल चबोहर, रोहतक।

उपाय कहाँ है ?

शीत की लहर फिर से चली
नित्यप्रति, जम रही मही
कुछ लोगों को पता भी नहीं
वे रहते जो हैं वातानुकूलित मकानों में
चारों पहर, आठों याम...
कुछ दूसरे भी लोग हैं
जो शीतागमन से पहले ही
उससे युद्ध करने हेतु तैयार कर लेते हैं
अपने अस्त्र–शस्त्र स्वेटर–टोपी–मोजे–जूते
कंबल–रजाई शाम घिरने से पहले ही
धारण कर लेते हैं वे अपने अस्त्र–शस्त्र...
कुछ तीसरे भी लोग हैं माया की इस संसार में
जो सभ्यता के चरण में रोटी की समस्या तक
अभी पूरी तरह से हल नहीं कर पाये हैं,
वस्त्र के लिए वे निर्भर हैं किसी की
दया और कृपादृश्टि पर और मकान ?
खुला आकाश ही जिनका घर है;
फूटपाथ बिछावन, जब बाकी की दुनिया
बंद आँखों से चाँद–तारों के सपने
देखा करती है, तब ये लोग अपनी
खुली आँखों से इन्हीं चाँद–तारों को
निहोरा करते हैं उस समय ये अपनी
पूरी आस्था को जगाकर बड़े ही धैर्यपूर्वक
उस ईश्वर से बस एक ही प्रश्न पूछते हैं–
कि बता दो प्रभु! हमारे लिए पूस की
रात की कड़कड़ाती इस ठंढ का
उपाय कहाँ है ???

डॉ0 जया जाह्नवी,
शिवपुरी, राँची–834008
चलभाश–8789714655

11

विकास का राजनीतिक समाजशास्त्र और हाशिए का समाज
(गाँव भीतर गाँव)

बबली

सारांश –

सत्यनारायण पटेल हमारे संक्रमित समय के ऐसे युवा कथाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में समकालीन जीवन के गत्यात्मक यथार्थ को पूरी विश्वसनीयता के साथ रेखांकित किया है। विकास की जमीनी सच्चाइयों, हाशिए के समाज के संकटमय जीवन और भ्रष्टाचार में आंकद डूबी ग्रामीण राजनीति से साक्षात्कार कराने वाला उनका उपन्यास 'गाँव भीतर गाँव' उल्लेखनीय हस्तक्षेप दर्ज कराता है। अनूठी कथा–भाषा में यह रचना हमसे बोलती–बतियाती अपने सुख–दुःख साझा करती हमें अपना हिस्सा बना लेती है। उपन्यास पढ़ते हुए हम असंख्य बेबस चेहरों पर पड़े जख्मों की निशानदेही कर पाते हैं जो विकास के राजनीतिक समाजशास्त्र ने दिए हैं। रचना में प्रवेश करते ही हमारा सामना आपदाग्रस्त जीवन जी रहे समाज के ऐसे हिस्से से होता है जिनके जीवन में निरूपायता और अन्धकार का साम्राज्य पसरा पड़ा है। समय के अनगिनत उतार–चढ़ावों से जूझ रहे समाज के स्वप्नों का चित्रण लेखक ने जिस अचूक ओर मर्मभेदनी दृष्टि से किया है उसके चलते उपन्यास शुरूआत से अंत तक बेहद पठनीय बना रहता है। पिछेल दो दशकों के समूचे कालखंड को समेटते हुए उपन्यास के डिटेल्स अप–टू–डेट हैं। अपने समकाल पर समग्र दृष्टि से विचार करते हुए सत्यनारायण पटेल ने सत्ता–व्यवस्था की कारगुजारियों और इन्हें चलाने वाली प्रतिगामी शक्तियों की पहचान की है।

उपन्यास मृत्यु से शुरू हो कर समय की तकलीफों–हकीकतों से मुठभेड़ करता आगे बढ़ता है और जीवन–संघर्षों की अनथक यात्रा का स्पर्श कर मृत्यु पर समाप्त होता है। उपन्यास की शुरूआत गाँव के युवा हम्माल कैलाश की मृत्यु के प्रशमित वातावरण में होती है। कैलाश के जीवन के अंत के साथ उसकी पत्नी झब्बू के जीवन में अन्धकार छा जाता है। इक्कीस–बाईस साल की उसकी उमर थी और आगे का पूरा जीवन – ''जब झब्बू राड़ी–राड़ हुई, तब उसकी गोद में तीन–चार बरस की रोशनी थी। आँखों में सपनों की किरिच और सामने पसरी अमावस की रात सरीखी जिन्दगी जो अकेले अपने पैरों पर ढोनी थी।''

कैलाश की इस मौत ने झब्बू को ही बेसहारा नहीं कर दिया था। उसके झोपड़े के सामने वाले नीम के पेड़ में रहने–पलने वाले पक्षी और जीव भी स्तब्ध थे। मानो आज वो सब–बे–आवाज हो गए हों। उपन्यास कैलाश की मृत्यु के कारणों की पड़ताल करने के क्रम में विकास के खोखले दावों की खुरदुरी सच्चाई से रू–ब–रू कराता है। दरअसल गाँव और महानगर को जोड़ने वाला रास्ता मौत को आमंत्रित करता छोटी–छोटी खाइयों में तब्दील हो गया है। उसी रास्ते से लौट रहे ट्रैक्टर की ट्राली पलटने से कैलाश सहित कई साथियों की मौत होती है। ट्राली में लदी खाद की बोरियों के बहाने लेखक ने व्यवस्था की नीतियों पर महतपूर्ण टिप्पणी की है –

''बोरियां भी मानो बोरियां नहीं, बल्कि जीती–जागती आम–आवाम हों, जिसे व्यवस्था की काली नीतियों की रस्सियों से बाँध, ट्राली में भर, किसी अंधी गहरी विकास की खाई में डालने ले जाया जा रहा हो और रस्सियों में बंधी बोरियां भीतर से भीतर कसमखाती, छटपटाती शायद ट्राली के बाड़े से मुक्ति की जुगत तलाश रहीं हो।''

कैलाश के न रहने के बाद झब्बू ने अपने डोकरा–डोकरी (माँ–पिता) के प्रस्ताव को (मायके में रहने) ठुकराते हुए गाँव के झोपड़े में रहने का निर्णय किया। झब्बू के सामने गाँव में हजारों प्रलोभन थे पर उनको नकारती वह सिलाई सीखती है और आत्मनिर्भर बनती है।

गाँव में उन झोपड़ियों के पास कलाली (देशी शराब) खुलने के साथ एक नए संकट की शुरूआत होती है। झब्बू के नेतृत्व में झोपड़े की औरतें साहसिक और सामूहिक प्रतिरोध करती हैं, जिसके चलते जाम सिंह को कलाली वहाँ से हटानी पड़ती है। कलाली हटवाने की कीमत झब्बू को सामूहिक दुष्कर्म की यातना भुगत कर चुकानी पड़ी। इस घटना के साथ जीवन, समाज और व्यवस्था के क्रूर, अमानुशिक और क्षरणशील हिस्से परत–दर–परत उघड़ते जाते हैं। झब्बू अपने साथ हुई बर्बरता के खिलाफ थाने कचहरी, कोर्ट सब जगह का चक्कर काट कर थक जाती है। उपन्यास अन्याय से उपजी उन मूक विवषताओं को दर्ज कराता चलता है जिनके कारण न्याय के पक्ष में कोई आवाज तक नहीं उठाता। जब ऊपर से लेकर नीचे तक पूरा तंत्र ही नाभि–नलबद्ध हो, ऐसे में न्याय की उम्मीद करना बेईमानी है। जाम सिंह जैसों के हाथ इतने लम्बे है कि मंत्री, विधायक, नेता और वकील सब उसकी मुट्ठी में हैं। झब्बू के साथ हुए अन्याय के कई प्रसंगों में लेखक ने न्याय के लिए लड़ रही स्त्री की विवशता को गहरे आशय के साथ व्यक्त किया है। मनुष्यता को खारिज करने वाली ऐसी असह्य स्थितियाँ विचरित करने वाली हैं। अंत में रस्मपूर्ति के रूप में न्यायालय का जो 'फैसला' आता है उससे न्याय की समूची अवधारणा निचुड़ चुकी होती है। यह प्रश्न हमारे समक्ष आता है कि आज की न्याय व्यवस्था

से आखिरकार मानवीय चेहरा क्यों गायब हैं ? पुलिस की कार्यप्रणाली और रूतबे से जिका कभी सीधा सामना नहीं हुआ है वह भी इस वर्दी के दुस्साहसी कारनामों से भलीभांति परिचित होता है। न्याय की उम्मीद का पहला दरवाजा पुलिस–स्टेशन ही होता है किन्तु क्या मजाल कि किसी ताकतवर व्यक्ति के दबाव, जोर–जुगाड़ के बिना यहाँ एफ०आई०आर० दर्ज हो जाए। कानूनी, संवैधानिक या खुद के लिए आफत बन जाने वाले प्रकरणों को छोड़ कर यह खाकी वर्दी भी गरीब–गुरबों से जाम सिंह की ही तरह ही पेश आती है। जाम सिंह जैसी दबंगई का जज्बा यहाँ भी है पर नौकरी का सवाल है। इसलिए 'सूंघ कर, बहुत चालाकी के साथ हाथ बचाते हुए सेवा–पानी का रास्ता निकाल कर कार्यवाही को अंजाम तक पहुंचाया जाता है। कुल मिलाकर कर यहाँ की दुनिया सीधे–सरल कमजोर नागरिक के लिए जाम सिंह जैसों की दुनियाँ से बहुत अलग नहीं हैं। मगर यही पुलिस माल–पानी की समुचित व्यवस्था करने वालों की सेवा में कभी देरी नहीं करती। कई वर्णनों के माध्यम से पुलिस व्यवस्था की कलई खोलती हैं।

देश–दुनिया की संस्थाओं से सहायता के नाम पर तिकड़म भिड़ा कर अधिक से अधिक फण्ड का जगाड़ करने वाले गैर–सरकारी संगठन हमारे देश में कुकुरमुते की तरह उग आए हैं। ऐसे संगठनों के कारण ईमानदारी से काम करने वाले संगठनों के सामने विश्वसनियता का संकट पैदा हो गया है।

रफीक भाई के रूप में हम आज के एन०जी०ओ० की सोच, सरोकार और कार्य–प्रणाली को व्यावसायिकता के सन्दर्भ में भली–भांति समझ सकते हैं। व्यावसायिकता ने जीवन के हरेक हिस्से की मूल्य चेतना का क्षरण किया है जिसे अनावृत करने का लेखकीय उपक्रम यहाँ काफी हद तक सफल हुआ है।

गाँव के स्कूल के माध्यम से सरकारी शिक्षा व्यवस्था की गंभीर खामियों को सचेत ढ़ंग से उद्घाटित करता हैं। शिक्षक का चरित्र, पद की नैतिकता, विद्यार्थी–शिक्षक संबंध जैसे कई महत्वपूर्ण पहलुओं की नोटिस लेते हुए चिंताजनक स्थितियों की ओर हमारा ध्यान खींचा गया है। स्कूल के दुबे मास्टर का चरित्र किसी शिक्षक के लिए तो शर्मनाक है ही वरन किसी आम नागरिक से भी इस तरह के व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जाती। आज जिस तरह सरकारी स्कूलों से लोगों का विश्वास घटता जा रहा हैं उसके पीछे दुबे जैसे शिक्षकों का काफी हद तक हाथ है। शिक्षा प्रणाली की इससे दुखद परिणति ओर क्या हो सकती है जहाँ राधली जैसी गरीब लड़कियों को पढ़ाई छोड़नी पड़ती हो। मिड–डे–मील योजना भी यहाँ हाँफती नजर आ रही है – ''जब मिड–डे–मील शुरू हुआ था, तब सभी बच्चे मिड–डे–मील खा लिया करते। लेकिन जब एक बार बेंगन की सब्जी के साथ चूहा भी रंधा गया और माणक पटेल के लड़के की थाली में चूहा परोसा गया। तब गाँव में हल्ला मच गया। .... दुबे मास्टर ने सब संभाल लिया। किसी के खिलाफ कुछ नहीं हुआ लेकिन फिर ठाकुर, पटेल और ब्राह्मण घरों के बच्चों में से मिड–डे–मील कुछ खाते, कुछ नहीं खाते।''

तिवारी मैडम के रूप में नई पीढ़ी के जागरूक, जिम्मेदार और संवेदनशील शिक्षक की छवि देखकर हम इस बात से आश्वस्त तो हो ही सकते है कि शिक्षा– व्यवस्था में अगर दुबे जैसे शिक्षक हैं तो उनका प्रतिपक्ष रचने वाली तिवारी मैडम जैसी शिक्षिका भी हैं।

उपन्यासकार ने समाज के गंदले–उजले प्रवाह में तह तक धंस कर उन मूल कारणों को पहचाना है जिनके चलते मानवीय अस्मिता क्षत–विक्षत हुई है। कुरीतियाँ तब पैदा होती है जब मनुश्यता को अपदस्थ कर दिया जाता है। रामरति के माध्यम से लेखक ने समाज की दुखती नब्ज टटोली है। कितनी हैरान करने वाली घृणित परंपरा की हमारा समाज सदियों से मानता आया है, उसे हम मानवीय गरिमा के साथ जीने तक नहीं देते – ''रोज सुबह टोपला, खपच्ची और झाड़ू उठाती, टपले में नीचे राख डालती। पंद्रह कच्चे टट्टीघरों का मैला सोर कर भरती।.... जब शुरू–शुरू में साग रोटी लेती, हाथ आगे बढ़ा देती। आगे बढ़ा हाथ देख कोई पटेलन डांट देती। कोई ठकुराइन झिड़क देती। तब उसे समझ नहीं थी कि हाथ बढ़ा कर हक लेते। दया और भीख तो लूगड़ी का खोला फैला कर माँगी जाती। ... जग्या व रामरति ने अपने मन में गाँठ बाँध ली। हम आत्मा के माथे पर जो दो रहे वो हमारी औलाद को न ढोना पड़े।'' जग्या और रामरति की संकल्प शक्ति उनके मुक्ति के स्वप्न को संभावनाशील परिणति की ओर ले जाती है।

'गाँव भीतर गाँव' में उठाए गए सवाल पाठक के अंतर्मन को झकझोड़ते ही नहीं हैं वरन् उसकी भयावहता से दो–चार कराकर उन स्थितियों और इनके लिए जिम्मेदार लोगों के खिलाफ खड़े होने की जरूरतों से रू–ब–रू कराते हैं। ग्राम स्वराज की परिकल्पना से उपजी पंचायती राज व्यवस्था की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। झब्बू और सरपंच संतोश पटेल के वार्तालाप में यह तस्वीर बहुत साफ देखी जा सकती है। गाँव के विकास और गरीबों के हित का सवाल जब झब्बू उठाती है वो तिलमिलाते हुए सरपंच के जवाब में पंचायतों में व्यक्त भ्रश्टाचार की परतें खुलने लगती है। झब्बू सरपंची करते हुए यह भली–भांति समझ जाती है कि पूरा तंत्र ऊपर से नीचे तक भ्रश्टाचार के दलदल में डूबा है। कुछ कहने जाओ तो ये दबंग लाठी–तमचे निकाल लेते हैं। केन्द्र–राज्य के सत्ता–शिखरों से जिला, जनपद और ग्राम पंचायतों तक बहता भ्रश्टाचार और उसमें ऊबता–डूबता विकास का गुब्बारा जिसकी ताक लगाए सभी बैठे हैं। अंतर्राष्ट्रीय धन प्रदाता संगठनों, संयुक्त राश्ट्र संघ के आर्थिक संगठनों, केन्द्र और राज्य की योजनाओं के धन कलश विकास के गंगा जल में उतरा रहे हैं और सब गोते लगा रहे हैं कि काश ! यह धन कलश उनकी मुट्ठी में आ जाए। जो लोग मर गए हैं उनके नाम पर भी वृद्धावस्था और विधवा पेंशन आ रही है।

अचानक से गाँव में हाथी सूंड खूब नजर आने लगी है। मर चुके लोगों के नाम पर भी मस्टर रोल बन रहा है। पंचायतों में मची लूट की सोनोग्राफी है। झब्बू गाँव में बहुत कुछ करने का इरादा लिए सरपंच बनी थी और सरपंच बनने के बाद गाँव के लिए कुछ न कुछ करती रहती थी, किन्तु बहुत कम समय में वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने में काफी हद तक सफल भी होती है। फिर भी झब्बू का पक्ष रखते हुए यहाँ लेखक पाठक को कन्विन्स करने की कोशिश करता है कि उसके जैसे सीधे सादे और बलहीन लोगों को सत्ता में काजिब धूर्त और ताकतवर लोग किस तरह अपने मकड़जाल में फंसाते हैं। भला कैसे कोई सरपंच समझौता करने से मना कर दे जब पूरी योजना ही गायक मंत्री जैसे लोग तय कर रहे हो। गायक मंत्री की मौजूदगी में यह तय हुआ कि रेती और मिट्टी की खदानों का ठेका नए सिरे से नीलाम होगा। ठेका संतोश पटले लेगा। मुनाफे में झब्बू भी पच्चीस प्रतिशत की भागीदार होगी। कई सुनियोजित हत्याओं के बाद झब्बू को भी मार दिया जाता है। झब्बू की मृत्यु से उपन्यास क्या सन्देश देना चाहता है ?बात केवल झब्बू की मृत्यु की ही नहीं वरन् सरपंच बनने के बाद उसके अन्दर गाँव के लिए बहुत कुछ करने की जो लालसा थी, जो स्वप्न थे, झब्बू ने जिंदगी भर संघर्श करते हुए काफी कुछ गाँव के लिए किया।

निष्कर्ष

यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि नयी सदी के इन डेढ़ दशकों में नई पीढ़ी के युवा कथाकारों के जो उपन्यास आए हैं उनमें इतनी परिपक्व और संश्लिष्ट राजनीतिक चेतना की उपस्थिति दर्ज है। उपन्यास के शिल्प पर बहुत विस्तार से चर्चा की गुंजाइश है। 'गाँव भीतर गाँव' साझीदार जीवन–संस्कृति के महीन धागों के छिन्न–भिन्न होने के परिणामस्वरूप गाँव के भीतर जन्म ले चुके अनंत गाँवों के बनने – विकसित होने के कारणों की पहचान गहरे कंसर्न के साथ करता है। यह एक जरूरी रचना है जिससे गुजरते हुए हमारे अनुभव में बहुत कुछ जुड़ता चला जाता है। जिससे गुजरते हुए हमारे अनुभव में बहुत कुछ जुड़ता चला जाता है।

संदर्भ

1 गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटले
2 साहित्य का समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पांडेय
3 हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल
4 परंपरा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा
5 गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल
6 साहित्य का समाजशास्त्र, बच्चन सिंह
7 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि
8 दलित विमर्श की भूमिका, कंवल भारती
9 गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल
10 साहित्य का नया सौन्दर्यशास्त्र, देवेन्द्र चौबे
11 गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल

बबली पत्नी श्री दीपक सुपुत्र श्री रमेश कुमार
229/2, वार्ड नं० 2,
बरोदा मार्ग के पास
देवी नगर, गोहाना (सोनीपत) –131301

12

अशोक का धम्म

मन्दीप शर्मा

सारांश –

बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् उसका योग्य पुत्र अशोक विशाल मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। अशोक इतिहास के उन महानतम सम्राटों में अपना सर्वोपरि सीान रखता है जिन्होंने अपने युग पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी है तथा भावी पीढ़ियाँ जिनका नाम अत्यन्त श्रद्धा एवं कृतज्ञता के साथ स्मरण करती है। अशोक मौर्य 269 ई.पू. के लगभग मौर्य सिंहासन पर आसीन हुआ। अनेक इतिहासकार उसे प्राचीन विश्व का महानतम सम्राट मानते है, उसकी धम्म नीति विद्वानों के बीच निरंतर चर्चा का विषय रही है। धम्म शब्द संस्कृत के शब्द धर्म का प्राकृत रूप है। धम्म को विभिन्न अर्थों जैसे धर्मपरायणता नैतिक जीवन, सदाचार आदि के रूप में व्याख्यायित किया है। अशोक के लिए 'धम्म' शब्द का विशेष महत्व है वस्तुतः देखा जाए तो यही धम्म तथा उसका प्रचार अशोक के विश्व इतिहास में प्रसिद्ध होने का सर्वप्रधान कारण है।

अशोक द्वारा प्रयुक्त धम्म को समझने के लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसके अभिलेखों को पढ़ा जाए। ये सभी अभिलेख इसलिए लिखे गए थे कि सारे साम्राज्य में लोगों को धम्म के सिद्धान्तों के बारे में समझाया जाए। धम्म के सिद्धांतों को सबके लिए सुलभ बनाने के लिए उसने अभिलेखों और शिलालेखों को सारे साम्राज्य में महत्वपूर्ण स्थानों पर लगवाया।

उसने धम्म के संदेश वाहकों को बाहर भी भेजा, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि धम्म से किसी विशेष धर्मिक विश्वास या व्यवहार का तात्पर्य नहीं है। अतः धर्म का अनुवाद नहीं मानना चाहिए, धम्म मनमाने तरीके से बनाया हुआ शाही सिद्धांत भी नहीं है। धम्म का सम्बन्ध मोटे रूप से सामाजिक व्यवहार व क्रियाओं से था। अशोक के धर्म में उस समय के प्रचलित विविध सामाजिक नियमों का मिश्रण था। अशोक के धम्म को समझने के लिए हमें उस काल की विशेषताओं, बौद्ध, ब्राह्मण व अन्य ग्रन्थों को समझना होगा, जिनमें सामाजिक व्यवहार के नियमों का वर्णन है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

उसकी धम्म नीति व विभिन्न पक्षों तथा इसके प्रतिपादन के कारणों को समझने के लिए हमें उस ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर दृष्टिपात करना होगा, जिसके कारण अशोक को यह नीति अस्तित्व में लानी पड़ी।

1. सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि :–

मौर्य काल में समाज के आर्थिक ढाँचें में काफी परिवर्तन आये। लोहे के प्रयोग से एक सरल ग्रामीण अर्थव्यवस्था से शहरी अर्थव्यवस्था की ओर लोगों का पलायन हुआ, उत्तरी काली पॉलिश वाले मृदभाण्ड इस काल की सम्पन्नता के प्रतीक है। पंचमार्क चाँदी के सिक्के तथा अन्य प्रकार के सिक्के व्यापार मार्गों को राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान करना तथा शहरी केन्द्रों का उदय अर्थव्यवस्था में ऐसे परिवर्तनों की ओर संकेत करता है। जिसके लिए समाज में सांमजस्य की आवश्यकता थी तथा कृषि उपयोग में लाये जाने वाले बाहरी क्षेत्रों की जनजातियों को समाज की मुख्यधरा से जोड़ना भी एक समस्या थी। वर्ण व्यवस्था में वैश्यों को ब्राह्मण वर्ग उच्च स्थान देना नहीं चाहता था। ब्राह्मण वर्ग की इस कठोरता के कारण सामाजिक तनाव उत्पन्न होने लगा था।

2. धार्मिक परिस्थितियाँ :–

उत्तर वैदिक काल में समाज पर ब्राह्मणों की जो पकड़ थी, उसे अब निरन्तर आघात पहुंच रहा था। पुजारियों की सुख–सुविधाओं, कठोर वर्ण व्यवस्था पर अब प्रश्न चिन्ह् उठने लगे थे। इन चारों वर्णों में निम्न वर्ण अब नए सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट होने लगा तथा वैश्य उच्च श्रेणी में सम्मिलित कर लिए जाने के बाद भी ब्राह्मण व क्षत्रियों द्वारा तुच्छ समझे जाते थे, जिससे व्यापारी वर्ग द्वारा ब्राह्मणवाद का विरोध होने लगा था। इस काल में बौद्ध मत ने ब्राह्मणों के प्रभुत्व को नकारा और बलि तथा कर्मकाण्डों का विरोध किया। इस प्रकार निम्न वर्गो का आकर्षण अन्य धर्मो की ओर होने लगा। बौद्ध मत द्वारा सामाजिक संबधों में मानवीय दृष्टिकोण का प्रचार निर्धन वर्गो को और भी आकृष्ट करने लगा।

3. राजव्यवस्था :–

छठीं शताब्दी ई.पू. में महाजनपदों का उद्भव के साथ भारत के अनेक भागों में राजव्यवस्था की शुरूआत हुई। इससे समाज के एक छोटे से तबके के पास शक्ति का संकेन्द्रण हुआ, जिसका प्रयोग वे अन्य तबकों पर करते थे। अशोक जब सिंहासन पर बैठा तो 200 वर्ष पुरानी राज्यव्यवस्था काफी जटिल व विस्तृत थी तथा मगध का राजनैतिक प्रभुत्व अब विशाल क्षेत्रों पर हो गया था, जिससे पहले अनेक राज्य तथा गणसंघ थे तथा इस विशाल क्षेत्र में कई प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक धर्म विचार आदि में भिन्नताएँ थी। अतः उन्हें एक सूत्र में पिरोना आवश्यक था। इस पर नियंत्रण सेना के बल पर नहीं हो सकता था। इसमें ऐसी नीति की आवश्यकता थी, जिसका प्रभाव सभी पर हो, धम्म नीति इस दिशा में एक प्रयास था।

4. अभिलेखों का विस्तार :–

अशोक ने अपने धम्म के प्रचार–प्रसार के लिए शिलालेखों/अभिलेखों का माध्यम अपनाया तथा अपने विचार इन स्तम्भों तथा शिलाओं पर इस प्रकार खुदवाये जिससे विभिन्न स्थानों पर लोग उन्हें पढ़ सकें, ये अभिलेख उसके शासन काल के विभिन्न वर्षों में लिखे गए तथा इन अभिलेखों से उसके धम्म के विभिन्न तत्वों का पता चलता है, इस माध्यम से अशोक अपनी जनता से सीधा सम्पर्क करना चाहता था। इन अभिलेखों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। कुछ अभिलेखों से पता चलता है कि अशोक बौद्ध मतानुयायी था और ये अभिलेख बौद्ध सम्प्रदाय अथवा संघों को सम्बोधित कर लिखे गए। अभिलेखों की अन्य श्रेणियाँ बृहद शिला लेख तथा लघु शिला लेख के नाम से जानी जाती है जो कि चट्टानों पर खोदी गई हैं, उसकी धम्म नीति में सामाजिक उत्तरदायित्व की बात कही गई है। कुछ समय पूर्व इतिहासकारों के द्वारा अशोक के धम्म तथा बौद्ध मत के अनुयायी के रूप में अशोक के बिना अंतर किए एक ही संदर्भ में रखकर अध्ययन करने की प्रवृति रही है। अभिलेखों के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि अशोक बौद्ध धर्म में आस्था रखता था तथा दूसरी ओर धम्म के द्वारा समाज को सामाजिक उत्तरदायित्व व सहिष्णुता का संदेश भी दे रहा था।

सिंहली अनुश्रुतियों–दीपवंश व महावंश के अनुसार अशोक के राज्य काल में पाटली पुत्र में बौद्ध धर्म की तृतीय संगीति हुई, जिसकी अध्यक्षता मोगलिपुत्ततिस्स बौद्ध भिक्षु ने की। इस संगीति की समाप्ति के पश्चात विभिन्न देशों ने धम्म प्रचारार्थ भिक्षु भेजे गए, जिनके नाम महावंश के अनुसार इस प्रकार प्राप्त होते है।

क्र.सं.	धर्म प्रचारक	देश
1.	मज्झन्तिक	कश्मीर तथा गांधार
2.	महारक्षित	यवन देश
3.	मज्झिम	हिमाचल प्रदेश
4.	धर्मरक्षित	अपरान्तक
5.	महाधर्मरक्षित	महाराष्ट्र
6.	महादेव	महिषमण्डल (मैसूर तथा मांधता)
7.	रक्षित	बनवासी (उत्तरी कन्नड)
8.	सोन तथा उत्तर	सुवर्ण भूमि
9.	महेन्द्र तथा संघमित्रा	लंका

5. धम्म नीति को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ :–

1. 269 ई.पू. में जब अशोक राज सिंहासन पर आसीन हुआ तब मौर्य साम्राज्य व्यवस्था जटिल रूप ले चुकी थी तथा अशोक के समक्ष दो ही विकल्प थे, एक ओर यह ढाँचे को बल प्रयोग द्वारा स्थिर रख सकता था, जिस पर धन का अत्यधिक व्यय होता अथवा दूसरी ओर वह ऐसे नैतिक मूल्य प्रस्तुत करें जो कि सभी को स्वीकार्य हो। अशोक ने यह विकल्प धम्म नीति में ढूँढ़ा।

2. अशोक उन तनावों से भली–भांति परिचित था, जो जैन बौद्ध तथा आजीविक जैसे असनातनी संप्रदायों के उदय के कारण समाज में आ गये थे। ये सभी किसी न किसी रूप में ब्राह्मणवाद के विरोधी थे और इनकी संख्या बढ़ रही थी। परन्तु ब्राह्मण अब भी समाज पर अपना नियंत्राण बनाए हुए थे, ऐसे में किसी न किसी रूप में वैमनस्य अवश्यम्भावी था। ऐसी दशा में सौहार्द का वातावरण बनाना आवश्यक था।

3. साम्राज्य में कुछ क्षेत्र ऐसे भी थे, जहाँ न तो ब्राह्मण धर्म और न असनातनी संप्रदायों का प्रभुत्व था। इसके अतिरिक्त कई जन जातीय क्षेत्र भी थे, जहाँ ब्राह्मण धर्म और न असनातनी संप्रदाय थे। इन सारी विभिन्नताओं के बीच साम्राज्य के अस्तित्व और परस्पर सौहार्द्र को बनाए रखने के लिए एक समरुपी समझ और व्यवहार की आवश्यकता थी।

धम्म विजय :–

13वें शिलालेख में धम्म विजय की चर्चा करते हुए कहता है कि 'देवताओं का प्रिय' धम्म विजय को सबसे मुख्य विजय समझता है। यह विजय उसे अपने राज्य में तथा सब सीमान्त प्रदेशों में 600 योजन तक, जिसमें अन्तियोक नामक यवन राजा व अन्य 4 राजा तुरमय अन्तिकिन, मग और अलिक सुन्दर है तथा दक्षिण की ओर चोल, पाण्डय और ताम्रपर्णि तक में प्राप्त हुई है। उसी तरह यहाँ राजा के राज्य में यवनों ओर कम्बोजों में, नभपंक्तियों और नाभक में, वंशानुगत भोजो, आन्ध्रक और पुलिन्दो में – सब जगह लोग देवताओं के प्रिय का धर्मानुशासन मानते है। जहाँ देवताओं के दूत नहीं जाते वहाँ भी लोग धर्मादेशों और धर्मविद्यान को सुनकर धर्माचरण करते है और करते रहेंगे। इस प्रकार प्राप्त विजय सर्वत्र प्रेम से सुरभित होती है। यह प्रेम धर्म विजय से प्राप्त होता है। अशोक की 'धम्मविजय' शुद्ध रूप से धम्म प्रचार का अभियान थी। यह भी उल्लेखनीय है कि अशोक स्वयं अपने राज्य में भी धर्म विजय करने का दावा करता है। यदि इसका स्वरूप राजनैतिक होता तो उसके द्वारा इस प्रकार के दावे का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि उसके साम्राज्य पर उसका पूर्ण अधिकार था। पुनश्च विदेशी, विशेषकर यवन राज्यों के शासक कभी भी इसे स्वीकार नहीं करते। अतः स्पष्ट है कि अशोक की धम्म विजय में युद्ध तथा हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं था। यह अवधरणा कि राजनैतिक हिंसा धर्म विरूद्ध है। अशोक के मस्तिष्क की ही उपज थी। अशोक ने व्यक्तिगत आचार शास्त्र को शासकीय आचार शास्त्र में परिणत कर दिया। इस प्रकार अशोक की धम्म विजय की अवधरणा ब्राह्मण अथवा बौद्ध लेखकों के धर्म विजय संबंधी इस अवधरणा के प्रतिकूल थी कि 'इसमें युद्ध तथा हिंसा द्वारा प्राप्त साम्राज्य सम्मिलित है।'

धम्म का स्वरूप :–

विभिन्न विद्वानों ने अशोक के धर्म के विषय में विभिन्न मत

प्रकट किए है परन्तु हमें वही स्वरूप सही समझना चाहिए जो उसने अपने अभिलेखों में व्यक्त किया है, जहाँ तक उसके व्यक्तिगत धर्म का प्रश्न है, हम कह सकते है कि वह बौद्ध धर्म का अनुयायी थी, कलिंग युद्ध के बाद वह बौद्ध हो गया था, एक वर्ष पश्चात् वह संघ में रहा। उसी समय वह बोधगया की यात्रा पर गया और राज्याभिषेक के 20वें वर्ष वह बुद्ध के जन्म स्थान लुम्बिनी की यात्रा पर गया। मस्की के शिलालेख में उसने स्वयं को 'बुद्ध शाक्य' कहा है। भाब्रू के शिलालेख में उसने बौद्ध धर्म के त्रिरत्न, बुद्ध, धर्म और संघ में अपनी आस्था प्रकट की है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अशोक के धम्म के अन्तर्गत जिन सामाजिक एवं नैतिक आचारों का समावेश किया है, वे वहीं है जिन्हें सभी सम्प्रदाय समान रूप से श्रद्धेय मानते है। फ्लीट इसे 'राजधर्म' मानते है जिसका विधान अशोक ने अपने राज कर्मचारियों के पालनार्थ किया था। परन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि अशोक के अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि उसका धम्म केवल राजकर्मचारियों के लिए न अपितु सामान्य जनता के लिए भी था।

राधाकुमुद मुखर्जी ने इसे 'सभी धर्मों की साझी सम्पत्ति' बताया है। उनके अनुसार अशोक का व्यक्तिगत धर्म ही बौद्ध धर्म था तथा उसने साधरण जनता के लिए जिस धर्म का विद्यान किया, वह वस्तुतः 'सभी धर्मों का सार' था। रामशंकर त्रिपाठी एवं विन्सेंटस्मिथ जैसे विद्वानों ने भी इस मत का समर्थन किया है, त्रिपाठी के अनुसार 'अशोक के धर्म के तत्व विश्वजनित है और हम उस पर किसी धर्म विशेष को प्रोत्साहन संरक्षण देने का दोषारोपण नहीं कर सकते। इसके विपरीत फ्रांसीसी विद्वान सेनार्ट का विचार है कि अपने लेखों में अशोक ने जिस धम्म का उल्लेख किया है। वह उसके समय के बौद्ध धर्म का एक पूर्ण तथा सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करता है। रोमिला थापर का विचार है कि धम्म अशोक का अपना विचार था संभव है कि इसे बौद्ध अथवा हिन्दू धर्म से ग्रहण किया गया हो, किन्तु सार रूप में यह सम्राट द्वारा जीवन पद्धति को सुझाने का एक ऐसा प्रयास था, जो व्यावहारिक तथा सुविधजनक होने के साथ–साथ अत्यधिक नैतिक भी था।

डी.डी. भण्डारकर ने एक अलग मत प्रस्तुत किया, उनके विचार से अशोक के धम्म का मूल स्त्रोत बौद्ध धर्म ही है। अशोक के समय बौद्ध धर्म के दो रूप थे। (1) भिक्षु बौद्ध धर्म (2) उपासक बौद्ध धर्म, दूसरा उपासक सामान्य गृहस्थों के लिए था, इसमें मात–पिता की सेवा गुरुओं का सम्मान, मित्रों सम्बन्धियों परिचितों तथा ब्राह्मण–श्रमण–साधुओं के साथ उदारता और दास भृत्यों के साथ उचित–व्यवहार का उपदेश दिया है। अपने राज्याभिषेक के 14वें वर्ष में अशोक ने एक नवीन प्रकार के कर्मचारियों की नियुक्ति की। इन्हें धम्म महामात्र कहा गया है। अपने कार्य की दृष्टि से धम्म–महामात्र एकनवीन कर्मचारी था। इनका कार्य प्रजा को धम्म की बातें समझाना धम्म के प्रतिरूचि पैदा करना था। वे समाज के सभी वर्गों–ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सभी के लिए कार्य करते थे तथा सीमांत देश व विदेशों में भी कार्य करते थे।

धर्म प्रचार के उपाय :–

बौद्ध धर्म ग्रहण करने के लिए एक वर्ष बाद तक अशोक एक साधारण उपासक रहा। इस बीच उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए कोई उद्योग नहीं किया। इसके बाद वह संघ की शरण में आया और एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक संघ के साथ रहा। इस बीच उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए इतना अधिक कार्य किया कि उसे स्वयं यह देखकर आश्चर्य होने लगा कि बौद्ध धर्म की जितनी अधिक उन्नति इस काल में हुई उतनी इसके पूर्व कभी नहीं हुई। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार में अपने विशाल साम्राज्य से सभी साधनों को नियोजित कर दिया। अशोक के द्वारा बौद्ध धर्म प्रचारार्थ अपनाये गए साधन इस प्रकार है :–

1. **धर्म यात्राओं का प्रारम्भ :–**

अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार धर्म यात्राओं से प्रारम्भ किया, अभिषेक के 10वें वर्ष बोधगया की यात्रा पर गया। यह पहली धर्म यात्रा थी, धर्म यात्राएं उसने कलिंग युद्ध के बाद प्रारम्भ की थी। अभिषेक के 14वें वर्ष में नेपाल की तराई में निग्लीवा (निगाली सागर) में जाकर उसने कनकमुनि बुद्ध के स्तूप के आकार को दुगना किया। 20वें वर्ष वह बुद्ध वे जन्मस्थल लुम्बिनि ग्राम गया तथा शिला स्तम्भ स्थापित कर पूजा की। वहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था। अतः वहां का कर घटाकर 1/8 कर दिया, इन सबसे जनता का ध्यान बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुआ।

2. **राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति :–**

अशोक का साम्राज्य विशाल था, अतः वह प्रत्येक स्थान पर जाकर धर्म प्रचार नहीं कर सकता था। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अशोक ने अपने उच्च पदाधिकारियों को धर्म प्रचार के कार्य में लगा दिया। उसने व्युष्ट, प्रादेशिक तथा युक्त नामक अधिकारियों को जनता के बीच जाकर धर्म प्रचार व उपदेश देने का आदेश दिया।

3. धर्म श्रावन व धर्मोपदेश की व्यवस्था :–

धर्म प्रचार के उद्देश्य से अशोक ने अपने साम्राज्य में धर्म श्रावण तथा धर्मोपदेश की व्यवस्था करवाई। विभिन्न पदाधिकारी जगह–जगह घूम कर धर्म के विषय में लोगों को शिक्षा देते तथा जो घोषणाएँ राजा की ओर से की जाती, उनसे प्रजा को अवगत करवाते।

4. **धर्म महामात्रों की नियुक्ति :–**

अभिषेक के 13वें वर्ष धर्म प्राचारार्थ पदाधिकारियों का एक नवीन वर्ग बनाया जिसे धर्म महामात्र कहा गया। इनका कार्य विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच द्वेष–भाव को समाप्त कर धर्म की एकता पर बल देना था। धर्म महामात्र राजपरिवार के सदस्यों से धर्म

के लिए धनादि प्राप्त करते थे, इन धर्म महामात्रों के प्रयास से धर्म की अधिकाधिक वृद्धि हुई।

5. **लोकोपकारिता के कार्य :–**

अपने धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अशोक ने मानव तथा पशुजाति के कल्याणार्थ अनेक कार्य किए। पशु पक्षियों की हत्या पर रोक लगा दी, इसके बाद उसने अपने राज्य तथा विदेशी राज्यों में भी मनुष्यों तथा पशुओं के चिकित्सा की अलग–अलग व्यवस्था करवाई। जो औषधियाँ नहीं थी उन्हें बाहर से मंगवाकर आरोपित करवाया। मार्गों पर वट वृक्ष लगवाये आम्रवाटिका लगाई गई। आधा–आधा कोस की दूरी पर कुएँ खुदवाये गए। विश्राम गृह बनवाये गए। अपने लेखों में अशोक कहता है कि यह उसने इसलिए किया है ताकि लोग धम्म का आचरण करें। इन सभी कार्यों का जनमानस पर अच्छा प्रभाव पड़ा होगा और वे धर्म की ओर आकर्षित हुए होंगे।

6. **धर्मलिपियों का खुदवाना :–**

धर्म के प्रचारार्थ अशोक ने विभिन्न शिलाओं एवं स्तम्भों के ऊपर उसके सिद्धांतों को उत्कीर्ण करवा दिया। ये लेख उसके विशाल साम्राज्य के प्रत्येक कोने में फैले थे। इन लेखों में धर्म के उपदेश व शिक्षाएँ होती थी। इनकी भाषा संस्कृत न होकर 'पाली' थी और उस समय की आम जनता की भाषा थी। ऐसी धर्मलिपियों ने धर्म को लोकप्रिय बनाया होगा।

7. **विदेशों में धर्म प्रचारकों को भेजना :–**

अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ विदेशों में भी प्रचारकों को भेजा। दक्षिणी सीमा पर स्थित राज्य चोल पाण्डय, सतियपुत्त, केरलपुत्त एवं ताम्रपर्णि (लंका) में अशोक ने धर्म प्रचारकों को भेजा। 13वें शिलालेख में 5 यवन राजाओं के नाम मिलते है इस प्रचार कार्य का फल यह हुआ कि पश्चिमी एशिया में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हुआ, वहाँ के अनेक सम्प्रदायों, इसाई, एसनस राप्यूटी आदि के रीति–रिवाजों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव अवश्य देखा जा सकता है।

अशोक की साम्राज्य नीति पर इसका प्रभाव :–

अशोक के धर्म का उसकी साम्राज्य नीति पर बहुत प्रभाव पड़ा और उसमें महान परिवर्तन आ गया। कलिंग विजय से पूर्व वह भी अपने पूर्वजों की भांति अपने साम्राज्य विस्तार की बड़ी इच्छा रखता था, परन्तु कलिंग युद्ध के भीषण हत्याकाण्ड को देखकर उसे युद्ध से घृणा हो गई और उसने बौद्ध धर्म अपनाकर अहिंसा के मार्ग पर चलना आरम्भ कर दिया। उसकी दिग्विजय का स्थान अब धर्म विजय ने ले लिया और सच्चे अर्थों में प्रजा का सेवक बन गया। उसे विश्वास हो गया कि सच्ची विजय अन्य प्रदेशों को जीतने में नहीं अपितु जनता के हृदय को जीतने में है। उसने अपने पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये और वहाँ अपने राजदूत व धर्म प्रचारक भेजे। अशोक के इन कार्यों से विदेशों में भारत का नाम बड़ा सम्मान से लिया जाने लगा और वहाँ भारतीय सभ्यता व संस्कृति का प्रसार होने लगा। अशोक की गणना भारत के ही नहीं अपितु विश्व के महानतम सम्राटों में होती है तथा विश्व इतिहास में उसका अद्वितीय स्थान बना। उसकी इस महानता का कारण उसकी यह नीति ही थी। परन्तु अशोक की इस नीति का दुष्परिणाम भी निकला। उसकी धर्म–विजय और अहिंसा की नीति के फलस्वरूप मौर्य साम्राज्य की सैन्य शक्ति क्षीण हो गई और उसकी मृत्योपरांत शीघ्र ही मौर्य साम्राज्य का राजनैतिक पतन हो गया।

निष्कर्ष :–

मौर्य प्रभाव के प्रसार की जो प्रक्रिया चंद्रगुप्त मौर्य के काल में आरम्भ हुई, वह अशोक के नेतृत्व में और अधिक पुष्ट हुई। लगता है कि चन्द्रगुप्त की सैनिक प्रसार की नीति ने वह स्थायी सफलता प्राप्त नहीं की, जो अशोक की धम्म विजय ने की। गावीमठ, पालकी गुण्डु, मस्की, ब्रह्मगिरी, येरागुड्डी, जतिंग रामेश्वर आदि स्थलों पर स्थित अशोक के शिलाभिलेख इसके प्रमाण है। अशोक की धम्म नीति के सकारात्मक परिणाम हुए, लेकिन कुछ अर्थों में नकारात्मक भी रहें। विश्व इतिहास में अशोक का स्थान अद्वितीय है। सही अर्थों में वह प्रथम राष्ट्रीय सम्राट था। अशोक के उदात्त आदर्श विश्व शांति की स्थापना के लिए आज भी हमारा मार्गदर्शन करते है, स्वतन्त्र भारत ने सारनाथ स्तम्भ के सिंह–शीर्ष को अपने राजचिन्ह के रूप में ग्रहण कर मानवता के इस महान पुजारी के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है।

पुस्तक सूची

1. IGNOU भारत–प्राचीन काल से 8वीं सदी ईस्वी, खण्ड–5 ईकाई–21, अशोक की धम्म नीति, पृष्ठ 49 से 52
2. प्राचीन भारत का इतिहास (आदिकाल से 1000 ई. तक), लेखक आर.के. मजूमदार तथा ए.एन. श्रीवास्तव, अध्याय–10, अशोक मौर्य–कल्याण राज्य की स्थापना, एस.डी.बी. पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4075–नई सड़क, दिल्ली, पृष्ठ 295
3. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, लेखक कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, अध्याय–17, मौर्य राजवंश, यूनाईटेड बुक डिपो, यूनिवर्सिटी रोड़, इलाहाबाद, पृष्ठ 223, 228 से 233
4. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डी.एन. झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, अध्याय–8, मौर्यकाल, पृष्ठ 186, 190
5. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डॉ. ओमप्रकाश, प्रकाशक विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लि., अध्याय–10, मौर्य युगीन भारत, पृष्ठ 152

मन्दीप शर्मा
एम.ए. इतिहास, यूजीसी नेट
गांव बेरला, तहसील बाढ़डा
जिला चरखी दादरी (हरियाणा) 127312
मो. – 09671583483, 8053156731

13

भारतीय समाज पर मीडिया के प्रभाव

डॉ. राजेश कुमार, प्रमिला देवी

सारांश :

आज के इस वैज्ञानिक युग में विश्व प्रतिदिन नव निर्माण की ओर बढ़ रहा है । वैज्ञानिक विकास ने जनसंचार के अनेकों माध्यम उपलब्ध करवाए हैं । जैसे – रेड़ियो, टी.वी., समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, इंटरनेट आदि । जनसंचार माध्यमों की सहायता से ही आज पूरा विश्व एक परिवार की भांति प्रतीत होने लगा है । जनसंचार माध्यमों को हम मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं, प्रिंट मीडिया और इलैक्ट्रोनिक मीडिया । इन संचार माध्यमों की उपयोगिता हमारे जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित है फिर चाहे वह राजनीतिक हो, सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक अथवा नैतिक हो । विकासशील राष्ट्र में विकास की गति के तीव्र करने के लिए व्यावसायिक क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने हेतु बाजार को विकसित करने हेतु, सूचना व मनोरंजन हेतु, जनसंचार माध्यमों की भूमिका विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण रही है ।

मीडिया क्रांति ने वर्तमान समय में हमारी दिनचर्या, हमारे रहन–सहन तथा हमारे समूचे रीति–रिवाजों को प्रभावित किया है। यहाँ तक कि हमारी रोजमर्रा की भाषा भी आज ग्लोबल स्वरूप धारण कर गई है, तथा यही पाश्चात्य प्रभाव हमारी दैनिक जीवन चर्या में समाहित हो गया है। सूचना तकनीक के विस्तार ने भारतीय समाज को समय ही नहीं दिया कि वह संभलने की कोई तरकीब खोज सके । उस पर यह चौतरफा आक्रमण के रूप में आयी और देखते–देखते यहाँ की व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया । पर फिर भी एक उम्मीद की डोर थामे बुद्धिजीवी अनुमान लगा रहे थे कि संकट के बावजूद शायद कुछ अच्छा हो । रामस्वरूप चतुर्वेदी 'संचार साधन और साहित्य' शीर्षक लेख में लिखते हैं ''बहुत कुछ स्थिर और आराम से चलने वाला नहीं है । उसकी गतिशीलता देखकर लग सकता है कि संभवतः कोई नया गणितीय सूत्र आविष्कृत हो, जिसके अनुसार एक बिंदु पर पहुँच जाने के बाद गति अपना ईंधन स्वयं बन जाती है । आधुनिक तकनीक और पुराने देव–दानवों के बीच विलक्षण क्षमता कैसे आ गई है, तब साहित्य 'इंटरनेट' के जाल से कुछ वैसे बच सकता है जैसे हनुमान ने अपने को सुरक्षा के विस्तार से बचाया था।''[1] यथार्थ में नई सदी के इस दशक में सूचना क्रांति के विस्फोट ने हमारी घरेलू जिंदगी को जिस तरह से बदला है वह अद्‌भुत है । मीडिया क्रांति ने भारतीय समाज में जिस बदलाव को सबसे ज्यादा दिखाया है, उसमें हमारा सामाजिक ताना–बाना एवं घर–परिवार सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है । इस तरह मीडिया नाम का जाल आज संपूर्ण देश और समाज में फैल गया है । इस तरह टी. वी. पर आने वाले मीडिया को मास मीडिया नाम मिला ।

टी.वी. में बढ़ते मीडिया का समाज पर अपना ही प्रभाव है । मीडिया का जन–जीवन पर दोनों प्रभाव दिखाई पड़ते हैं सकारात्मक भी और नकारात्मक भी। सबसे पहले हम यहाँ मीडिया के सकारात्मक प्रभाव से परिचित होंगे। मीडिया का सबसे बड़ा साधन आज टी.वी. है । टी.वी. में आज जितने मनोरंजन के चैनल हैं, उतने ही या उससे भी ज्यादा समाचार चैनल हैं । मीडिया के द्वारा लोगों को शिक्षा मिलती है, वे टी.वी., रेडियो प्रोग्राम के द्वारा स्वास्थ्य, वातावरण व दूसरी अन्य जानकारी को जान पाते हैं । मीडिया के द्वारा लोगों को अपना टैलेंट पूरी दुनिया में सबके सामने रखने का एक अच्छा मंच मिला है, साथ ही बच्चे डिस्कवरी जैसे चैनल, क्विज प्रोग्राम देखकर बहुत कुछ सीखते हैं । इसमें दिखाए जाने वाले विज्ञापनों से टी.वी. चैनलों की भी कमाई होती है । टी.वी. सीरियल, न्यूज, गाने और फिल्मों द्वारा लोगों का मनोरंजन भी होता है । वृद्धों को ध्यान में रखते हुए धार्मिक चैनल भी काफी मात्रा में धार्मिक और नैतिक शिक्षाएँ प्रसारित कर समाज को नैतिक रूप से मजबूत बनाते हैं । खेल चैनलों के द्वारा हमारे खेलों के प्रति रूचि बढ़ती है, और हम घर बैठे ही अनेकों खेलों से परिचित हो जाते हैं । मीडिया की पैनी नजर हर प्रकार के भ्रष्टचार और घोटाले पर होती है जिससे भ्रश्टाचार को कम करने में मदद मिलती है। मीडिया नेताओं और अभिनेताओं के यथार्थ से भी हमें परिचित कराता है ।

जहाँ तक मीडिया के सकारात्मक प्रभाव समाज को लाभान्वित कर रहे हैं, वहीं उसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी हैं, जिसके कारण आए दिन मीडिया को आलोचना का शिकार होना पड़ता है। आज मीडिया में विज्ञापनों की भरमार है जो दर्शकों और श्रोताओं को भ्रमित करते हैं । टी.वी. चैनलों की भीड़ होने के कारण ये प्रोग्राम की क्वालिटी में ध्यान नहीं देते और कुछ भी दिखाते हैं । टी.वी. सीरीयलों में काफी हद तक फूहड़ता और अश्लीलता परोसी जाती है, जिसे परिवार और बच्चों के साथ देखने में हमें संकोच होता है। ये सीरीयल परिवार के बिखराव का कारण भी बनते हैं, क्योंकि औरतें अपने कार्यक्रम के चलते घर का काम छोड़ देती हैं जिससे परिवार में तनाव बढ़ता है । लगातार मास मीडिया, सोशल मीडिया को देखते रहने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है । इन टी.वी. चैनलों पर दिखाए जाने वाले अपराध से जुड़े प्रोग्राम देखकर कई

लोगों को नए–नए आईडिया आते हैं और वो उनको अपनाकर अपराधी भी बन जाते हैं, और भी न जाने कितना नकारात्मक प्रभाव समाज पर पड़ता है ।

मीडिया का समाज के प्रति दायित्व – मीडिया वालों को ध्यान रखना चाहिए कि वो जो दिखा रहे हैं उसमें सच्चाई हो । अफवाह से उनको बचना चाहिए । ऐसे कार्यक्रम दिखाने चाहिए, जिससे देश और समाज कुछ सीखे और आगे बढ़े । सरकार को मास मीडिया और सोशल मीडिया पर पैनी नजर रखनी चाहिए । ''आजकल पत्रकारिता विशेशकर साहित्यिक पत्रकारिता के सामने अनेक खतने और चुनौतियाँ हैं। सबसे बड़ा खतरा तो बाजार की माँग और सस्ती लोकप्रियता के सामने घुटने टेककर व्यावसायिकता का शिकार होने का है।''2

निष्कर्ष :

इस तरह कह सकते हैं कि संचार क्रांति के विस्फोट और सूचना–संजाल के मायावी चक्र के बावजूद हमें मीडिया के सकारात्मक पहलुओं का लाभ उठाना चाहिए और इसके कुप्रभावों से अपने आप को बचाना चाहिए ।

संदर्भ :–

1. अक्षरा, अंक – 61, पृ. 20
2. नई दुनिया, 15 नवम्बर 1990, पृ.6

शोध निर्देशक
डॉ. राजेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
(हिंदी विभाग)
एन.आई.आई.एल.एम.
विश्वविद्यालय,
कैथल ।

शोधकर्त्री
प्रमिला देवी
पी.एच.डी. शोधार्थी
(हिंदी विभाग)
एन.आई.आई.एल.एम.
विश्वविद्यालय,
कैथल

14

चन्द्रगुप्त मौर्य भारत का प्रथम राष्ट्रीय सम्राट

मन्दीप शर्मा

सारांश :

प्रस्तुत शोधपत्र चन्द्रगुप्त मौर्य के कृतित्वों के अध्ययन से संबंधित है। चन्द्रगुप्त ने केवल थोड़े समय में ही अपने बाहुबल द्वारा मगध राज्य को एक विशाल साम्राज्य का रूप दे दिया। सेल्यूकस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात उसका राज्य उत्तर–पश्चिम में हिन्दुकुश तथा आधुनिक ईरान तक फैला हुआ था। कश्मीर, सिन्धु तथा कलिंग को छोड़कर सारा उत्तरी भारत आधुनिक अफगानिस्तान और ब्लूचिस्तान उसके साम्राज्य में शामिल थे। दक्षिण में उसके राज्य की सीमा नर्मदा और विंध्यांचल पर्वत को छूती थी। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य ने कौटिल्य के मार्गदर्शन में एक ''अखण्ड भारत'' के स्वप्न का निर्माण किया था तथा उसे धरातल पर उतारा तथा भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। इस प्रकार यदि चन्द्रगुप्त मौर्य को भारत का प्रथम राश्ट्रीय सम्राट कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

मौर्य साम्राज्य का संस्थापक सम्राट इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य के नाम से विख्यात है। चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के उन महानतम सम्राटों में से है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व तथा कृतियों से इतिहास के पृष्ठों में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न किया है। उसका उदय वस्तुतः इतिहास की एक रोमांचकारी घटना है। देश को मकदूनी दासता से मुक्त करने तथा नन्दों के घृणित तथा अत्याचार पूर्ण शासन से जनता को त्राण दिलाने और देश को राजनीतिक एकता के सूत्र में संगठित करने का श्रेय इसी ख्यातनामा मौर्य सम्राट को प्राप्त है।

उत्पत्तिः–

भारतीय इतिहास के अनेक महान व्यक्तियों के समान चन्द्रगुप्त मौर्य का वंश भी अंधकारपूर्ण है। उसकी उत्पत्ति के विषय में ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में परस्पर विरोधी विवरण मिलते है। फलस्वरूप उसकी जाति का निर्धारण भारतीय इतिहास की जटिल समस्या है। ब्राह्मण ग्रंथ उसे एक स्वर में शूद्र अथवा निम्न कुल से सम्बन्धित करते है जबकि बौद्ध तथा जैन ग्रंथ उसे क्षत्रिय सिद्ध करते है।

ब्राह्मण साहित्य का साक्ष्य :–

ब्राह्मण साहित्य में सर्वप्रथम पुराणों का उल्लेख किया जा सकता है। विष्णुपुराण के भाष्यकार श्रीधरस्वामी ने चन्द्रगुप्त को नन्दराज की पत्नी 'मुरा' से उत्पन्न बताया है, 'मुरा' की संतान होने के कारण मौर्य कहलाये। दूसरा प्रमाण विशाखदत्त का मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त को नन्दराज का पुत्र बताया गया है। शूद्र उत्पत्ति के समर्थक विद्वानों ने इन दोनों शब्दों को शूद्र जाति के अर्थ में ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त 11वीं सदी के दो संस्कृत ग्रंथों सोमदेवकृत 'कथासरितसागर' तथा क्षेमेन्द्र की 'बृहदकथामंजरी' में चन्द्रगुप्त की शूद्र उत्पत्ति के संदर्भ में भिन्न–भिन्न मत मिलते है।

परन्तु यदि इन मतों की समीक्षा की जाये तो प्रतीत होता है कि इनमें कल्पना अधिक है तथा ठोस प्रमाण कम। वे सभी एक स्वर से नन्दों को शूद्र कहते है तथा बताते है कि द्विजर्षभ कौटिल्य सभी नन्दों को मारकर चन्द्रगुप्त को सिंहासनासीन करेगा। मुद्राराक्षस का साक्ष्य मौर्यां की जाति के विषय में प्रमाणित नहीं माना जा सकता। यह नाटक नंदों को उच्चवर्ण का बताता है जो कि भारतीय साहित्य व विदेशी विवरण के आलोक में विश्वसनीय नहीं है। परन्तु इस नाटक की ऐतिहासिकता ही चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में संदिग्ध है। इसकी रचना मौर्यकाल के लगभग 8 शताब्दियों बाद की गयी। अतः हम मौर्य इतिहास के पुनर्निमाण में इसे प्रमाणित नहीं मान सकते। कथासरितसागर तथा बृहदकथामंजरी भी काफी बाद की रचनाएं है, इन ग्रंथों में नन्द, चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के नाम के अतिरिक्त कोई भी ऐसी बात नहीं कही गयी है जो चन्द्रगुप्त को शूद्र सिद्ध करे। पुनश्च ये ग्रंथ अनेक अनैतिहासिक कथाओं से परिपूर्ण हैं। इससे स्पष्ट है कि जो तर्क इन ग्रंथों में दिए गए है वे सबल नहीं है।

बौद्ध साहित्य का साक्ष्य :–

बौद्ध ग्रंथों का प्रमाण मौर्यों को क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित करता है। यहाँ चन्द्रगुप्त को 'मोरिय' क्षत्रिय वंश का कहा गया है। ये मोरिय कपिलवस्तु के शाक्यों की ही शाखा थे। जिस समय कोशल नरेश विडूडभ ने कपिलवस्तु पर आक्रमण किया। शाक्य परिवार के कुछ लोग कोशल नरेश के अत्याचारों से बचने के लिए हिमालय के एक सुरिक्षत क्षेत्र में आकर बस गये। यह स्थान मोरों के लिए प्रसिद्ध था। अतः यहाँ के निवासी 'मोरिय' कहे गये। महाबोधिवंश उसे राजकुल से सम्बन्धित बताता है जो मोरिय कुल में उत्पन्न हुआ था। महापरिनिब्बानसुत में मौर्यों को पिप्पलिवन का शासक तथा क्षत्रिय वंश का कहा गया है। महापरिनिब्बानसुत प्राचीनतम बौद्ध ग्रंथ है। अतः इसे अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है।

जैन साहित्य का साक्ष्य :–

जैन साहित्य में हेमचन्द्र का 'परिशिष्ट पर्वन्' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें चन्द्रगुप्त को 'मयूरपोषकों' के ग्राम के मुखिया की पुत्री का पुत्र बताया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि जैन ग्रंथ नन्दों को शूद्र बताकर उसकी निन्दा करते है जबकि वे मौर्यों की शूद्र

उत्पत्ति का संकेत तक नहीं करते।

इस प्रकार जैन व बौद्ध दोनों ही साक्ष्य मौर्यों को मयूर से संबंधित करते है। इस मत की पुष्टि अशोक के लौरियानन्दनगढ़ के स्तम्भ पर उत्कीर्ण मयूर आकृति से भी हो जाती है। सर्वप्रथम ग्रुनवेडेल महोदय ने बताया था कि मयूर मौर्यों का वंशीय चिन्ह था।

विदेशी लेखकों के साक्ष्य :–

यूनानी लेखक उसे 'सैण्ड्रोकटस तथा एण्ड्रोकोटस' आदि नामों से जानते है जस्टिन बताता है कि चन्द्रगुप्त 'यद्यपि सामान्य कुलोत्पन्न' था फिर दैवी प्रेरणा वश सम्राट बनने की महत्वकांक्षा रखता था। प्लूटार्क के विवरण से पता चलता है कि वह निम्नकुलोत्पन्न नहीं था। कुल मिलाकर विदेशी विवरण से पता चलता है कि वह राजकुल में उत्पन्न नहीं था।

वर्ण निर्धारण :–

विविध प्रमाणों की आलोचनात्मक समीक्षा के पश्चात यह कहा जा सकता है कि बौद्ध व जैन ग्रंथों का प्रमाण ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक संतोषजनक है। वस्तुतः चन्द्रगुप्त मोरिय क्षत्रिय ही था और उसे शूद्र अथवा निम्न जातीय सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई ठोस आधार नहीं है। सबसे बड़ा प्रमाण है चन्द्रगुप्त का गुरू चाणक्य वर्णाश्रम धर्म का प्रबल समर्थक था जिसके अनुसार क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति ही राजत्व का अधिकारी हो सकता है। वह शूद्र को राजगद्दी पर कदापि नहीं बैठा सकता था। अतः चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय मानना ही सर्वथा समीचीन लगता है।

प्रारम्भिक जीवन

चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन के ज्ञान के लिए हमें बौद्ध स्रोतों पर निर्भर करना पड़ता है। यद्यपि वह साधारण कुल में उत्पन्न हुआ था लेकिन उसमें बचपन से ही महानता के सभी लक्षण विद्यमान थे। उसका पिता मोरिय नगर का प्रमुख था जिसकी मृत्यु चन्द्रगुप्त के गर्भ में रहते एक सीमान्त युद्ध में हो गयी थी। चन्द्रगुप्त की माता अपने भाईयों द्वारा पाटलीपुत्र पहुंचा दी गयी, जहाँ उसका जन्म हुआ। जन्म के साथ ही वह एक गोपालक को समर्पित कर दिया गया तथा गोपालक ने ही उसका लालन पालन किया तथा कुछ बड़ा होने पर शिकारी के हाथों बेच दिया गया। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को शिकारी से खरीद लिया तथा तक्षशिला लाकर उसकी शिक्षा–दीक्षा की।

उपलब्धियाँ :–

1. पंजाब की विदेशियों से मुक्ति :– अनेक पारम्परिक और यूनानियों के वर्णनों से प्रतीत होता है कि सिकन्दर के डेरे से लौटने के पश्चात पंजाब की लड़ाकू जातियों में से कुछ योद्धा चुने तथा एक सेना तैयार की फिर उसने पहाड़ी राजा पर्वतक से संधि की जस्टिन ने लिखा है कि सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात उसके गर्वनरों को मारकर भारत को विदेशियों से मुक्त कराने का श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य को ही है।
2. मगध की विजय :– इस प्रकार पंजाब पर अपना अधिकार जमाकर चन्द्रगुप्त ने नन्द राजाओं से लोहा लेने की ठानी। मिलिन्दपन्हों में नन्दों और मौर्यों के युद्ध का वर्णन हैं। जस्टिन का वर्णन और 'परिशिष्ट पर्वन्' भी इसकी ओर संकेत करते है। पुराण, अर्थशास्त्र और कामन्दक का नीतिसार में भी कौटिल्य द्वारा नन्दों के उन्मूलन का वर्णन है। नन्दों के पास प्रचूर सेना होने के बावजूद उन्हें हराना कोई आसान कार्य नहीं था फिर भी चन्द्रगुप्त को सफलता मिली। नन्द राजा प्रजा पर अत्याचार करते थे जिसके कारण प्रजा में अलोकप्रिय थे, इन कारणों से प्रजा ने अवश्य ही इस नये नेता का साथ दिया होगा।
3. सौराष्ट्र और दक्षिण भारत की विजय :– चन्द्रगुप्त पंजाब व मगध को जीतकर संतुष्ट न हुआ, उसका सौराष्ट्र पर अधिकार था, ऐसा हमें रुद्रदामा के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है। अवन्ति मालवा भी उसके साम्राज्य का अंग रहे होंगे। कुछ अनुश्रुतियों के द्वारा चन्द्रगुप्त की दक्षिण विजय की सम्भावना प्रतीत होती है। अशोक का राज्य दक्षिण में मस्की इरागुड़ी तथा मैंसूर के चीतलदुर्ग जिले तक फैला हुआ था, उसने कलिंग के अतिरिक्त कोई अन्य प्रदेश नहीं जीता। बिन्दुसार भी आनन्दप्रिय शासक था इसलिए उसने ही दक्षिण भारत को विजय किया होगा।
4. सैल्यूकस से युद्ध :– सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात उसके सेनापति सैल्यूकस ने पश्चिमी एशिया में अपना अधिकार जमा लिया फिर भारत की विजय का निश्चय किया। सिंधु नदी पार कर 309 ई. में उसने चन्द्रगुप्त से युद्ध किया, जिसमें उसकी हार हुई। स्ट्रैबों बताता है कि सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से वैवाहिक संधि की और उसे सिन्धु नदी के कुछ प्रदेश दे दिए जिनमें आधुनिक कन्दहार, काबुल, हिरात और ब्लुचिस्तान आते है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त की सीमा हिरात तक पहुँच गयी। चन्द्रगुप्त ने भी सैल्यूकस को 500 हाथी दिए।

रमेशचन्द्र मजूमदार के शब्दों में सैल्यूकस के ऊपर चन्द्रगुप्त को विजय ने यह सुनिश्चित कर दिया कि बड़ी से बड़ी यूनानी सेनाएं, जब उन्हें कुशल और अनुशासित भारतीय सेनाओं का सामना करना पड़ा, निर्बल सिद्ध हुई।

चन्द्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार :–

चन्द्रगुप्त ने केवल थोड़े समय में ही अपने बाहुबल द्वारा मगध राज्य को एक विशाल साम्राज्य का रूप दे दिया। सेल्यूकस पर विजय प्राप्त करने के पश्चात उसका राज्य उत्तर–पश्चिम में हिन्दुकुश तथा आधुनिक ईरान तक फैला हुआ था। कश्मीर, सिन्धु तथा कलिंग को छोड़कर सारा उत्तरी भारत आधुनिक अफगानिस्तान और ब्लुचिस्तान उसके साम्राज्य में शामिल थे। दक्षिण में उसके राज्य की सीमा नर्मदा और विन्ध्यांचल पर्वत को

छूती थी। इस प्रकार हम देखते है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने कौटिल्य के मार्गदर्शन में एक 'अखण्ड भारत' के स्वप्न का निर्माण किया तथा उसे धरातल पर उतारा तथा भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। अतः यदि हम चन्द्रगुप्त मौर्य को भारत का प्रथम राष्ट्रीय सम्राट कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। चन्द्रगुप्त ने दक्षिण के श्रवणबेलगोला (मैसूर) स्थान पर एक जैन मुनि के रूप में उपवास पद्धति द्वारा 298 ई. पू. में प्राण त्याग किया जिसे जैन धर्म में 'उल्लेखना' कहा जाता है।

निष्कर्ष :

चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों को देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक महान विजेता, साम्राज्य निर्माता तथा अत्यन्त कुशल प्रशासक था। सामान्य कुल में उत्पन्न होते हुए भी उसने अपनी योग्यता के बल पर एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया तथा राष्ट्रीय सम्राट के रूप में ऊँचा स्थान प्राप्त किया।

पुस्तक सूची

1. IGNOU, भारत–प्राचीन काल से 8वीं सदी ई. सदी ई. खण्ड–5, ईकाई–18, मगध साम्राज्य का विस्तार, पृष्ठ 13–14
2. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, लेखक के.सी. श्रीवास्तव अध्याय–17, मौर्यवंश, यूनाईटेड बुक डिपो, यूनिवर्सिटी रोड़, इलाहाबाद, पृ. 211 से 219
3. प्राचीन भारत का इतिहास (आदिकाल से 1000 ई. तक), लेखक आर.के. मजूमदार तथा ए.एन. श्रीवास्तव अध्याय–9, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका शासन प्रबंध, एस.डी.बी. पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 4075–नई सड़क दिल्ली, पृ. 249
4. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डी.एन. झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय अध्याय–8, मौर्यकाल, पृ. 176
5. प्राचीन भारत का इतिहास, लेखक डॉ. ओमप्रकाश, प्रकाशक विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लि., अध्याय–10, मौर्ययुगीन भारत, पृ. 139 से 142

मन्दीप शर्मा
एम.ए. इतिहास, यूजीसी नेट
गांव बेरला, तहसील बाढ़डा
जिला चरखी दादरी (हरियाणा) – 127312
मो. – 09671583483, 8053156731
E-mail: historymandeep@gmail.com

15

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यौगिक क्रियाओं का स्वस्थ जीवन भौली में योगदान

डा. सुखबीर सिंह

सारांश :

वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के इस आधुनिक समय मे हमने भले ही कितनी तरक्की कर ली हो तथा व्यक्ति के पास भले ही जीवन यापन की सभी भौतिक सुख सुविधाएं उपलब्ध हों, लेकिन आज हर आदमी के सामने एक यक्ष प्रश्न भी है कि **हम स्वस्थ कैसे रहें** आज हर व्यक्ति बीमारी या अवसाद से ग्रस्त है। मशीनीकरण के इस युग में एक.दूसरे से आगे निकलने की होड़ में चारों तरफ आपाधापी मची हुई है। व्यक्ति के पास खुद के लिए समय ही नहीं है,जिसके चलते हमारा स्वास्थ्य दिन.प्रतिदिन गिरता जा रहा है। यदि समय रहते हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो अनेक लुप्त.प्राय जीवों की तरह मानव जाति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। यदि हम सैंकड़ो वर्श पूर्व के हमारे ऋषि.मुनियों व पूर्वजों के उत्तम स्वास्थ्य, लम्बी आयु, संतोशजनक जीवनशैली, ज्ञान व बल कौशल के बारें में अध्ययन करके आज की पीढी के साथ उसकी तुलना करेगें तो पायेंगे कि हमने आपाधापी की इस जीवनशैली में बहुत कुछ खो दिया है तथा वैज्ञानिक उन्नति के बावजूद हम अपने पूर्वजों से बहुत पीछे हैं। आज चारों तरफ फैली विश्वव्यापी **कोराना रूपी महामारी** में तो स्वास्थ्य का महत्व और भी बढ़ गया है। इस बीमारी से बचाव का एकमात्र उपाय शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता है। शरीर में रोग. प्रतिरोधक क्षमता शारीरिक अभ्यास ,यौगिक क्रियाओं तथा नियमित दिनचर्या के द्वारा अच्छे स्वास्थ्य से ही पाई जा सकती है।

स्वास्थ्य क्या है

सबसे पहले हमें इस बात की जानकारी जरूर होनी चाहिए कि स्वास्थ्य क्या है यह जानने के लिए स्वास्थ्य की निम्नलिखित परिभाषाएं हैं।

1. **विश्व स्वास्थ्य संगठन** के अनुसार श्शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृश्टि से पूर्णतया संतुलित होना ही स्वास्थ्य है ,केवल रोग या विकृति से मुक्त रहना ही स्वास्थ्य नहीं है।
2. **जे.एफ विलियम के अनुसार** स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है जिसमें व्यक्ति दीर्घायु होकर उत्तम सेवाएं प्रदान करता है।

आमतौर पर शरीर में किसी भी प्रकार की बीमारी का न होना ही पूर्ण स्वास्थ्य मान लिया जाता है,जो सही नहीं है।

स्वास्थ्य के प्रकार :

शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य , स्वास्थ्य के ये दो पहलू सबसे चर्चित प्रकार हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त सामाजिक, आध्यात्मिक व बौद्धिक स्वास्थ्य भी स्वास्थ्य के ही तत्व हैं ।

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक

हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मुख्य रूप से तीन प्रकार के कारक होते हैं।

1. जैविक कारक
2. वातावरण से सम्बधित कारक : अ. आंतरिक वातावरण व बाहय वातावरण।
3. व्यक्तिगत कारक : शारीरिक व्यायाम, संतुलित आहार, आराम व नींद, व्यक्तिगत स्वच्छता, स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण, दबाव व तनाव, स्वास्थ्यप्रद आदतें।

स्वास्थ्य से सम्बधित महत्वपूर्ण युक्तियॉ

1. स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग निवास करता है।
2. पहला धन निरोगी काया।
3. इलाज से परेहज बेहतर है।
4. स्व.अनुशासन जीवन का मूल मंत्र।
5. जैसा खाये अन्न, वैसा होये मन।
6. रात को जल्दी सोयें व सूर्योदय से पहले उठो।

खुशहाल जीवन के सिद्वांत

1. नियमित शारीरिक व्यायाम व यौगिक अभ्यास करें।
2. सदा खुश रहो , सकारात्मक सोचो।
3. दूसरों की जय से पहले अपनी जय कहें।
4. माता.पिता व बड़ों का आदर करें तथा बच्चों के प्रति दयाभाव रखें।
5. बेसहारा, जरूरतमंदों व गरीबों की मदद करके उनकी दुआ लें।
6. स्वस्थ रहने के लिए बच्चों की तरह खिलखिलाकर हॅसिए ।
7. विश्वास पात्र दोस्त बनांए जिसके कंधे पर सिर रखकर अपने दिल का बोझ हलका कर सकें।
8. अष्टांग योग की जीवन शैली अपनाएँ।।

हम उपर्युक्त युक्तियों व जीवन के सिद्धांतों को भली.भॉति जानते हुए भी उनका पालन नही कर रहे जिसके कारण आज हम ना केवल शारीरिक बल्कि अनेक मानसिक व सामाजिक बीमारियों से ग्रस्त होते जा रहे हैं। यदि हम स्वस्थ व खुशहाल जीवन जीना चाहते है तो सबसे पहले सन्तुलित दिनचर्या बनानी होगी तथा पूरे स्व.

अनुशासन से उसका पालन करना होगा,ताकि मानव जाति के अस्तित्व को बचाया जा सके।

स्वस्थ रहने के लिए दिनचर्या का प्रारूप

1. प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व बिस्तर छोड. देना चाहिए ,यानी प्रातः नींद से जागने का समय निर्धारित होना चाहिए।
2. अपनी क्षमता व समय के अनुसार सुबह व शाम को एक से दो घंटे का शारीरिक अभ्यास का प्रारूप बनाएं।
3. भोजन का समय ;नाश्ता,लंच व डिनरद्ध एवं मात्रा निर्धारित कर लें तथा निर्धारित समय के अनुसार ही भोजन ग्रहण करने की आदत डालें। बीच में बार.बार भोजन न करें।
4. भोजन में हरी पतेदार सब्जियॉ, सलाद ,रेशेदार फल शामिल करें।
5. रात्री का भोजन रात 7 से 8 बजे के बीच कर लें ।
6. रात को सोने का समय भी निर्धारित करें तथा कम से कम 6 से आठ घंटे की नींद लें।

इस प्रकार रूपरेखा तैयार करके नियमित रूप से उसकी अनुपालना करें। **स्वस्थ नागरिक ही किसी देश की असली धरोहर होते हैं। अस्वस्थ व बीमार व्यक्ति परिवार, समाज व देश पर बोझ होते हैं।** इसलिए स्वस्थ जीवन शैली अपनाकर अपने परिवार , समाज व देश के समृद्विव विकास में हिस्सेदार बनें।

शारीरिक अभ्यास की रूपरेखा

प्रातःकाल में सूर्योदय से पूर्व उठकर नित्य कार्यो से निवृत हो जाएं। इसके बाद दो से तीन कि.मी. तक सैर करें। शारीरिक अभ्यास के लिए शांत वातावरण,खुले व समतल स्थान का चयन करें । खुले व आरामदायक कपड़े पहनने चाहिए।

1 सबसे पहले सूक्ष्म व्यायामों के द्वारा शरीर को गर्म करें।
2 व्यायाम करते समय सभी अंगों को आगे पीछे, बाऍं तथा दाऍं दोनों ओर घुमाऍं ।
3 सूर्य नमस्कार सर्वोतम शारीरिक व्यायाम होता है। इसमें शरीर के सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है।
4 सूक्ष्म व्यायामों व सूर्य नमस्कार से शरीर गर्म हो जाता है तथा यौगिक क्रियाओं के लिए पूरी तरह तैयार होता है। इसमें हम योगासन व प्राणायाम की क्रियाएं करते हैं।

1 योगासनों को हम चार भागों में बांटते है। **;समय लगभग 25 से 30 मिनटद्ध**

समय व सुविधा के अनुसार हम प्रत्येक अवस्था के दो दो आसनों का चयन करेगें।

क. खड़े होकर किए जाने वाले आसन
1. ताड़ासन 2. वृक्षासन

ख. बैठकर किए जाने वाले आसन
1 पश्चिमोतानासन 2. गोमुखासन

ग. पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन
1. भुजंगासन 2. नौकायानासन

घ. पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन.
1. हलासन 2. पवनमुक्तासन

2. प्राणायाम क्रियाऍं ;समय लगभग 20 से 25 मिनट

मानसिक विकास व शांति के लिए प्राणायाम की क्रियाओं का अभ्यास करना अति आवश्य होता है।

क. लम्बे गहरे सांस लेना व छोडना ;2 मिनट
ख. कपालभाती क्रिया ;3 से 5 मिनट
ग. अनुलोप विलोम क्रिया ;3 से 5 मिनट
घ. भ्रामरी क्रिया ;3 से 5 मिनट
कृ ओंकार ध्वनी व गायत्री मंत्र का जाप ;3 से 5 मिनट

अंत में दोनो हाथों से तालियां बजाते हुए जोरदार ठहाके मारकर हंसे तथा दोनो हाथों की हथेलियों को आपस में रगड़ते हुए ऑखों व मुॅह पर मालिश करते हुए आंखें खोलें। ओम का उच्चारण करते हुए अभ्यास को पूर्ण करें। इस प्रकार यदि हम प्रतिदिन एक से दो घंटे शारीरिक अभ्यास व यौगिक क्रियाएं करके स्वयं को स्वस्थ व खुशहाल रख सकते हैं।

अष्टांग योग की जीवन शैली को आत्मसात् करें।

यम,नियम,आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,ध्यान तथा समाधि योग के आठ अंग होते हैं।

1. **यम** : जो नियम हमारे शरीर के द्वारा धारण करने योग्य हो उसे ही यम कहा जाता है। यम के पांच भाग होते हैं **क. अहिंसा ख. सत्य ग.** अस्तेय, **घ. अपरिग्रह कृ ब्रहृमचर्य**
2. **नियम** : . नियम के पॉच तत्व होते है। क. शौच ख.,संतोष ग तप घ. स्वाध्याय कृ ईष्वर.प्रणिधान
3. **आसन** : . किसी एक आरामदायक अवस्था में बैठने की शरीर की स्थिति को ही आसन कहते हैं। आसन तभी सम्भव है जब हमारा चित स्थिर होगा। अस्थिर अवस्था में हमारे मन मे चंचलता होती रहती ह। इसलिए चित की स्थिरता द्वारा ही आसन सम्भव है।
4. **प्राणायाम** : . प्राणायाम दो शब्दों से बना है प्राण आयाम । प्राण का अर्थ है शक्ति उर्जा या सांस तथा आयाम का अर्थ है रोकना। अर्थात प्राण वायु या अपने सॉसों पर नियंत्रण को प्राणायाम कहते है। इससे हमारे चित को एकाग्र करने में

सहायता मिलती है।

5. **प्रत्याहार** : . सांसारिक विषय वस्तुओं से इन्द्रियों को हटाना ही प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार द्वारा हमारा मन एक स्थान पर केंद्रित होता है।
6. **धारणा** : . किसी एक ही विषय वस्तु या स्थान पर अपने मन को केंद्रित करना धारणा कहलाता है। यह बिंदु बाहरी व आंतरिक दोनो हो सकते हैं। **क. बाहय ख. आतरिक**
7. **ध्यान** :. धारणा की निरंतरता बने रहना ही ध्यान कहलाता है। इसमें किसी प्रकार का बिध्न नहीं होना चाहिए
8. **समाधि** : . यह साधक की अंतिम अवस्था है। जब साधक अपने निजी स्वरूप को भूलकर केवल अपने लक्ष्य पर ही केंद्रित रहता है तो उस अवस्था को समाधि अवस्था कहते है। इसमे साधक अपना भाव भूल जाता है। ध्यान की निरंतरता ही समाधि कहलाती है।

एक सामान्य गृहस्थी या साधक अप्टांग योग के माध्यम से स्वस्थ व सुखी जीवन जी सकता है। एक व्यक्ति का न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक ,सामाजिक व आध्यात्मिक पक्षों का विकास होना भी जरूरी है। अप्टांग योग से व्यक्ति का मानसिक , सामाजिक व आध्यात्मिक सभी पहलुओं का विकास होता है, इसलिए सर्वागीण विकास के लिए अप्टांग योग की जीवन शैली को आत्मसात् करनी चाहिए।

निष्कर्ष :

पहला धन निरोगी काया तथा स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ दिमाग निवास करता है ये कहावतें बहुत प्राचीन व प्रचलित होने के बावजूद आज भी शत प्रतिषत सही हैं। स्वास्थ्य सभी के लिए अनिवार्य होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति ही किसी भी प्रकार के कार्य को कुषलतापूर्व कर सकता है। सुखी जिवन व्यतीत करने के लिए स्वस्थ होने की आवष्यकता होती है। स्वस्थ होने पर हम पर शारीरिक , मानसिक तथा सामाजिक रूप से अपनी क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग कर सकते हैं। राजा हो रंक, नेता हो या प्रजा, अमीर हो या गरीब, कर्मचारी हो या व्यापारी, बूढा हो या जवान सभी के लिए स्वास्थ्य सबसे जरूरी आयाम है। व्यक्ति भले ही कितनी उन्नति कर ले, जीवन में षिखर पर जाने का एकमात्र रास्ता उसका अच्छा स्वास्थ्य ही होता है। शरीर भगवान् का दिया हुआ एक अनूठा उपहार है लेकिन अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखना हमारे स्वयं के उपर निर्भर करता है। हमें भगवान के दिए इस उपहार को संभालकर रखना चाहिए। यदि उक्त कार्यक्रम के अनुसार रूपरेखा तैयार करके नियमित रूप से उसकी अनुपालना करें तो हर व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा होगा। शारीरिक अभ्यास व यौगिक क्रियाओं से जहॉ शरीर के अंगों का विकास होता है,शरीर के सभी संस्थान कुशलता पूर्वक काम करते है,वहीं अश्टाग योग को आत्मसात् करने से व्यक्ति का आध्यात्मिक,बौद्धिक, नैतिक व सामाजिक विकास होता है जिसे सर्वांगीण विकास कहते हैं। हर व्यक्ति की सम्पूर्णता उसके सर्वांगीण विकास में है। स्वस्थ नागरीक ही किसी देष की असली धरोहर होते है। अस्वस्थ व बीमार व्यक्ति परिवार, समाज व देष पर बोझ होते है। इसलिए स्वस्थ जीवन शैली अपनाकर अपने परिवार , समाज व देश के समृद्वि व विकास में हिस्सेदार बनें। आज चारों तरफ फैली विश्व व्यापी कोराना रूपी महामारी में तो स्वास्थ्य का महत्व और भी बढ गया है। इस बीमारी से बचाव का एकमात्र उपाय शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता का होना है,जो अच्छे स्वास्थ्य से ही पाई जा सकती है। अच्छा स्वास्थ्य बाजार में खरीदकर नही लाया जा सकता है। अच्छा स्वास्थ्य केवल शारीरिक अभ्यास , यौगिक क्रियाएं एवमं संयमित दिनचर्या से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए ये कहना गलत नही होगा कि शारीरिक अभ्यास ,यौगिक क्रियाओं एवं संयमित दिनचर्या ही स्वस्थ जीवन का आधार होते हैं, जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अति आवष्यक हैं।

Reference /Supporting Research

- Baron, R.A.(1999): Psychology. New Delhi: Prentice Hall of India.
- Gilliland, B.E., James Richard K. & Bowman J.T.(1989) Theories and Strategies in Counseling and Psychotherapy .New York: Allyn and Bacon.
- Kapur, M.(1997): Mental Health in Indian Schools. New Delhi: Sage.
- Nelson, ones R.(1994) : The Theory and Practice of Counseling Psychology. London: Cassel Education Ltd.
- Anand MP. Non-pharmacological management of essential hypertension. *J Indian Med Assoc*. 1999;97(6):220-225.
- Apte NK, Kabekar VG. Prevention of E.N.T. diseases. *Indian J Med Sci*. 1998;52(9):383-394.
- Banerjee B, et al. Effects of an integrated **yoga** program in modulating psychological stress and radiation-induced genotoxic stress in breast cancer patients undergoing radiotherapy. *Integr Cancer Ther*. 2007;6(3):242-50.
- Beddoe AE, Lee KA. Mind-body interventions during pregnancy. *J Obstet Gynecol Neonatal Nurs*. 2008;37(2):165-75.
- Berk B. **Yoga** for moms. Building core stability before, during and after pregnancy. *Midwifery Today Int Midwife*. 2001;(59):27-29.

- Bharshankar JR, Bharshankar RN, Deshpande VN, et al. Effect of **yoga** on cardiovascular system in subjects about 40 years. *Indian J Physiol Pharmacol.* 2003;Apr, 47(2):202-206.
- Bijlani RL, Vempati RP, Yadav RK, et al. A brief but comprehensive lifestyle education program based on **yoga** reduces risk factors for cardiovascular disease and diabetes mellitus. *J Altern Complement Med*. 2005;Apr, 11(2): 267-274.
- Birkel DA, Edgren L. Hatha **yoga**: improved vital capacity of college students. *Altern Ther **Health** Med*. 2000;6(6):55-63.
- Carlson LE, Speca M, Patel KD, Goodey E. Mindfulness-based stress reduction in relation to quality of life, mood, symptoms of stress, and immune parameters in breast and prostate cancer outpatients. *Psychosom Med*. 2003;Jul-Aug, 65(4):571-581.
- Allport, G.W. (1961) Pattern and Growth in Personality, New York ; Lea Fibger and Co.
- AAHPER (1976) Youth Fitness Test Manual, Washington, D.C. American Association of Health, Physical Education and Recreation (Revised).
- Baljit Singh (2009) Educational Psychology and Sports Psychology, Sports Publication, New Delhi.
- Bucher, C.A. and Wuest, D.A. (1987) Foundation of Physical Education and Sports (U.S.A. : Mirror / Mosby College Publishing.
- Cattell, R.B. (1967) 'The Scientific Analysis of Personality, New York ; Pengium Books.
- Kane, J.E. (1966) Personality Profile of Physical Education Students compared with others, Proceeding of the First International Congress of Sports Psychology, Rome.

डा. सुखबीर सिंह
सहायक प्रोफेसर
शारीरिक शिक्षा विभाग,
राजकिय स्नातकोत्तर (PG)
महाविद्यालय हिसार।

16

'' कुरूक्षेत्र में मानव मन के सम्मिलित विकारो का विस्फोट है"

डॉ० नवीन कुमार

सारांश :

'कुरूक्षेत्र': यह रामधारी सिंह 'दिनकर' का एक विवादास्पद प्रबंधकाव्य है। इसकी कथा का आधार महाभारत के युद्धोपरांत भीश्म और युधिष्ठिर का संवाद है। यद्यपि महाभारत का यह प्रसंग कथा की श्रंखलाबद्धता के पूर्ण–निर्वाह के साथ 'कुरूक्षेत्र में वर्णित नहीं है, तथापि' दिनकर ने युद्ध और शांति विषायक विचारों के तर्कपूर्ण रसात्मक वर्णन के बीच बहुत ही कुशलता के साथ कथा–सूत्र बनाये रखने का प्रयत्न किया है। सच तो यह है कि युद्ध के औचित्य और शांति की छलनामयी प्रवृत्ति के संबंध में कवि अपने विचारों को भीष्म के माध्यम से वयक्त करता है और अभिव्यक्ति की तन्मयता में पाठक पौराणिक चरित्रों की अनिवार्य कथा के विवरण के लिए कोई विशेष आकांक्षा नहीं रखता है। भीष्म और युधिष्ठिर परिचित पात्र है ओर इनको लेकर महाभारत की कथा को दुहराने की इच्छा कवि को नही है–'' कुरूक्षेत्र की रचना भगवान् व्यास के अनुकरण पर नही हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उददेश्य था। मुझे जो कहना था वह युधिष्ठिर और भिष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था''

इसीलिए 'कुरूक्षेत्र' के प्रबंधत्व के आगे आलोचक प्रश्नवाचक चिह्न लगाते रहे है। कोई इसे युद्धकाव्य कहता है, कोई उसे प्रबंध के क्षेत्र में शिल्प की दृश्टि से एक प्रयोग मानता है और अधिकांश आलोचकों की दृश्टि में यह एक विचार–काव्य ही है। स्वयं कवि की दृष्टि में भीष्म–युधियिठर संवाद का उल्लेख काव्य के प्रबंधत्व की सुरक्षा के लिए ही किया गया है। यही कारण है कि इसमें महाकाव्य जैसी संपूर्ण कथा का अभाव है।

वस्तुतः कवि पुरातन कथा–संकेतो के माध्यम से आधुनिक समस्या (युद्ध, शांति और विज्ञान) का विश्लेषण करना चाहता है।आज युद्ध और शांति की समस्या सर्वत्र अपनी भीषणता के साथ प्रस्तुत है। युद्ध क्यों होता है ?युद्ध का दायित्व किस पर है। प्रतिशोध के लिए युद्ध आवश्यक है अथवा नहीं ? शक्ति के माध्यम से लादी गयी शांति का विरोध किस तरह होना चाहिए ? आज के विज्ञान का उत्कर्श अनुकूल तथा प्रतिकूल स्थिति कब और कैसे पैदा करता है ? कर्मवाद, योगवाद तथा नियतिवाद आदि के रूप किस तरह के होते है ?– ऐसे ही अनेकानेक प्रश्नों एवं प्रश्नोंतरों को वाद–विवाद की शैली में कवि ने कुरूक्षत्र" में अभिव्यक्ति किया है।

कवि के लिए युद्ध के लिए व्यक्ति ही जिम्मेदार है। बुढ़े कुटिलनीतिज्ञ, देश प्रेम तथा राजनीति के बहाने युद्ध के औचित्य का सहारा लेते है। वस्तुतः समुदाय कभी लड़ना नहीं चाहता है। स्वार्थ–लोलुप सभ्यता के अग्रणी वैयक्तिक द्वेष–भाव के कारण युद्ध का आह्वान करते है। महाभारत के युद्ध की भी यही पृष्ठभूमि रही है। पांडवो में भी स्वार्थपूर्ण युद्ध–लिप्सा रही है। युद्धोपरांत पांडवों के शिविर में सर्वत्र हर्ष– उल्लास हो रहा है, लेकिन उस उल्लास और आनंद के वातावरण में युधिष्ठिर चिंतातुर है। वे आत्मचिंतन कर रहें है युद्ध के भयंकर परिणामों को देखकर उनका मन दुःखी होता है। वह क्षोभ और ग्लानि से भर जाता है। मृत सुयोधन उनकी गति पर मानो व्यंग्य करता हुआ उनकी भर्त्सना करता है। अभिमन्यु के रक्त से सना हुआ विजय–सुख उन्हें पसंद नहीं है। उन्हें महसूस होता है कि पॉच असहिष्णु पांडवों के द्वेश से पूरे देश का संहार हो गया है। ऐसी ही अनिर्णय का मानसिकता लेकर मर्माहत युधिष्ठिर शर्–शय्या पर पड़े पितामह भीष्म के पास पहुँचते है।

युधिष्ठिर, पितामह से पुछते है कि युद्ध का वास्तविक दोशी कौन है ? वे युद्ध के परिणामों की ओर इंगित करते हुए कहते है कि यदि वे युद्ध के इन भीषण और भयावह परिणामो से भिज्ञ होते तो निश्चय ही युद्ध करने के बजाय त्याग,तप और बलिदान के शांतिपूर्ण मार्ग को अपनाकर विश्व को युद्ध की विभीषिका से बचा लेते। दुर्योधन ऐश्वर्य, को भोगता, पर इस नरसंहार का भागी तो मुझे नहीं बनना पड़ता। यह सुनकर भीष्म, युधिष्ठिर के अशांत मन को राहत देने के लिए कहते है–युद्ध एक तुफान है। एक झंझावट प्रकृति के अंतर में संगृहीत तप्त उश्णताओं का विस्फोट है। उसी तरह मानव –मन के सम्मिलित विकारो का विस्फोट युद्ध है, जो अश्वयम्भावी और अनिवार्य है।

युद्ध अवश्य ही भयंकर और अनिष्छित वस्तु है लेकिन है अनिवार्य । मानव–मन स्वाभाव से ही ईश्या ,द्वेश, विद्रोह, स्वार्थ, अनाचार और अत्याचार आदि अनेक दुर्गुणों का घर है। व्यक्ति मन की विकारग्रस्त स्वार्थपरथा ही युद्ध का दायित्व है। मानव–की मन स्वाभाव से ही अपने शौर्य का अहंकारी होता है। युद्ध की चिंगारी वही से निकलती है। ऐसे लेाग प्रतिशोध की भावना से जलने लगते है। फिर पाप और पुण्य,धर्म और अधर्म का विचार युद्ध लोलुप व्यक्ति नही करते है। वस्तुतः धर्म और अधर्म के बीच कोई विभाजन रेखा नहीं खीची जा सकती है। कोई भी व्यक्ति युद्ध नहीं चाहता है लेकिन शत्रु जब उसके देश पर चढ़ आते है तो लाचार होकर तलवार उठानी ही पड़ती है। रोग से पीड़ित होने पर उसका उपचार करना ही पड़ता है । रोग मिठाई खाने से दूर नही होता है बल्कि

डॉ० नवीन कुमार
प्राचार्य +2 उच्च विद्यालय
सुन्दरपहाड़ी, गोड्डा,
झारखण्ड पिन–814156
मो०–8757123840

उसके शमन के लिए तिक्त औषधि चाहिए। इसलिए जीवित रहने के लिए अंगार जैसी वीरता चाहिए। ज्वलित प्रतिशोध पर खड़ा होने वाला युद्ध पाप नहीं हो सकता है। अपने अधिकारों के लिए युद्ध करना पाप नहीं है। लोग युद्ध की निंदा करते है मगर, जब मानव –मन में स्वार्थ के कलुष, , कुलिष– संघर्ष की भिन्न–भिन्न चिंगारियों उठती रहेगी, तब तक विश्व में अनिवार्यतः होता रहेगा । अतः जो वस्तु अनिवार्य है उसके लिए खिन्न होना, परितप्त होना व्यर्थ है। युद्ध किसी न किसी बहाने फुटकर ही दम लेता है। युद्ध पांडवो के भिक्षु होने से भी कभी नही रूक सकता है।

निष्कर्षः

भीष्म आगे व्यक्ति–धर्म और समुदाय–धर्म की चर्चा करते हुए कहते है कि व्यक्ति –धर्म और समुदाय–धर्म दो अलग–अलग सत्ताएँ है। धर्म, तप, त्याग,करूणा, क्षमा आदि व्यक्ति की शोभा है, किंतु जब समाज का प्रश्न उठता है, तब मानव को इन कोमल भावनाओं को भूलना पड़ता है। समुदायगत भावों ने ही महाभारतीय युद्ध अनिवार्य बनाया है। अतः युद्ध की आवश्यकता जनमत और उसकी प्रवृतियों के झुकाव के आधार पर भी मानी जा सकती है। जनता कभी अन्याय सहन नहीं करती है। इसलिए जनमत की प्रवृतियों की ओर भी राजनीति को भी ध्यान देना पड़ता है। वास्तव मे तप, त्याग, तथा भिक्षा इत्यादि योगियों , बलहिनों तथा कायर पुरूशों के धर्म है जो युद्ध से सदा यह सोचकर भयभीत रहते है कि ग्लानिमय जीवन मरण की अपेक्ष बहुत अच्छा है। जीवित जाति हमेशा अपने देवता के मंदिर में शूरता की आरती उतारती रहती है। यह ठिक है कि तप, त्याग, करूणा,क्षमा, से भींगकर व्यक्ति का मन बलवान होता है लेकिन हिंसक पशु जब उसे घेर लेता है, तब बलिश्ठ शरीर ही काम आता है। मनोबल देह का शस्त्र नही हो सकता । आत्ममबल से देह का संग्राम नही जीता जा सकता है। योगियों की शक्ति हार खा सकती है लेकिन समुदाय की शक्ति सदैव अजेय रहती है। शास्त्र की महत्ता और उपयोगिता के संबंध में दैत्यों का दलन करने वाले श्रीराम ने सीता को बताया था कि मतिभ्रष्ट मानव के शोध का उपाय एक शस्त्र ही है। त्याग और तप का कोई वश नहीं लचता। दुष्ट त्याग को कायरता समक्षते है। अतः कांटे को कांटे से ही निकालना चाहिए।

संदर्भ

1. डॉ0 श्याम नंदन किशोर, आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प, पृ. 79
2. रामधारी सिंह दिनकर, कुरूक्षेत्र की भुमिका पृ. 3
3. आचार्य नददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ. 81
4. डॉ0 नगेन्द्र, विचार और विश्लेषन, पृ. 134
5. डॉ0 शंभुनाथ सिंह टिकी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ.695

17

प्रवासी साहित्य और अभिमन्यु अनत

जयन्ती

सारांश

साहित्य रूपी विशाल वृक्ष की अनेक समृद्ध शाखाओं में से एक शाखा प्रवासी साहित्य की भी है जो दिन–प्रतिदिन अपने योगदान से हिन्दी साहित्य को पुष्पित व पल्लवित कर रही है। हिन्दी साहित्य की समृद्धि प्रदान करने के साथ–साथ प्रवासी साहित्य देश–विदेश के पाठकों को प्रवासी लोगों के संघर्ष से तादातम्य कराता है।

वस्तुतः प्रवासी साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जो उन लोगों या उनके वंशजों द्वारा दिखा गया जो अनिश्चित समय के लिए किसी मजबूरीवश अपनी धरती छोड़ कर दूसरे देश चले गये हो।

प्रवासी शब्द दो प्रकार के मनुष्यों से संबंधित है। एक वे जो गिरमिटिया मजदूरों के रूप में दूसरे देश ले जाए गए और दूसरे वे जो स्वेच्छा से दूसरे देशों में जाकर रहने लगे। पहली प्रकार के मनुष्यों की तीसरी चौथी पीढ़ी ने शिक्षित व सक्षम होकर अपने पूर्वजों के संघर्ष को वाणी देने का कार्य किया।

इसके साथ ही स्वेच्छा से विदेशों में बसे लेखकों का साहित्य भी प्रवासी साहित्य के अन्तर्गत आता है। डॉ0 कमल किशोर गोयनका ने भारतेतर देशों में रचे हिन्दी साहित्य को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है।

"1. भारत से गिरमिटिया मजदूर बनकर मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड गयाना आदि देशों में गए लोगों द्वारा रचा हिन्दी साहित्य।
2. भारत के पड़ोसी देशों (नेपाल, बर्मा, भूटान व श्रीलंका आदि) में बसे भारतवासियों द्वारा रचा हिन्दी साहित्य।
3. विश्व के अन्य महाद्वीपों (एशिया, युरोप, अमेरिका, अफ्रीका आदि) में रचा हिन्दी साहित्य।

गिरमिटिया प्रथा के अन्तर्गत विभिन्न देशों में गए मजदूरों की करूण कथा को पं0 रामअवध शर्मा, बेनीमाधो सुतीराम जैसे लेखकों ने विभिन्न सभाओं, पत्र–पत्रिकाओं व अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

इसी धारा को आगे ब्रजेन्द्र कुमार 'मधुकर', शिवसागर रामगुलाम, अभिमन्यु अनत और सोमदत्त बखोरी जैसे लेखकों ने संभाला।

भारत के पड़ोसी देश बर्मा में सत्यनारायण गोयनका, चन्द्रप्रकाश प्रभाकर 'मौतीरि' नेपाल में डॉ0 ध्रुवचन्द चेतन कार्की आदि ने प्रवासी हिन्दी साहित्य में अपना योगदान दिया।

विश्व के अन्य महाद्वीपों में से अमेरिका में रामेश्वर अशान्त, डॉ0 भूदेव शर्मा, सुषम वेदी, अजंना संधीर और युरोप महाद्वीप में राधाकान्त भारती, उषाराजे सक्सेना व श्यामा कुमार जैसे साहित्यकारों ने हिन्दी–साहित्य के प्रचार–प्रसार हेतु उल्लेखनीय कार्य किया।

विश्व के संपूर्ण प्रवासी साहित्य में से मॉरिशस, फिजी आदि देशों के हिन्दी साहित्य की अपनी विशेषता है। इन देशों में प्रचुर मात्रा में हिन्दी साहित्य लिखा गया और इस साहित्य में अपने पूर्वजों के संघर्ष की जो यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए यह साहित्य प्रवासी हिन्दी साहित्य में अग्रगण्य है।

मॉरिशस के अप्रवासी हिन्दी लेखकों में डॉ0 अभिमन्यु अनत का नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। अनत के पूर्वज गिरीमिटिया मजदूर के रूप में भारत से मॉरिशस लाए गए जहाँ उन्होंने अपार पीड़ा और शोषण को झेला। अभिमन्यु ने अपने पूर्वजों की पीड़ा को और उनके संघर्ष को अनुभव किया। उनके शब्दों में, "उन अत्याचारों को मैंने देखा तो नहीं था लेकिन उनके परिणामों को भुगता जरूर। उसे जीकर ही ऐतिहासिक यातनाओं की प्रतिक्रियास्वरूप लेखक बना।"[2]

अभिमन्यु अनत ने किशोरवय से ही अपनी लेखनी से क्रान्ति का आवाहन किया। 17 वर्ष की आयु में 'परिवर्तन' नाटक लिखकर तीन हजार दर्शकों के समक्ष मंचन किया।

इनका समग्र साहित्य भारतीय समाज की संस्कृति, परंपरा, अस्मिता और स्वाधीनता के संघर्ष का जीवन्त चित्रण करता है। उन्होंने लगभग 70 पुस्तकों की रचना की जिसमें 32 उपन्यास, 8 कहानी संग्रह, 5 कविता संग्रह, 5 नाटक व अन्य विधाओं की लगभग 20 पुस्तकें है।

डॉ0 अनत ने साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा है – "वह मानवीय संबंधों और मूल्यों की सर्जना है साहित्य जहाँ सत्य, शिव और सुन्दर है वहाँ शिव का तांडव रूप अख्तियार करने का अधिकारी भी है।"[3]

इनका संपूर्ण साहित्य इन्हीं मनोभावों की अभिव्यक्ति करता है। अनत ने लगभग चार दशकों तक साहित्य सृजन किया। मॉरिशस में इतने विपुल रचना सिंधु को आकार देने वाले वे अकेले लेखक है जिन्होंने प्रत्येक साहित्यिक विधा में निरंतरता और

गंभीरता को कायम रखा।

इनके उपन्यासों में लाल–पसीना, गाँधी जी बोले थे और पसीना बहता रहा महाकाव्यात्मक उपन्यासों की श्रेणी में गिने जाते है। ये तीनों उपन्यास उन भारतवंशी मजदूरों के शोषण व उन पर हुए अमानवीय अत्याचारों की कहानी कहते है जिन्होंने दारूण दासता के बावजूद अपनी जीवन मूल्यों की रक्षा की और संघर्ष की दुखदायी अनगिनत रातों के बाद आजादी का सवेरा देखा। 'गाँधी जी बोले थे' उपन्यास में अँहिसा और भारतीय जीवन मूल्यों का चित्रण कर समाज को सही दिशा दिखाई गयी है।

कमल किशोर गोयनका के अनुसार, "ये उपन्यास मॉरिशस के गिरमिटिया मजदूरों एवं उनकी संतानों के अस्तित्व अस्मिता, संघर्ष.....तथा मॉरिशस देश के निर्माण की गाथा है जिसमें महाकाव्यात्मक चेतना, उर्जा और उदात्तता विद्यमान है।"[4]

हड़ताल कल होगी, आन्दोलन, हम प्रवासी उपन्यासों में भी भारतवंशी मजदूरों के पुरुषार्थ व संघर्षपूर्ण जीवन का चित्रण मिलता है।

अन्य उपन्यासों में से 'अचित्रित' में वेश्यावृत्ति व भुखमरी की समस्या, 'शब्दभंग' में नशाखोरी व राजनीतिक भ्रष्टाचार, 'पर पगडंडी नहीं मरती' और 'कुहासे का दायरा' में बेरोजगारी व रिश्वतखोरी की समस्या का भयानक रूप देखने को मिलता है। 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग' उपन्यास मॉरिशस जैसे द्वीपनुमा स्वर्ग में बसे नरक का सटीक वर्णन करता है।

इसके अतिरिक्त युवा पीढ़ी का भटकाव, महानगरीय सभ्यता और उसके दुष्परिणाम जैसे अकेलापन, आपराधिक प्रवृत्ति, चरित्रहीनता, मूल्यहीनता जैसी समस्याएँ अनत के अन्य लिखे उपन्यासों का प्रमुख विषय व ध्येय रहा है जिसने समाज को आईना दिखाने का महान् कार्य किया।

कहानी के क्षेत्र में भी अनत की विशिष्ट भूमिका रही। इनके इस क्षेत्र में पर्दापण से नये युग को आगाज हुआ। अनंत द्वारा रचित 8 कहानी संग्रहों में 200 से अधिक कहानियाँ है।

इन कहानियों में मॉरिशसीय जीवन के विभिन्न रूप देखने को मिलते है जिसमें भूख–बेकारी, विसंस्कृतिकरण, पथभ्रष्ट युवा–वर्ग और बदलते मूल्यों के दर्शन होते हैं।

उपन्यासकार और कथाकार होने के साथ–साथ अनत एक सफल नाटककार भी थे। इन्होंने टेलिविजन के लिए 'अजन्ता' की ओर से 30 से भी अधिक नाटक लिखे और निर्देशन भी किया।

धार्मिक नाटकों के बाद इन्होंने सामाजिक समस्याओं पर आधारित नाटक लिखे जिसमें इन्हें आशातीत सफलता भी मिली। इनके मुख्य प्रकाशित नाटक विरोध, तीन दृश्य, गूंगा इतिहास, रोक लो कान्हा व देख कबीरा हाँसी है।

कमल किशोर गोयनका के शब्दों में, "अभिमन्यु की नाट्य संवेदना में वैविध्य है। इसमें देश का अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों है तथा मानव–जाति का युद्ध से रक्षा का भी स्वपन है।"[5]

एक कवि के रूप में भी अनत ने शोषित वर्ग की आवाज को बुलन्द किया और भ्रष्टाचार, अनैतिकता से जन–मुक्ति को आवाज दी।

अनत के अनुसार इन्होंने तेजाबी प्रश्नों के लिए कविता लिखना आरंभ किया था। इनकी, पहली कविता 'पसीना किसी का, फसल किसी की' उपरोक्त भावों की पुष्टि करती है।

डॉ0 शिवमंगल सिंह सुमन 'नागफनी में उलझी सांसे' की भूमिका में लिखते हैं, "अतीत और वर्तमान के संबंध सूत्रों की मूलग्राही पकड़ के कारण उनकी संवेदना गहरी और मार्मिक हो गई है।"[7]

उनका पहला काव्य संग्रह 'नागफनी से उलझी सांसे' था जिसके बाद इनके तीन काव्य–संग्रह प्रकाशित हुए जो कि 'कैक्टस के दाँत,', 'एक डायरी बयान', व 'गुलमोहर खिल उठा' है।

इन कविताओं में भारतीय मजदूरों के साथ हुए छल–कपट व अत्याचारों का घिनौना रूप दिखाई देता है। वे वर्तमान जीवन की यान्त्रिकता तथा विसंस्कृतिकरण को मानव–मूल्यों के लिए घातक मानते है। उनकी कविताएं देश की सांस्कृतिक सामाजिक और मानवीय सार्थकता की प्रतिस्थापित करती प्रतीत होती है।

कमल किशोर गोयनका को लिखे एक पत्र में वे लिखते हैं, "ये सारी कविताएँ उस निहत्थेपन और मिले हुए आक्रोश की प्रतिक्रिया होती है जिसमें आज मेरे देश का आदमी सियासती वायदों के हाथ अपने को गिरवी रख रहा है।"[8]

अनत ने स्वदेशी और विदेशी दोनों प्रकार की दासता को शोषण की संज्ञा दी और इसी कारण उन्होंने कविताओं को समाज सत्ता और 'अव्यवस्था रूपी व्यवस्था' से प्रश्न करने के लिए साधन बनाया। उनकी एक कविता जो 'नागफनी में उलझी साँसे' में संग्रहित है, सूरज के माध्यम से समाज के वैषम्य को जाहिर करती है।

"जिस दिन सूरज को
मजदूरों की ओर से गवाही देनी थी
सुना गया कि
मालिक के यहाँ की पार्टी में
सूरज ने ज्यादा पी ली थी।"[9]

यहाँ सूरज बड़े लोगों का प्रतीक है जो मजदूर वर्ग का नही बल्कि बटिक पूँजीपतियों का सेवक है।

कवि के रूप में अनत को मानव वर्तमान के साथ–2 भविष्य की भी चिन्ता है। उनके प्रश्न मॉरिशस द्वीप के लिए ही नहीं, पूरे विश्व के लिए है। वे एक ऐसी सूरज की कल्पना करते है जिससे समाज से शोषण और लाचारी का अंधेरा समाप्त होकर समरसता और आनंद का प्रकाश फैले।

उपन्यास, कहानियाँ और काव्य रचना के अतिरिक्त अनत ने हिंदी गद्य की अन्य विद्याओं में उल्लेखनीय कार्य किया जिनमें जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, संपादकीय व भेंटवार्ता शामिल है।

विभिन्न पत्रिकाओं का संपादन कार्य करने के साथ–2 इन्होंने बहुत से नवोदित लेखकों का साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करवाया।

इसके अतिरिक्त इन्होंने स्वयं से भेंटवार्ता कर एक नया प्रयोग किया। यह भेंटवार्ता 'आत्मविज्ञापन' में 'आइने के सामने' शीर्षक से छपी जिसमें उन्होंने अपने गुणों के साथ दुर्गुणों को भी विज्ञापित करने में संकोच नहीं किया। यह आत्मविज्ञापन उनके जीवन की सुख–दुखमयी अनुभूतियों का दर्पण हैं।

विभिन्न साहित्यिक क्षेत्रों में अभिमन्यु अनत के योगदान को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे मॉरिशस के ही नहीं अपितु विश्व के एक प्रतिभा संपन्न कलाकार और साहित्यकार थे।

अनत भारत के लोक–मानस में भारतीय मूल्यों के संचारक व प्रतीक बन कर प्रकट हुए। अपने समय के तथा वर्तमान पीढ़ी के लेखकों में उनका स्थान बहुत ही विशिष्ट रहा। सत्ता के विरूद्ध संघर्ष, आम आदमी के सुख–दुख के प्रति जुड़ाव, भारतीय संस्कृति व मूल्यों से लगाव व रक्षा का संकल्प और हिन्दी भाषा के लिए हृदय में विशेष स्थान ही वे विशेषताएँ है जो इन्हें अन्य प्रवासी साहित्यकारों से उच्च श्रेणी के योग्य बनाती है।

प्रवासी लोगों के जीवन का सशक्त व यथार्थ चित्रण इनके साहित्य का अभिन्न अंग है।

डॉ0 कमल किशोर गोयनका के अनुसार, "अनत का आदर्शवाद यथार्थ पर चिपकाया हुआ नहीं है। वह यथार्थ का रंग है और उसी का विकसित रूप है।"[10]

उनके साहित्य में केवल दर्द और पीड़ा ही नही बल्कि मानव– मुक्ति का शंखनाद भी है। वे स्वयं को मॉरिशस में जन्मा और भारतीय आत्मा से संबद्ध मानते है। हिन्दी भाषा के प्रति अगाध प्रेम ही उन्हें भारत से जोड़ता है।

हिन्दी भाषा के विषय में वह लिखते हैं, "मारिशॅस में हिन्दी के महत्व को कम कर देने का अर्थ होगा– 150 साल के इतिहास को मिटा देना..... हमारा तो यह विश्वास है कि हिन्दी के विकास और उसके सही प्रचार–प्रसार से हम अपने इतिहास के प्रति वफादार साबित होगें।"[11]

गद्य–पद्य में एक साथ रचना करने वाले वे एकमात्र ऐसे साहित्यकार है जिन्होंने नाट्यकला, सम्पादन और चित्रकारी के क्षेत्र में अपनी चमक बिखेरी। इसलिए विनोद बाला अरूण ने उन्हें सबसे तेजस्वी नक्षत्र की संज्ञा दी[12] तो वहीं प्रह्लाद रामशरण ने उन्हें मॉरिशस के मूर्धन्य लेखक कहकर संबोधित किया।[13]

प्रवासी हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को देखते हुए उन्हें मॉरिशस का प्रेमचन्द कहा जाना अतिशयोक्ति नहीं सर्वथा सही उपाधि है।

ऐसे लेखक अपराजेय और दुर्लभ है क्योंकि वे अपनी कलम से मनुष्यता की रक्षा करने वाले योद्धा है। प्रवासी हिन्दी साहित्य उन जैसे सम्पूर्ण कलाकार से स्वयं को धन्य महसूस करता है। वे प्रवासी हिन्दी साहित्य के पर्याय और अमूल्य रत्न है जिसकी चमक से हिन्दी साहित्य सदैव प्रकाशवान् रहेगा। प्रवासी साहित्य के सरोवर को विशाल सिंधु बनाने का श्रेय यदि किसी लेखक को दिया जाए तो वे अभिमन्यु अनत 'शबनम' ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ0 16
2. डॉ0 कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत की साहित्य यात्रा, पृ0 20
3. डॉ0 कमल किशोर गोयन का, अभिमन्यु अनत : एक बातचीत, पृ0 64
4. डॉ0 कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत की साहित्य यात्रा, पृ0 90
5. डॉ0 कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ0 161
6. डॉ0 कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत : एक बातचीत, पृ0 61
7. डॉ0 शिवमंगल सिंह सुमन, 'नागफनी में उलझी सांसे', भूमिका, पृ0 5–6
8. अभिमन्यु अनत के कुछ पत्र कमल किशोर गोयनका के नाम, दिनांक 10.6.1985 (अभि0 अनत की साहित्य यात्रा पृ0 252 से उद्धृत)
9. नागफनी में उलझी सांसे (काव्य संग्रह), पृ0 4
10. डॉ0 कमल किशोर गोयनका, हिन्दी का प्रवासी साहित्य, पृ0 320
11. अभिमन्यु अनत, वसन्त चयनिका, पृ0 541–42
12. विनोद बाला अरुण, मॉरिशस की हिन्दी कथा यात्रा, पृ0 183
13. प्रह्लाद रामशरण, मॉरिशस के प्रमुख हिन्दी सेवी और साहित्यकार, पृ0 17

जयन्ती

7/112, धोबी बाड़ा,
जटवाड़ा, सोनीपत – 131001
मोबाईल 9315333247, 8168758548

18

रश्मिरथी' के कथानक–शिल्प का मूल्यांकन :

डॉ० नवीन कुमार

सारांश

यह एक सर्गबद्ध प्रबंध–काव्य है, जिसमें घटनाओं की अपेक्षा चरित्रों की प्रधानता है। यश के रश्मिरथ पर चढ़कर ऐहिक तथा आमुश्कि जीवन व्यतीत करने वाला महाप्राण कर्ण कवि का प्रधान चरित्र–नायक है। काव्य में जितनी घटनाएँ वर्णित है, वे सब–की सब कर्ण के व्यक्त्वि के किसी न किसी पहलू के उद्घाटन के निमित्त नियोजन है। कर्ण का भी पूरा चरित्र इसमें नही आया है। कर्ण के जीवन की भी समस्त घटनाएँ इसमें चित्रित नही है। केवल इतना ही अंश आया है जो कर्ण को अंधकार से प्रकाश में ला बिठाने के लिए अलम् है इस तरह सीमित कथानक की दृष्टि से रश्मिरथी' एक खंडकाव्य ही सिद्ध होता है। घटनाएँ अत्यल्प है। मुख्य घटनाओं में कर्ण को अंगदेश का दुर्योधन द्वारा राजा बनाना परशुराम से युद्ध करना सीखना तथा अभिशापित होना, इन्द्र को कवच –कुंडल दान देना, कुंती के प्रस्ताव का अस्वीकार करना तथा अर्जुन के अतिरिक्त सभी पांडवो को पकड़ने के बाद भी छोड़ देने का संकल्प लेना आदि ही प्रमुख है।

इस तरह सभी प्रधान घटनाएँ प्रसिद्ध है, पैराणिक है और लोकविश्रुत है। उन प्रसिद्ध घटनाओं में कवि ने उन्हीं अंशों में परिवर्तन किया है, जिन अंशो में चरित्र की वृतिओं के अभिव्यंजन की दृश्टि से आवश्यक माना गया है। अन्यथा, परंपरा से प्राप्त कथानक की यथासंभव रक्षा ही की गयी है। कवि ने परंपरा से प्राप्त कथानक की रक्षा ही की है, परंतु कतिपय कथानक–अंशो का उपयोग आधुनिक जीवन के मनोभावों की व्यंजना के लिए भी किया गया है। कही भी कथावस्तु का विधानगत स्वरूप विकृत नहीं हुआ है। यह अवश्य है कि कई सर्गो में आरंभ में कवि ने अपने मंतव्य का, विचारों का और अपनी मनः प्रवृतियों का अपेक्षाकृत अनावश्यक अभिव्यंजना किया है। काव्य में अच्छा यह होता है कि रचनाकार अपने मंतव्य की व्यंजना पात्रों की चेश्टाओं और घटनाओं की गति द्वारा करे न कि उनकी स्पश्ट घोशण अपने शब्दो में की जाय।' दिनकर ने रश्मिरथी' में स्पश्ट घोशणा वाली पद्धति अपनायी है जिससे ऐसा लगता है कि वे प्रवचन देने के मोह का संवरण नही कर सके । प्रवचन देने के मोह का संवरण एक महान् रचनाकार की पहचान है। इस दृश्टि से ' दिनकर का वास्तुविधान कुछ ढीला अवश्य हो गया है।

' कुरूक्षेत्र' की तरह ही इसमें अनेक स्थलो पर विचारों की आवृति मिलती है। जिस तरह 'कुरूक्षेत्र' का कथानक संवाद–शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, उसी तरह 'रश्मिरथी' में मुख्यतः संवाद–शिल्प का ही सहारा लिया गया है,। मार्मिक परिस्थितियों की योजना की गयी है। जब माता कुती शैशव में परित्यक्त पुत्र कर्ण के पास वात्सल्य की झोली भर कर जाती है और मातृत्व की दुहाई देती है, तो कर्ण के लिए परिस्थिति बहुत मार्मिक है। कुती की सफाई देने पर भी कर्ण दुर्योधन को ठुकरा नहीं सकता लेकिन माँ के रूप में कुंती को भी ठुकरा नही सकता। वह वचन देता है कि अर्जुन के सिवा वह अन्य भाइयों को नहीं मारेगा और कुंती के साथ मिलकर पाँच भाई बन कर रहेगा। यह सचमुच मार्मिक परिस्थिति है, जब माता और पुत्र का मिलन होता है। माता को वचन देता है। दूसरा मार्मिक प्रसंग है, परशुराम का ब्रहास्त्र लौटा देना। युद्ध–विद्या सीखकर वह परशुराम से अभिशाप होकर लौटता है क्योंकि परशुराम को क्षत्रिय शिश्य नहीं चाहिए। ऐसा होते हुए भी परशुराम का ह्रदय कर्ण के प्रति वात्शल्य से भरा रहता है। भाव व्यंजना के लिए यह एक अच्छा अवसर है जिसका कवि ने उपयोग किया है। छद्मवेशधारी इन्द्र, कर्ण का कवच कुंडल मांग लेते है और पहचान लिये जाने पर उनकी सादर भर्त्सना भी बहुत मार्मिक है। इस प्रसंग में कर्ण के उदात्त भावों की अभिव्यंजना कवि ने की है। प्रसंगानुसार प्रकृति–चित्रण भी इस काव्य में उल्लेखनीय है किन्तु भावों की प्रधानता ने कार्यो की प्रधानता (घटनाओ की प्रधानता) को गौण कर दिया है जो किसी महाकाव्य के लिए अनिवार्य है। वास्तव में जीवन का व्यापक चित्रन इसमें नही हो सका है। कहा जा सकता है कि घटना पूर्ण कथानक का इसमें अभाव है। वस्तुतः रश्मिरथी' महाभारत का एक खंडमात्र है। महाभारत के एक पात्र (कर्ण) को लेकर उसके जीवन के प्रकाशन में कुछ घटनाएँ नियोजित की गयी है, जो किसी भी खंडकाव्य के लिए अपेक्षित है। ऐसा इसलिए कि खंडकाव्य में कथा – विस्तार, सर्गबद्धता, पारिष्कृत शैली तथा नायक संबंधी बातों का कुछ विशेश प्रतिबंध नही होता है। महाकाव्य के समान मानव –जीवन के समस्त विस्तार को अपनी परिधि में अंतर्भुक्त करना भी खंडकाव्य के लिए अपेक्षित नही है। खंडकाव्य तो एक कहानी की तरह है– A slice from life यानी जीवन के एक प्रकाश पूर्ण क्षण की अभिव्यक्ति। महाकाव्य और खंडकाव्य में आकार–प्रकार की दृष्टि से ही नही बल्कि रचना –विधान (Tecnique) का भी अंतर होता है। पर यह कोई आवश्यक नहीं कि सभी महाकाव्य खंडकाव्य से श्रेष्ट होते है। सच तो यह है कि अनेक महाकाव्य प्रभावहीन है और अनेक खंडकाव्य महाकाव्य की गरिमा से पूर्ण। वस्तुविधान के गठन, चरित्र–सृष्टि की

प्रभावोत्पादकता, भाव–व्यंजना, संवाद–शिल्प की उत्कृष्टता तथा कर्ण के उपेक्षित चरित्र का उदातीकरण आदि की दृष्टि से रश्मिरथी' खंडकाव्य होते हुए भी महाकाव्य की गरिमा से पूर्ण है। जब निराला की कविता' राम की शक्तिपूजा' को Epic Poem कहा जा सकता है, प्रेमचन्द्र की कहानी' कफन को Epic Story की संज्ञा दी जा सकती है, तो कोई कारण नहीं हे कि 'रश्मिरथी' को हम सिर्फ खंडकाव्य कहकर संतुश्ट रहें: इसे महाकाव्य वाला खंडकाव्य कहना ही इसका सही मूल्यांकन होगा।

संदर्भ

1. डॉ0 श्याम नंदन किशोर, आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान पृ. 79
2. रामधारी सिंह दिनकर, कुरूक्षेत्र की भुमिका, पृ. 3
3. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ. 81
4. डॉ0 नगेन्द्र, विचार और विश्लेषण, पृ. 134
5. डॉ0 शभूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ.695

विश्वासभाजन

डॉ० नवीन कुमार
प्राचार्य +2 उच्च विद्यालय
सुन्दरपहाड़ी, गोड्डा,
झारखण्ड पिन–814156
मो०–8757123840

19

दिनकर की कविता में राष्ट्रीय चेतना

दिविक दिवेश, डॉ० सुबोध सिंह 'शिवगीत'

सारांश :

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रीय चेतना के सबसे प्रखर और मुखर कवि रहे हैं और देश–प्रेम की भावना उनकी कविता की सबसे बड़ी पहचान रही है। राष्ट्रवाद उनकी कविता में एक मंत्र की तरह है, जो उन्हें स्वाधीनता सेनानियों और उनके आंदोलनों से मिला है। उन दिनों सारे देश में एक–सी स्थिति थी और वह स्थिति थी स्वतंत्रता के संघर्ष की और यह भी कि स्वतंत्रता–संग्राम को सबल बनाने का जुनून हर देशवासी में दूध–पानी की तरह घुला–मिला था। दिनकर जी ने उस परिवेश को देखा, समझा और आत्मसात कर लिया। श्री जगमोहन शर्मा लिखते हैं कि 'राष्ट्र की समस्या उनके कवि के लिए राष्ट्र की नहीं, उनके हृदय की पीड़ा थी, उनका आत्म राष्ट्र के लिए विगलित हो गया था, वे राष्ट्र का एक अभिन्न अंग बन चुके थे। अपने व्यक्तित्व को उन्होंने राष्ट्र में लीन कर दिया था, इसी कारण राष्ट्र की अनुभूतियां उनकी आंतरिक अनुभूति बन गई थी। राष्ट्र पर आया संकट, राष्ट्र पर किया गया प्रहार उनके व्यक्तित्व पर किया गया प्रहार बन गया।'[1] यही कारण है कि दिनकर जी की कविताओं में राष्ट्रीय पक्ष उनके प्रथम काव्य संग्रह 'वारदोली विजय' से ही दिखाई देता है। 'दिनकर के रचनाकाल को मुख्य रूप से सन् 1924 से लेकर सन् 1974 तक माना जा सकता है। इस विराट काल में भारत वर्ष की छाती से होकर कई आंधी–तूफान गुजरे, जिसका असर उनकी रचनाओं पर पड़ा।'[2] वारदोली विजय की कई कविताओं में स्वतंत्रता–संघर्ष और राष्ट्रीय भावना के बीज प्रस्फुटित हैं, युग–चेतना और युग का बिंब–प्रतिबिंब तरंगायित है।

वारदोली विजय के बाद दिनकर के दो काव्य संकलनों 'प्रण–भंग' और 'रेणुका' को पाठकों ने हाथों–हाथ लिया। इन दोनों संकलनों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति कहीं खुले और कहीं ऐतिहासिक अभिव्यक्ति के माध्यम से हुई है। कवि ने संकेत किया है कि भारत यदि हजार वर्षों से गुलाम रहा तो उसका एकमात्र कारण भारतीयों में उन दिनों राष्ट्रीय–चेतना और पुरुषार्थ दोनों का अभाव होना था। वे भारतीय स्वर्णिम अतीत से पूरी तरह कटे हुए थे। इसी कारण कवि ने राष्ट्र–जागरण को स्वर्णिम अतीत के गौरव–गान के साथ–साथ वर्तमान दौर की समस्याओं को भी पूरी प्रखरता से उठाया है और सन् 1938 में 'हुंकार' के प्रकाशन के बाद तो वे जैसे राष्ट्रीय–चेतना के प्रतीक–प्रतिनिधि बन गए। इस काव्य–संग्रह में एक साथ क्रांति, बलिदान और शौर्य की त्रिवेणी है। उल्लेख्य है कि कवि उन दिनों की पराधीनता के दंश और उसकी टीस से आहत था और पराधीनता की मजबूरियों से समझौता कर लेना उनके आत्म–सम्मान के मेल में नहीं था। यही कारण है कि कवि पराधीनता के अनय–अत्याचार के विरुद्ध विद्रोही रूख अख्तियार करता है और कड़े तेवर में लिखता है–

युगों से हम अनय का भार ढोते आ रहे हैं,
न बोली तू मगर हम रोज मिटते जा रहे हैं।
पिलाने को कहां से रक्त लायें दानवों को ?
क्या नहीं स्वत्व है, प्रतिरोध का हम मानवों को ?[3]

परतंत्रता के विरुद्ध कवि की ओजस्वी और क्रांतिकारी वाणी ने तद्युगीन राष्ट्रवादी नवयुवकों और स्वतंत्रता–सेनानियों के हृदय में विद्युतधारा–सा काम किया और लाखों युवक स्वतंत्रता–समर में कूद पड़े। इसी चेतना ने कवि को क्रांतिकारी कवि बनाया और राष्ट्रीयता उनके काव्य की आत्मा बन गई। गाँधीजी के शांति–नीति की प्रशंसा करते हुए भी वे राष्ट्र–हित में क्रांति का पक्ष लेते हैं। हिमालय कविता में युद्ध और विध्वंस का आह्वान करते हुए वे क्रांति को महत्व देते हैं–

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दो उनको स्वर्ग–धीर,
पर, फिरा हमें गांदीव–गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।
कह दें शंकर से आज करें, वे
प्रलय–नृत्य फिर एक बार।
पूरे भारत में गूँज उठे,
हर हर बम बम का महोच्चार।।[4]

कवि के इस उदग्र स्वर में राष्ट्र–मुक्ति की कामना है और पराधीनता का दंश झेलने की अपेक्षा राष्ट्र–रक्षा में प्राणों की आहूति दे देना वह ज्यादा श्रेयष्कर मानता है। यही नहीं पराधीन देश की दुःस्थिति और देश के हजारों बच्चों की दारुण दशा देखकर कवि–हृदय कांप उठता है। उस दारुण–दशा पर कवि की मर्मांतक टिप्पणी पाषाण–हृदय को भी विगलित कर देनेवाली है–

कब्र कब्र में अबूध बालकों की भूखी हड्डी रोती है,
दूध–दूध! की कदम–कदम पर सारी रात सदा सोती है।
दूध–दूध! ओ वत्स! मंदिरों में बहरे पाषाण यहाँ हैं,
दूध–दूध! तारे बोलो, इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं ?[5]

कवि यहीं शांत नहीं होता। उसे नौनिहालों के माध्यम से भावी भारत की चिंता है। इसीलिए कहता है कि ईश्वर भले ही मूक–बधिर हो जायें, तारें मौन रहें, किंतु कवि का दर्प शांति से नहीं बैठ सकता, फुंफकार भरे स्वर में कहता है–

हटो व्योम के मेघ, पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
दूध–दूध! ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।[6]

पराधीनता की बेड़ियाँ और विषमता का सैलाब कवि को चैन से नहीं बैठने देता है। कवि ऐसी प्रचंड ज्वाला जला देना चाहता है जिससे परतंत्रता की लौह–बेड़ियाँ भस्म हो जाये और उस नए भारत का उदय हो जो कभी विश्व गुरु और आध्यात्मिक चेतना का उच्च–शिखर रहा है–

भारत नहीं स्थान का वाचक गुण–विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश देश में वहाँ खड़ा, भारत जीवित भास्वर है।[7]

इसी से कवि की यह कल्पना है कि वह भारत का भाल विश्व में झुकता हुआ नहीं देख सकता–

नहीं जीते जी सकता देख, विश्व में झुका तुम्हारा भाल।
वेदना–मधु का भी कर पान, आज उगलूंगा गरल कराल।।[8]

हुंकार के बाद कुरुक्षेत्र कवि का उल्लेख्य प्रबंधकाव्य है जिसकी रचना 1943 ई० में हुई थी। इस कृति में एक ओर राष्ट्रवाद का ओजस्वी स्वर है तो दूसरी ओर मानवतावाद के प्रति नम्य समर्थन है। कवि इसमें युद्ध और शांति के द्वन्द्व में फंसा हुआ है। महाभारत के दो प्रमुख चरित्र भीष्म और युधिष्ठिर इस कृति के मुख्य पात्र हैं। दिनकर जी ने भीष्म और युधिष्ठिर के संवादों के द्वारा गाँधीवाद बनाम मार्क्सवाद के आदर्शों को प्रस्तुत किया है। युधिष्ठिर गाँधीवाद और भीष्म मार्क्सवाद के प्रतीक–प्रतिनिधि हैं। आधुनिक युग में गाँधीवाद को जीवन का आध्यात्मिक आधार माना गया है। युधिष्ठिर गाँधीवादी आदर्श अहिंसा का अवलंब लेकर दुनिया में शांति के लिए रक्तपात से दूर एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं, जिसमें विश्व–बंधुत्व का भाव हो। वे युद्ध की भीषण ज्वाला में मानव की घुटन और जीवन की विवशता पाते हैं। उनके लिए हिंसा पर आश्रित विजय पराजय से भी बढ़कर दुखद है। वे विश्व शांति और मानवता के प्रति प्रेम को महत्वपूर्ण दृष्टि से देखते हैं। निजी सुख और भोग–लिप्सा युधिष्ठिर को मान्य नहीं है। मानवता के प्रति सच्चा प्रेम और स्नेह ही युधिष्ठिर का अभीष्ट है। उनका मानना है कि इसके बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है। दूसरी ओर भीष्म हैं, वे उस तरह की शांति के कायल नहीं है, जिसका आधार अन्याय, शोषण और अत्याचार हो। भीष्म इस तरह की शांति की कड़ी भर्त्सना करते हैं जिसके पार्श्व में दुर्दांत शोषण और अनय चलता रहे। भीष्म का मानना है कि इस शांति की अपेक्षा वह क्रांति अच्छी है, जिसका लक्ष्य सामाजिक अन्याय और शोषण के विरुद्ध जिहाद है। वे भाग्य–नियति पर विश्वास नहीं करते। इसके विपरीत वह कर्मठता उन्हें पसंद है जो साहस और शौर्य की भूमि पर आधारित हो। अपने कर्मठमय जीवन का परिचय देते हुए वे कहते हैं–

आई हुई मृत्यु से कहा अजेय भीष्म ने कि
योग नहीं जाने का अभी है, इसे जानकर
रूकी रहो पास कहीं, और स्वयं लेट गये
वाणों का शयन, वाण का ही उपधान कर।[9]

यह ओजस्वी स्वर भीष्म के बहाने कवि का है। राष्ट्रहित में वे इसी तरह की जीवन–शैली के आग्रही हैं। कुरुक्षेत्र के अनन्तर वे 'सामधेनी' (1946) में अपनी क्रांतिकारी व कालजयी रचनाओं को लेकर प्रस्तुत होते हैं। यह वह काल था जिसमें भारतीय युवा क्रांति–यज्ञ में अपनी आहूति देने में गर्व महसूस कर रहे थे। ऐतिहासिक नारा 'करो या मरो' इसी दौर का बलिदानी नारा था और कवि इस नारे के उद्देश्य से भली–भांति परिचित था। यही कारण है कि 'सामधेनी' की अनेक कविताओं में कवि की विद्रोहमयी और आवेश से परिपूर्ण अनुभूति को अभिव्यक्ति मिली है। वे लिखते हैं–

यह है परतंत्रता देश की, रुधिर देश का पीनेवाली,
मानवता तू कहता जिसको, उसे चबाकर खानेवाली।[10]

कवि की स्वतंत्रता की पुकार किसी भी स्थिति में परतंत्रता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह अपनी पूरी ताकत–शक्ति उसमें झोंककर भी स्वतंत्रता की आकांक्षा करता है। उसे मालूम है कि परतंत्रता रूपी दानवी देवी देश का रुधिर चूसकर उसे खोखला कर देगी। इसीलिए कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह उसे इतनी शक्ति दे कि वह बुझती हुई क्रांतिकारिणी अग्नि–शिखा को संजीवनी रूपी पीयूष–धारा पिलाकर अमरत्व दे सके। कवि की उक्ति है–

दाता, पुकार मेरी, संदीप्ति को जिला दे,
बुझती हुई शिखा को संजीवनी पिला दे।
प्यारे स्वदेश के हित, अंगार मांगता हूँ,
चढ़ती जवानियों का शृंगार मांगता हूँ।[11]

सामधेनी की इन कविताओं में परिपक्व कवि की राष्ट्रीय–चेतना मुखर है। परतंत्रता के प्रति कवि के अंतर में इतना विद्रोह–विप्लव है कि वे अपनी कविताओं से देश की जनता से झटके में परतंत्रता की बेड़ी काट डालने का आह्वान करते हैं। किंतु, कवि ठिठक जाता है, वह नंगी आँखों से देखता है कि इस देश के कुछ द्रोही धर्म–संप्रदाय के नाम पर राष्ट्र की आजादी के संघर्ष के साथ क्रूर मजाक कर रहे हैं। कवि को पूर्वाभास हो गया है कि अब स्वतंत्रता मिलने ही वाली है और वैसे शुभ समय में दंगों का खुला नाच ?कवि हृदय क्षुब्ध है और दंगाइयों को संकेत करते हुए दुःखी मन से कहता है–

ओ बदनसीब! इस ज्वाला में
आदर्श तुम्हारा जलता है
समझायें कैसे तुम्हें कि
भारतवर्ष तुम्हारा जलता है ?
जलते हैं हिन्दू, मुसलमान
भारत की आँखें जलती हैं
आनेवाली आजादी की
लो, दोनों पाँखें जलती है।[12]

खैर, 15 अगस्त 1947 को देश स्वतंत्र हुआ। लंबे संघर्ष के बाद इस देश की जनता को खुली हवा में सांस लेने का अवसर प्राप्त हुआ। पूरे देश ने एक स्वप्न देखा था– आजादी का स्वप्न। वह पूरा हुआ किंतु बहुत जल्द ही आजादी के मात्र सात वर्ष बाद देश ने अनुभव किया कि जो स्वप्न देखा गया था– वह खंड–खंड हो रहा है। सारे स्वप्न अधूरे रह गए हैं। कवि ने अनुभव किया कि अंग्रेजों के साथ स्वतंत्रता का संघर्ष तो समाप्त हो गया, पर अपने ही देश के राजनीतिज्ञों सहित जिनके कंधों पर देश का भार और भविष्य है– वे मनमर्जी और खुदगर्जी के शिकार हो गए हैं। अतः कवि फिर से एक बार कलम थाम हुंकार भरता है–

समर शेष है, उस स्वराज को सत्य बनाना होगा
जिसका है ये न्यास उसे सत्वर पहुँचाना होगा
धारा के मग में अनेक जो पर्वत खड़े हुए हैं
गंगा का पथ रोक इन्द्र के राज जो अड़े हुए हैं
कह दो उनसे झुके अगर तो जग में यश करेंगे
अड़े रहे अगर तो ऐरावत पत्तों से बह जायेंगे।[13]

और, ठीक इसके आठ वर्ष बाद पड़ोसी देश चीन की नजर लग गई। उसने हिन्दी–चीनी भाई–भाई का नारा देकर कायर की भांति पीठ में छूरा घोंपने का कार्य किया। 1962 में उसने लद्दाख और अरुणाचल की सीमा पर युद्ध छेड़कर हमारी शांतिप्रिय भावनाओं पर कुठाराघात कर दिया। फलतः कवि की ओजस्वी वाणी पुनः फूट पड़ी और 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक काव्य संग्रह का सृजन हुआ। उल्लेख्य है कि 'परशुराम' पौराणिक नायक हैं और भारत के इतिहास में वीरत्व और तेजस्विता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत हैं। इस प्रतीक के माध्यम से कवि का उद्देश्य किसी चरित्र–नायक के गाथा गायन की नहीं प्रत्युत् देश पर आये संकट की घड़ी में भारतीय युवकों का उत्साहवर्धन मात्र रहा है। कवि ने स्वयं कहा है कि 'नेफा युद्ध के प्रसंग में भगवान परशुराम का नाम अत्यंत समीचीन है।'[14] इस तरह परशुराम की प्रतीक्षा की रचना आजादी के बाद की अचानक आई घातक विपत्ति की परिघटना के परिप्रेक्ष्य में हुई है। कवि ने चरित्रनायक के माध्यम से ऐसे युगपुरुष की परिकल्पना की है जो परशुराम की नाईं ही तेजवंत हो। यथा–

उद्देश्य जन्म का नहीं कीर्ति या धन है,
सुख भी नहीं, धर्म भी नहीं, न तो दर्शन है।
विज्ञान, ज्ञान, बल नहीं न तो चिंतन है,
जीवन का अंतिम ध्येय स्वयं–जीवन है।
सबसे स्वतंत्र यह रस जो अनघ पीयेगा
पूरा जीवन केवल वही वीर जीयेगा।[15]

निष्कर्षः

इस छोटी–सी टिप्पणी से यह उजागर होता है कि रामधारी सिंह दिनकर इस देश के युवा मानस में नवचेतना का संचार करनेवाले, क्रांति के शंखनाद को तीव्र–भंजनी स्वर देनेवाले और राष्ट्रीय चेतना के अनन्य वैतालिक रहे हैं। परतंत्र भारत और स्वतंत्र भारत की दोनों स्थितियों में कवि ने अपनी ओजस्वी और क्रांतिकारी वाणी के द्वारा विचारों को गति और सार्थक स्वर दिया है जो कवि की प्रतिभा का प्रमाण और प्रतिमान दोनों है।

संदर्भ संकेत :

1. दिनकर का काव्य, जगमोहन शर्मा, पृ० 257, राष्ट्रीय हिन्दी साहित्य परिषद्, नई दिल्ली, 2016
2. दिनकर के काव्य में प्रगतिशील चेतना, देवजानी सेन, पृ० 265, सार्थ पब्लिकेशन, आनंद, गुजरात, 2011
3. हुंकार, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 26 उदयाचल, पटना, 1995

4. वही, पृ० 06
5. वही, पृ० 22
6. वही, पृ० 23
7. नील कुसुम, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 83, उदयाचल, पटना, 1956
8. हुंकार, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 10, उदयाचल, पटना, 1995
9. कुरूक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 16, उदयाचल, पटना, वि०स० 2003
10. सामधेनी, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 63, उदयाचल, पटना, 1947
11. वही, पृ० 63
12. वही, पृ० 35
13. समर शेष है, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 26 उदयाचल, पटना, 1954,
14. परशुराम की प्रतीक्षा, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० 05, उदयाचल, पटना, 1963
15. वही, पृ० 28

दिविक दिवेश
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
डॉ० सुबोध सिंह 'शिवगीत'
शोध निर्देशक
विनोबा भावे विश्वविद्यालय,
हजारीबाग, झारखण्ड।

20

तुलसीदास के साहित्य में व्यंग्य–व्यंजना

अंजली रंजन, डॉ० सुबोध सिंह 'शिवगीत'

सारांश :

हिन्दी के मध्यकालीन कवियों में 'कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास निर्विवाद रूप से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं।'[1] मध्यकालीन भक्ति–साहित्य में तुलसीदास की रचनाओं में कई स्तरों पर व्यंग्य है। कवि की प्रख्यात कृति रामचरितमानस, कवितावली, दोहावली और विनय पत्रिका में कई ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ हमें व्यंग्य के पर्याप्त संकेत मिलते हैं। यह सच है कि मध्ययुग में वाह्य आडम्बरों की प्रधानता हो गई थी और धर्म के क्षेत्र में अंध–विश्वासों का बोलबाला हो गया था। ढोंगी साधुओं के चमत्कारों पर जनता मोहित थी। वर्ण–व्यवस्था के हिमायती जाति–पांति, छुआ–छूत पर विशेष ध्यान देते थे। कबीर ने इसका विरोध तो किया ही था, तुलसीदास भी प्रतिरोध करते हैं। कहा जाता है कि तुलसी के कुछ विरोधियों ने उनकी जाति और वंश–परंपरा पर संदेह किया था। उसका करारा जवाब देते हुए तुलसीदास ने लिखा था कि मुझे वे चाहे जिस जाति या वंश–परंपरा का समझें, मुझे कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है क्योंकि–

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू के बेटी से बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रूचै सो कहे कुछ ओऊ।
मांगि के खैबो, मसीद में सोइबो, लेवे के एक न देवे के दोऊ।।[2]

उस दौर में जाति–प्रथा की खामियों पर इससे करारा व्यंग्य और क्या हो सकता था ?यह अवश्य है कि वे वर्णाश्रम धर्म के पोषक थे और उसकी प्रशस्तियों का उन्होंने गान भी किया है। इसके बावजूद वर्णाश्रम–व्यवस्था के उच्च शिखर पर बैठे लोगों की खामियों पर प्रहार करने से कभी भी उन्होंने गुरेज नहीं किया। व्यवस्थापरक सामाजिक आचारहीनता और पथभ्रष्ट विप्रों (ब्राह्मणों) की खामियों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था–

विप्र निरक्षर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।[3]

इन पंक्तियों में विप्र–समाज की विकृतियों पर यह तीखा व्यंग्य है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वर्ण–व्यवस्था के वे विरोधी हैं। वे तो सामाजिक कुरीतियों के विरोधी थे। उनके युग में धर्म के नाम पर जिस तरह का वाह्याडंबर था, अंधविश्वास की प्रधानता और जातीय श्रेष्ठता का अहंकार था, तुलसीदास को शायद यह स्वीकार नहीं था। इसी से वे कहते हैं–

मेरे जाति–पाँति न चहौ काहू की जाति–पाँति।
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम की।।[4]

तुलसीदास उस व्यवस्था के हिमायती थे, जिसमें आचारहीनता न हो। आचारहीन पंडितों और स्वनामधन्य ज्ञानियों पर चलाये गए ढेर सारे व्यंग्य–वाण इसी कारण तुलसीदास के अनेक पदों में मिलते हैं। समाज में ऐसे अज्ञानियों, पाखंडियों की प्रतिष्ठा देखकर ही तुलसीदास जी ने निम्न पद लिखा है–

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी,
कलिजुग सोई ज्ञानी, सो विरागी।[5]

तुलसीदास भक्त कवि थे। अपने प्रभु श्रीराम के अनन्य भक्त। ऐसे भक्त कवि को समाज में बढ़ती हुई आचारहीनता कैसे सहन होती ?उल्लेख्य है कि किसी भी राष्ट्र–समाज की तरक्की के सूत्र उस समाज के लोगों चाहे वह राजा हो, मंत्री हो या हो समाज को राह दिखाने वाला गुरु सबकी आचारशीलता उनके कर्म और व्यवहार में निहित होती है। राष्ट्र–समाज में परिव्याप्त लोभ, मोह, मद, अहंकार आदि उस राष्ट्र–समाज की चतुर्दिक हानि पहुँचाकर उसे मटियामेट कर देते हैं। ऐसे अटपटे और राष्ट्र–समाज के लिए हानिकर एषणाओं–लालसाओं पर तुलसीदास जी ने व्यंग्यवाणों की मानों झड़ी लगा दी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

सचिव वैद गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म धन तीनि कर होई बेगहिं नास।।[6]

भक्त कवि होने के कारण तुलसीदास ने उनपर भी खूब तल्ख टिप्पणी की है जो ईश्वर यानी प्रभु श्रीराम की आलोचना नासमझी के कारण करते हैं। उन्हें वे मनुष्य होने के बावजूद निरा पशु ही मानते हैं। ऐसे लोग स्वयं कर्महीन होते हैं और कर्महीनता के कारण दुःख भोगते हैं, पर दोष ईश्वर को देते हैं। ऐसे लोगों की मानसिकता दूसरों के दुःख में सुख और सुख में दुःख देखने की होती है। यथा–

खलन्ह हृदयं अति ताप विशेषि।
जरहिं सदा पर संपत्ति देखी।।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई।
हरषहिं मनहुँ परि निधि पाई।।[7]

मध्यकाल में तुलसीदास को लोककवि कहा गया है क्योंकि वे अपनी बुनियादी मूल्य–चेतना में मानववादी हैं। इसी कारण वे उन शासकों की कटु आलोचना करते हैं जो अपनी चिंता पहले और प्रजा की चिंता बाद में करते हैं। उल्लेख्य है कि तुलसीदास के समय राजतंत्र था और राजतंत्र में शासक प्रायः निरंकुश हुआ करते थे। ऐसे राजाओं पर तुलसीदास के व्यंग्य–वाणों

की वर्षा हुई है। वे निरंकुश राजा पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहते हैं–

जस राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।[8]

तुलसीदास जी के समय में समाज में जो आचरणहीनता व्याप्त थी, उससे उन्हें बहुत दुःख था। यही कारण है कि उन्होंने समाज की मर्यादा के पालन पर विशेष जोर दिया है। उल्लेख्य है कि वैयक्तिक और सार्वजनिक समाज के दो अंग होते है। इन दोनों अंगों पर तुलसीदास जी ने व्यापक रूप से विचार किया है। रामचरितमानस में इस मर्यादा का पालन कवि ने लोक शिक्षा के माध्यम से अपने पात्रों से करवाया है। उदाहरण के लिए सांसारिक और पारिवारिक जीवन में राजा, पिता, पुत्र, माता, स्त्री, पति, भाई, सखा, सेवक आदि का क्या पारस्परिक संबंध होना चाहिए, इन सबका उत्कृष्ट उदाहरण रामचरितमानस में मिलता है। किंतु, जो इस मर्यादित आचरण के विरुद्ध अपना व्यवहार करते हैं, तुलसीदास उनपर कटु व्यंग्य करने से नहीं चूकते। आदेश नहीं माननेवाले सेवक, प्रजा की पीड़ा में सहायता नहीं करनेवाले राजा और इसी तरह कुलटा स्त्री और कपटी मित्र के बारे में कवि की कटूक्ति है–

सेवक सठ नृप कृपनि कुनारी,
कपटी मित्र शूल सम चारी।[9]

कवि ने उनलोगों पर भी कड़ी टिप्पणी की है जो स्वयं तो कर्महीन हैं। ऐसे कर्महीन लोगों की तुलना उन्होंने बांस और करील के गुणों से की है। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि जैसे बांस चंदन को और करील बसंत को दोष दे तो यह दोष मिथ्या ही होगा क्योंकि बांस खोखला होता है चंदन उसमें सुगंध कहाँ से भरेगा तथा करील के पर्णरहित होने के कारण वसंत उसे हरियाली नहीं दे सकता। कवि उन मनुष्यों पर भी व्यंग्य करते हैं जो मनुष्य–तन पाकर भी ईश्वर विमुख हैं और रात–दिन पाप–कर्म, ईर्ष्या–द्वेष में निमग्न रहते हैं। कवि ऐसे लोगों को सावधान करते हुए कहते हैं कि अभी भी समय है वे ईश्वर के श्रीचरणों में स्वयं को समर्पित कर अलौकिक सुख प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा कामाग्नि में विषय–रूपी घी डालने से तो वह और तेज हो जाती है। कवि की व्यंग्य–व्यंजना है–

मन पछितैहें अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाई हरिपद भजु, करम, वचन अरू ही ते।।[10]

ऐसे शताधिक प्रसंग तुलसी–साहित्य में है, जिनमें व्यंग्य–व्यंजना प्रभूत मात्रा में हैं। उन्होंने अपनी दर्जन भर कृतियों में इसी कारण लोक–शिक्षा का व्यापक रूप रखा है और उसके प्रकाशन के माध्यम के रूप में व्यंग्य–व्यंजना को एक आधार के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने जिस कुशलता से व्यंग्य–व्यंजना को अपने काव्य का अंश बनाया है, वह अपने आप में अपूर्व है, कवि की प्रतिभा का द्योतक है और हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

संदर्भ संकेत :

1. रामचरितमानस में रस योजना, जंगबहादुर पांडेय, क्लासिकल पब्लिशिंग कं०, नई दिल्ली, 2009, पृ० 112
2. कवितावली, उत्तरकांड, तुलसीदास, पद सं०–106, पृ० 169, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि०सं० 2008
3. रामचरितमानस, उत्तरकांड, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० 986
4. कवितावली, उत्तरकांड, तुलसीदास, पद सं०–107, पृ० 170 गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० सं० 2008
5. रामचरितमानस, तुलसीदास, उत्तरकांड, पृ० 984
6. रामचरितमानस, सुंदरकांड, तुलसीदास, पृ० 732
7. रामचरितमानस, उत्तरकांड, तुलसीदास, पृ० 931
8. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, तुलसीदास, पृ० 386
9. रामचरितमानस, किष्किंधाकांड, तुलसीदास, पृ० 672
10. विनय पत्रिका, तुलसीदास, पद सं० 198, पृ० 319, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० सं० 2027

अंजली रंजन
शोधप्रज्ञा, हिन्दी विभाग,
डॉ० सुबोध सिंह 'शिवगीत'
शोध निर्देशक
विनोबा भावे विश्वविद्यालय,
हजारीबाग, झारखण्ड।

21

गांधी की सत्य की अवधारणाः– एक अध्ययन

अश्वनी कुमार

सारांश :

मनुष्य की जिज्ञासा का कोई अंत नही, उसने विगत की उपलब्धियों से कभी सन्तोष नही किया है। जन्म से मृत्यु तक मानव को विभिन्न प्रकार के अनुभव होते रहते है। कुछ विशेष व्यक्ति चिंतन करते है तथा जीवन का सत्य प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध ने इसी सत्य की खोज में संसार का त्याग किया था तथा सत्य के रूप में जीवन एक शैली जनै धर्म तथा बौद्ध धर्म के रूप में अस्तित्व में आई थी। महात्मा गांधी ने अपने जीवन में विभिन्न प्रयोग किऐ जिन्हें उन्होनें 'सत्य के प्रयोग' कहा तथा बताया कि परमेश्वर और सत्य एक ही है। सत्य का मार्ग अति कठिन भी है तथा आसान भी है परन्तु इसे आत्मशुद्धि अथवा स्वयं की बुराइयों को दूर करके प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार गांधी की सत्य की अवधारणा सिद्धान्त व व्यवहार का अनूठा समन्वय बन गई। गांधी की सत्य की परिभाषा बिल्कुल नवीन नही थी अपितु बहुत से संत महात्माओं ने जो बताया उसी तरह की थी। गांधी का सत्य केवल भगवान की प्राप्ति नही है अपितु एक जीवन शैली है। यह जीवन शैली वर्तमान भौतिकवादी जीवन शैली को नकारती है। गांधी ने सत्य को परिभाषित करते हुए कहा था कि मेरे द्वारा प्रकट किया गया अनुभव अथवा सत्य अंतिम नही हैं। हो सकता है इस क्षेत्र में और खोज हों तथा नऐ अनुभव समाज के समक्ष आऐं। गांधी के अनुसार मनुष्य को समय के साथ अच्छे लक्ष्य के लिए अपने सिद्धान्तो में संसोधन कर लेना चाहिए। यही गांधी की सत्य की अवधारणा का अन्तिम सत्य है।

प्रस्तावनाः–

महात्मा गांधी के व्यक्तित्व का विश्व में अनूठा स्थान है। उन्होंने जीवन भर स्वयं पर शोध किया तथा कभी भी अपनी शिक्षा तथा अनुभव को सर्वोच्च तथा अंतिम नहीं माना। उनके सभी प्रयोग अथवा अनुभव मानव कल्याण को केंद्र मानकर किए गए। उनके अनुभव तथा विचारों का व्यवहारिक प्रयोग सिद्वहो चुका है। महात्मा गांधी ने अपने सिद्धांतों का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में सफलतापूर्वक प्रयोग किया।[1] इतने गुणों का एक व्यक्ति में मिलना दुर्लभ है। महात्मा गांधी ने कभी भी अपने विचार को संपूर्ण नहीं माना उन्होंने लिखा अपने प्रयोगो के संबंध में मैं किसी तरह की संपूर्णता का दावा नहीं करता। जैसे विज्ञान शास्त्री अपने प्रयोग अत्यंत नियम, विचार सहित और सूक्ष्मतापूर्वक करता है, फिर भी उससे उत्पन्न हुऐ परिणामों को वह अंतिम नहीं कहता अथवा वह यह नहीं कहता, कि यहीं सच्चे परिणाम है, इस संबंध में यह संशय नहीं तटस्थ रहता है वैसे ही अपने प्रयोगों के विषय में मेरा भी मानना है। मैनें खूब आत्म निरीक्षण किया है प्रत्येक भाव को जांचा है, उसका विश्लेशण किया है, पर उससे पैदा हुऐ परिणाम सब के लिए अंतिम ही है अथवा यही सही है, ऐसा दावा मैं कभी करना नहीं चाहता।[2]

गांधी के विचारों में सत्य का स्थान सर्वोच्च था इसीलिए उन्होंने अपने अनुभव को 'सत्य के प्रयोग' का नाम दिया। समाज में व्यक्ति की विचारधाराएं बहुत बार परिस्थियों के अनुसार परिवर्तित हो जाती है किंतु गांधी ने कभी अपने सिद्धांतो से समझौता नहीं किया वे परिस्थितियों को अपने सिद्धांतों को सर्वोच्च मानकर बदल देते थे ऐसे अनेक उदाहरण उनके जीवन में मिलते हैं। गांधी ने सत्य को ही सर्वोच्च माना इसीलिए सत्य की गांधी के अनुसार अवधारणा क्या थी यह जानना आवश्यक है।

सत्य की अवधारणाः–

गांधी का दर्शन व्यवहार और सिद्धांत का अनूठा मिश्रण है। गांधी ने अपने जीवन में ऐसी कोई बात नहीं कही जिस पर उन्होंने स्वयं आचरण न किया हो। उनके विचार उनके विभिन्न प्रयोगों और अनुभव की उपज थे।[3] गांधी की सत्य की परिभाशा व्यापक थी। इसमें वे अहिंसा और ब्रहम्चर्य आदि नियमों का भी समावेश करते थे उनके विचार से सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अनगिनत वस्तुओं का समावेश हो जाता है। गांधी का सत्य स्थूल सत्य मात्र वाचिक सत्य नहीं है। वह तो वाणी की भांति ही विचार की भी सत्य है। वह सत्य हमारी अपनी कल्पना का सत्य नहीं है। वह स्वतन्त्र सत्य है, चिरस्थायी सत्य है।[4] विश्व में 'सत्य की खोज' अथवा परिभाशा एक सर्वोच्च लक्ष्य रहा है। बुद्ध, महावीर, ईसा आदि महान आत्माएं सत्य की खोज में घर से निकली तथा सभी ने अपने अनुभवों से सत्य को परिभाषित किया। यह सत्य कोई भौतिकवादी क्षेत्र की विचारधारा नहीं थी अन्यथा बुद्ध और महावीर के जीवन में भौतिक साधनों की कमी नही थी फिर भी वह इन सभी संसाघनों को त्याग कर सत्य की खोज में निकल पडे। अब प्रश्न यह उठता है कि अगर किसी एक महान आत्मा को सत्य की प्राप्ति हो जाती है और वह दुनिया को सत्य प्रकट भी कर देता है तो फिर भी अन्य लोग सत्य की खोज में क्यो भटकते है। वास्तव में सत्य एक आत्म अनुभव है तथा हो सकता है सभी का सत्य अलग अलग हो। अतः गांधी का सत्य क्या था?यह एक गहरा प्रश्न यह है परंतु इससे भी अधिक जटिल तथा गहरा प्रश्न यह है कि गांधी का सत्य पहले खोजे गए

सत्यों जैसा था अथवा भिन्न यह शोध का विशय है। पहले हम सत्य के बारे गांधी के विचार जानेंगे और बाद में इस प्रश्न की गहराई तक पहुंचने का प्रयास करेंगे।

गांधी ने सत्य के प्रयोग में लिखा परमेश्वर की व्याख्याएं अनगिनत है क्योंकि उसकी विभूतियां भी अनगिनत है। ये विभूतियां मुझे आश्चर्य में डाल देती हैं। मुझे तनिक देर के लिए मोह भी लेती है। पर मैं पुजारी तो सत्य रुपी परमेश्वर का ही हूं। वहीं एक सत्य है और अन्य सब मिथ्या है।[5] यहां पर गांधी के अनुसार भगवान ही सत्य है। एक जगह गांधी ने लिखा सत्य..... क्या है?यह एक कठिन प्रश्न हैं लेकिन अपने लिए मैंने इसे यह कहकर सुलझा लिया है कि जो तुम्हारे अंतःकरण की आवाज कहे, वह सत्य है। आप पूछते हैं कि यदि ऐसा है तो भिन्न भिन्न लोगों के सत्य परस्पर भिन्न और विरोधी क्यों होते हैं? चूंकि मानव मन असंख्य माध्यमों के जरिए काम करता है और सभी लोगों के मन का विकास एक सा नहीं होता इसलिए जो एक व्यक्ति के लिए सत्य होगा वह दूसरे के लिए असत्य हो सकता है। अतः जिन्होने ये प्रयोग किए हैं वे इस परिणाम पर पहुंचे है कि इन प्रयोगों को करते समय कुछ शर्तों का पालन करना जरूरी है।[6] यहां गांधी ने माना है कि सत्य की परिभाशा या अनुभव अलग अलग हो सकते हैं अर्थात् सत्य अलग–अलग हो सकता है। सत्य की खोज और परिभाषा व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। किसी के लिए धन अथवा सता प्राप्ति सर्वोच्च सत्य हो सकता है किन्तु किसी के लिए ये कुछ भी नहीं होते हैं और वे इनका त्याग कर देते है। सत्य का संबंध जहां तक मैं समझ पाया हूं वह स्वयं की संतुष्टि से जुडा हुआ है। लेकिन यह भौतिकवादी विषय नही है। गांधी ने सत्य के प्रयोग में लिखा ''यह सत्य मुझे मिला नहीं पर मैं इसका शोधक हुं। इसकी शोध में मैं अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु भी त्यागने को तैयार हूं। इस शोध रुपी यज्ञ में इस शरीर को भी होमने की मेरी तैयारी है और शक्ति है, ऐसा मुझे विश्वास है। पर इस सत्य का साक्षात न कर लेने तक मेरी अंतरात्मा जिसे सत्य समझती है, उस काल्पनिक सत्य को अपना आधार मानकर, अपना दीपक समझकर, उसके आश्रय में अपना जीवन बिताता हूं।''[7]

गांधी जी सत्य की अवधारणा में एक बात स्पष्ट है कि वह परमेश्वर को ही सत्य मानते हैं और इसको प्राप्त करने के लिए बडे से बडा त्याग कर सकते थे। किंतु गांधी जी यह भी कह रहें है कि वास्तविक सत्य की परिभाषा केवल उसे प्राप्त करके ही बताई जा सकती है अर्थात् परमेश्वर उनके लिए काल्पिनिक सत्य था। परंतु इसी को उन्होंने सत्य माना। आगे उन्होंने लिखा 'सत्य के शोध के साधन जितने कठिन हैं उतने ही आसान है। ये अभिमानी को काफी कठिन लग सकते है और अबोध बालक को सरल। सत्य के शोधक को रजकण से भी छोटा होकर रहना पड़ता है।[8] गांधी ने माना की मै बचपन से ही सत्य का पक्षधर रहा हूं। यह मेरे लिए बडा स्वाभाविक था । मेरी प्रार्थनामय खोज ने ईश्वर सत्य है के सामान्य सूत्र के स्थान पर मुझे एक प्रकाशमान सूत्र दिया : सत्य ही ईश्वर है। यह सूत्र एक तरह से मुझे ईश्वर के सामने खडा कर देता है। मै अपनी सत्ता के कण कण में ईश्वर को व्याप्त अनुभव करता हूं।[9] मेरा दावा है कि मैं बचपन से ही सत्य का पुजारी हूं। मेरे लिए यह सबसे सहज और स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्तिपूर्ण खोज ने मुझे ईश्वर सत्य है के प्रचालित मंत्र के बजाय सत्य ही ईश्वर है का अधिक गहरा मंत्र दिया। यह मंत्र मुझे ईश्वर को मानो अपनी आखों के सामने प्रत्यक्ष देखने की क्षमता प्रदान करता है। मैं अनुभव करता हूं कि वह मेरी रग रग में समाया हुआ है।[10] लंदन की गोलमेज परिषद से लौटते हुए स्विटरलैंड की एक सभा में गांधी जी से पूछा गया कि वह सत्य को ईश्वर क्यो समझते है तो उन्होंने कहा था अगर मानव वाणी के लिए ईश्वर का वर्णन संभव करना है तो मैं इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि मेरे लिए तो ईश्वर सत्य है– सत्य शब्द ही उसका सर्वोतम वाचक है। परंतु दो वर्श पूर्व मैं एक कदम और आगे बढा, मैने कहा कि न केवल ईश्वर सत्य है बल्कि सत्य ही ईश्वर है।[11] इस प्रकार गांधी जी ने सत्य को परिभाषित करने का प्रयास किया। सामान्य व्यक्ति के लिए सत्य का अर्थ केवल सच बोलना होता है किंतु जीवन का सत्य कुछ अलग है। गांधी ने अपने अनुभव से ईश्वर को ही सत्य बताया है।

सत्य प्राप्ति के साधनः–

गांधी के अनुसार जहाँ सत्य है वहा खुदा है और जहाँ खुदा है वहीं सत्य है।[12] सत्य पर आरूढ होना ही सत्याग्रह है।[13] सत्य अखंड तथा सर्वव्यापक है।[14] गांधी के अनुसार सत्य को प्राप्त करने के लिए पहले अपनी बुराइयां समाप्त करनी चाहिए दूसरों की बुराई पर ध्यान न रखें। उन्होंने कहा मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उस पर क्रोध आने की बजाय स्वयं अपने उपर ही अधिक क्रोध आता है क्योंकि मैं जानता हूं कि अभी मेरे अन्तर में ही कहीं असत्य का वास है।[15] सत्य में प्रेम होता है। सत्य में अहिंसा ब्रहम्चर्य, अस्तेय आदि का समावेश हो जाता है।[16] हमें सच्चा होना चाहिए, सत्य के बदले सत्य का ढोंग काम नहीं दे सकता।[17] हम सत्य को इतनी दृढ़ता से पकड़ें कि भले ही हमारे हाथ टूट जाऐं लेकिन हम उसे ना छोडें। हम इस मंत्र को अपने अन्तःकरण में इस सीमा तक अंकित कर लें कि उसके मन में किसी और वस्तु का विचार आए ही नहीं।[18] सत्य का आचरण करने वाला सदाचारी मनुश्य हमेशा नम्र होता है। अपने दोशो को वह निरंतर समझता जाता है।[19] अहिंसा सत्य का प्राण है उसके बिना मनुष्य पशु है।[20] मेरे लिए सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर को पाने का अहिंस के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है।[21]

गांधी ने बताया कि सत्य के मार्ग की खोज और असका अनुसरण बचपन से ही किया जाए तभी बडे होने पर हम असत्य से बच सकते हैं। जिस प्रकार हम किसी बिमारी की उपेक्षा करें तो वह हमारे शरीर में घर कर लेती है और असाध्य हो जाती है। उसी प्रकार

हम बचपन से ही अपने भीतर असत्य को घर कर लेने दे तो वह आगे चलकर महाव्याधि का रूप ले लेता है।[22] गांधी ने सत्य को प्राप्त करना अपना सर्वोच्च लक्ष्य माना तथा जैसे–जैसे उनका अनुभव बढता गया उन्होंने सत्य प्राप्ति का मार्ग बताया। उन्होनें कहा मेरी कोई गोपनीय विधियां नही हैं। सत्य के अलावा और कोई कुटनीति मैं नहीं जानता अहिंसा के अलावा मेरे पास कोई हथियार नहीं हैं। मैं अनजाने में कुछ समय के लिए भले ही भटक जाऊ लेकिन सदा के लिए नहीं भटक सकता।[23] गांधी ने अपने अनुभव बताते हुए कहा मैं अपने देशवासियों से कहता हूं कि उन्हें आत्मत्याग के अलावा और किसी सिद्धांत का अनुसरण करने की जरूरत नहीं है– प्रत्येक युद्ध से पहले आत्मत्याग आवश्यक है। आप चाहे हिंसा के पक्षधर हों या अहिंसा के आप को त्याग और अनुशासन की अग्निपरीक्षा से गुजरना ही होगा।[24] अहिंसा मेरा भगवान है और सत्य मेरा भगवान है। जब मैं अहिंसा को खोजता हूं तो सत्य कहता है इसे मेरे माध्यम से ढूंढो और जब मैं सत्य को खोजता हूं अहिंसा कहती है इसे मेरे माध्यम से ढूंढो।[25] गांधी ने अपने सिद्धांतों के बारे में कहा मैने कोई नये सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किए है बल्कि पुराने सिद्धांतों को ही पुनः प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है।[26] उन्होनें कहा सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने है जितने पर्वत । मैंने केवल इन दोनो को लेकर बडे से बडे पैमाने पर प्रयोग करने का प्रयास किया।[27] स्वभाव से मैं सत्यवादी हूँ अहिंसक नहीं। जैसा कि किसी जैन मुनि ने एक बार ठीक ही कहा था, मैं अहिंसा का उतना पक्षधर नही हुं जितना कि सत्य का और सत्य को प्रथम स्थान देता हुं और अहिंसा को द्वितीय। क्योंकि जैसा कि जैन मुनि ने कहा मै सत्य के लिए अहिंसा की बलि दे सकता हुं। दरअसल अहिंसा को मैने सत्य की खोज करते हुऐ पाया है।[28] गांधी ने इस प्रकार 'सत्य' को परिभाषित किया तथा इसे प्राप्त करने का माध्यम भी बताया।

सत्य का महत्वः–

गांधी ने सत्य को जीवन मे सबसें अधिक महत्वपूर्ण बताया। उन्होनें कहा सत्य का परित्याग न करे यह अनश्वर है। उन्होनें कहा, मेरा विश्वास करो मैं अपने 60 वर्श के व्यक्गित अनुभव से कहता हूं कि सत्य के मार्ग का परित्याग करना ही वास्तविक दुर्भाग्य है। यदि तुम इसे समझ सको ईश्वर से तुम्हारी एक ही प्रार्थना होगी कि सत्य का अनुसरंण करते हुऐ तुम्हें कितनी भी परीक्षाओं और कठिनाइयों से गुजरना पड़े, ईश्वर तुम्हें उनसे पार पाने का सामर्थ्य दे।[29] उन्होनें कहा केवल सत्य ही टिकेगा बाकी सब कालकवलित हो जाएगा। इसलिए मुझे सभी त्याग दे तो भी मुझे सत्य का साक्षी बने रहना चाहिए। अगर मेरी सत्य की वाणी है तो शेश सभी वाणियां मूक हो जाने के बाद मेरी वाणी ही सुनाई देगी।[30]

निष्कर्षः–

गांधी की सत्य की अवधारणा के बारे में निश्कर्श रूप में कहा जा सकता है कि सत्य की परिभाषा व्यापक और गहरी है सत्य केवल सच बोलना नही है अपितु ईश्वर का एक रूप है। सत्य विभिन्न गुणों का प्रतीक है। सत्य ईश्वर प्रप्ति का मार्ग है जो व्यक्तित्व की विभिन्न बुराईयों को दूर करके प्राप्त किया जा सकता है। सत्य भौतिकवादी क्षेत्र का विषय नहीं है सत्य कभी नष्ट नहीं होता है इससे जीवन में सन्तुष्टि उत्पन्न होती है। सभी के सत्य के बारे में अनुभव अलग–2 हो सकते हैं। गांधी के अनुसार इस प्रकार सत्य और भगवान एक ही है। सत्य का मार्ग बहुत कठिन है लेकिन अगर अभ्यास किया जाऐ तो सरल भी है सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण सत्य के बिना संभव नही है।

संदर्भ सूचीः–

1. गुप्त, विश्व प्रकाश व मोहनी, महात्मा गांधी व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 2006 पृ01
2. गांधी, मोहनदास करमचन्द, अनुवाद महावीर प्रसार पौद्दार, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2009 पृ09
3. गुप्त विश्व प्रकाश व मोहनी, महात्मा गांधी व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 2006 पृ0 60
4. वहीं पृ0 61
5. गांधी, मोहनदास करमचन्द, अनुवाद महावीर प्रसाद पौद्दार सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2009 पृ0 9–10
6. यंग इंडिया 31–12–1931 पृ0 428 (प्रभु आर के तथा राव द्वारा संकलन महात्मा गांधी के विचार)
7. सत्य के प्रयोग पृ0 10
8. वही पृ0 10
9. हरिजन 9–8–1942 पृ0 264 (वहीं)
10. हरिजन 9–8–1942 (प्रभु आर के संपादित नवजीवन मुद्रणालय अहमदाबाद 1957)
11. यंग इंडिया 31–12–1931
12. सुजाता, गांधी की नैतिकता, सर्वसेना संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी पृ01
13. वही पृ01
14. वही पृ01
15. वही पृ01
16. वही पृ02
17. वही पृ02
18. वही पृ02
19. वही पृ03
20. वही पृ03
21. वही पृ07
22. वही पृ06

23. यंग इण्डिया 11–12–1924 पृ0 406 (प्रमु आर0 के तथा राव यू0 आर0 द्वारा संकलन तथा संपादन, महात्मा गांधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली 1994)
24. वहीं पृ033
25. यंग इंडिया 4–6–1925 पृ0 191 (वहीं)
26. यंग इंडिया 2–12–1926 पृ0 419 (वहीं)
27. हरिजन 28–3–1936 पृ0 49 (वहीं)
28. हरिजन 28–3–1936 पृ0 49 (वहीं)
29. हरिजन 28–7–1946 पृ0 243 (वहीं)
30. हरिजन 25–8–1946 पृ0 284 (वहीं)

अश्वनी कुमार
सहायक प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
बनवारी लाल जिन्दल सुईवाला महाविद्यालय
तोशाम (भिवानी)
मो0 नं0:– +91–9896104075
ईमेलः– ashwaniksabharwal2011@gmail.c.om

22

डॉ0 राधेश्याम शुक्ल के काव्य में महानगरीय जीवन की त्रासदी

शारदा कुमारी

सारांश :

वर्तमान युग प्रगति एवं विकास के अन्धानुकरण का है। सामाजिक उन्नति एवं प्रगति आज मनुष्य के लिए आवश्यकता बनती जा रही है। जनसंख्या घनत्व के आधार पर आज हमारे शहर महानगरों का रूप लेते जा रहे हैं। यद्पि भारतवर्श में मुबंई, दिल्ली, कोलकाता एवं चेन्नई को ही महानगरों की संज्ञा दी गई है तथापि महानगरों के साथ लगते हुए शहर भी आज महानगरों का रूप लेते जा रहे हैं। महानगरीय जीवन अनेक रूपों में मनुष्य के लिए किसी वरदान से कम नहीं है, परन्तु वहीं दूसरी ओर यह एक भयावह त्रासदी अथवा अभिशाप भी है। शीघ्र उन्नति की अन्धी दौड़ में महानगरीय जीवन अत्यन्त भीड़भाड़ युक्त एवं व्यस्तता से परिपूर्ण है जिसके कारण सामान्य जन क्लान्त, एकाकी एवं उदासीन होजा जा रहा है। वैसे तो महानगरों का जीवन आरंभ से ही लोगों के लिए आकर्षण का विषय रहा है लेकिन स्वतन्त्रता के बाद तो यह और भी बढ़ा है क्योंकि इसमें चकाचौंध एवम् दिखावटीपन की बहुलता रहती है। अत्यधिक व्यस्तता एवं भागमभाग भरी जिन्दगी में मनुष्य को सुकून एवं विश्राम के क्षणों के लिए भी तरसना पड़ता है। शुक्ल जी के काव्य में इसी महानगरीय जीवन की त्रासदी को सहजता से अभिव्यक्त किया गया है।

डॉ0 राधेश्याम शुक्ल ग्रामीण परिवेश से सम्बद्ध काव्यकार हैं। ये लगभग तीन–चार दशक पूर्व ही हरियाणा प्रान्त के शहर हिसार में आकर रहने लगे थे। ये ग्रामीण परिवेश में ही पले बढ़े एवं शिक्षित हुए। रोजगार की तलाश में ये हिसार नगर में आकर रहने लगे। इनके बारे में 'देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' लिखते हैं – ''शुक्ल जी ने अपने जीवन की अर्द्धशती गाँव से बिछुड़ कर नगर के पथरीले परिवेश में गुजारी है। वे जिस कुशलता से ग्राम्य संवेदना को अपने दोहों में उत्कीर्ण करते हैं उसी दक्षता एवं पटुता के साथ पथराये नगर जीवन को भी रेखांकित करते हैं।''[1] शुक्ल जी नगरों में आए दिन आसपास की पारिवारिक समस्याओं, सामाजिक औद्योगिक परिवेश की समस्याओं से जुझते रहते थे जिस पर प्रशासन आदि का ध्याान ही नहीं जाता था। इसी का चित्रण शुक्ल जी अपने साहित्य में कर रहे हैं।

महानगरीय जीवन की भागदौड़ में मनुष्य इतना शीघ्रगामी हो गया है कि आए दिन कहीं न कहीं दुर्घटनाओं का शोर सुनाई देता है। समाचार पत्रों में भी सुबह–सुबह हर रोज ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते हैं जो मनुष्य को अंदर तक झकझोर देते हैं इसे शुक्ल जी कह उठते हैं –

''दुर्घटनायें
पग–पग करने लगी नमस्ते,
महंगी रोजी
लगी बेचने
जगह जगह
कठपुतले सस्ते।''[2]

महानगरीय सभ्यता एवं संस्कृति ने आज सामान्य मनुष्य के जीवन को बदल कर रख दिया है। महानगरों में मनुष्य का परिवेश अत्यन्त संकुचित एवं सीमित होता जा रहा है। एक दूसरे की देखादेखी सयुंक्त एवम् सामूहिक परिवार टूटते जा रहे हैं। अब पति–पत्नी को ही एक परिवार माना जाने लगा है। नगरीय सामाजिक जीवन में परस्पर सहयोग, सुख–दुःख एवम् आपसी सौहार्द आदि मानवीय भाव तिरोहित होते जा रहे हैं। लोग पास–पड़ौस के व्यक्ति के दुःख दर्द से भी कोई सरोकार नहीं रखते। शहरी लोग देखने में जैसे लगते हैं वैसे अन्दर से होते नहीं हैं। ऊपर से प्रसन्न दिखने वाले लोग अन्दर से दुखी एवम् स्वार्थपूर्ण होते हैं। ये लोग वेशभूषा एवं रहन सहन में तो रंगीन दिखाई देते हैं किन्तु अन्दर से बुझे मन वाले एवम् बदरंग होते हैं। शुक्ल जी इन लोगों पर टिप्पणी करते हुए कह रहे हैं –

''दिखने में सब लोग हैं जैसे सजे सितार।
किन्तु मातमी धुन उठे जब भी छेड़ों तार।।
बहुरंगी तन तो मिले मिला न मन का रंग।
इन्द्रधनुश ओढे हुए लोग लगे बदरंग।।''[3]

महानगरीय लोगों में आधुनिकीकरण की प्रतिस्पर्धात्मक जिन्दगी में एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ लगी रहती है। इस प्रतियोगिता भरी लोग मशीनों की भाँति यांत्रिक जीवन जीने को मजबूर हैं। ये बाहर से 'जैंटलमैन' की भाँति लगते हैं लेकिन अपने स्वार्थों के कारण सामाजिक मर्यादा, लोकलाज एवं मानसम्मान आदि को भी भुला बैठे हैं। आधुनिक दिखने की होड़ में ये रिश्तों को भी महत्व नहीं देते। शहरों में छल–कपट, झूठ–फरेब, लोभ लालच आदि की विशाक्त हवा चल रही है लेकिन यहाँ के समाज के लोग इसे निखार का नाम दे रहे हैं। यथा –

''क्या गुलशन क्या बागबां, कैसी चली बयार।
सब कुछ है बदरंग पर कहते लोग निखार।।''[4]

महानगरीय वातावरण अराजकता एवं आतंक के कारण भी असुरक्षित सा प्रतीत होता है। हर दिन नये हादसे होते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भयभीत हैं मानो वह स्वयं अपना ही कातिल हो। उसे अपनी परछाई भी डराने लगती है। कवि इस

माहौल से भी दुःखी है और अपनी चिन्ता को इस प्रकार व्यक्त कर रहा है –

''अपनी परछाई भी कातिल सी लगेगी दिखने।
आदमी से आदमी कुछ इस तरह डर जाएगा।''[5]
खुदा का शुक्र है आतंक में जी रहा हूँ,
''बहुत खुश हूँ नहीं मुझको किसी से गिला कोई।''[6]

महानगरों में सभ्यता का एक और विद्रुप रूप देखने को मिलता है। बेरोजगारी के कारण गाँवों तथा छोटे शहरों से लोग महानगरों में काम धन्धों की तलाश में आते हैं किन्तु अत्यधिक भीड़भीड़ एवं जनसंख्या की अधिकता के कारण उन्हें कोई आशियाना नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप उन्हें गन्दे नालों के आसपास झोपड़ पट्टी बनाकर रहने को विवश होना पड़ता है। महानगरों में गगनचुम्बी इमारतों का निर्माण करने वाले ये श्रमिक लोग गन्दी बस्तियों में नारकीय जीवन जीने को विवश हैं। सुबह से लेकर सूर्यास्त तक ये कमरतोड़ एवं पभुवत परिश्रम करते हैं तथा शाम को आकर अपनी झोपड़ियों में भी विश्राम नहीं मिलता है तथा सुबह फिर ये रोजी रोटी की तलाश में निकल पड़ते हैं इसको शुक्ल जी इस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं –

''नालों पर उजड़ा बसा झोपड़पट्टी गाम।
नये नगर कितने रचे, पर खुद रहे अनाम।''[7]

किसी भी प्रकार की सुख–सुविधाओं के बगैर ये अपेक्षित जीवन–यापन करते रहते हैं। महानगरों में सौन्दर्यकरण के नाम पर अनेकों बार इनकी झोपड़ियों को भी गिरा दिया जाता है तथा इन्हें खुले आसमान के नीचे रहने के लिए छोड़ दिया जाता है–

''राजपथ घुमावदार
सब अन्धे मोड़ हैं
जनपथ के लोग यहाँ
सिर्फ घटा जोड़ हैं।''[8]

औद्योगिकरण के इस युग में उद्योग धन्धों की असीमित वृद्धि हुई है। जिससे मशीनीकरण को भी बढ़ावा मिला है। इससे कामगार एवं श्रमिक वर्ग की भी आवश्यकता बढ़ी है। श्रमिक वर्ग के लोग स्वयं शिक्षित न होने के कारण अपने बच्चों को भी इसी काम में लगा देते हैं। इससे समाज की उन्नति भी अवरुद्ध होती है। आज मजदूर व गरीब वर्ग के लोग बाजारवाद से भी सन्त्रस्त हैं। मशीनीकरण से बाजारीकरण को भी बढ़ावा मिला है। इस वर्ग के लोगों की स्थिति बिकाऊ माल से अधिक कुछ नहीं है क्योंकि इनकी आर्थिक स्थिति वहीं की वहीं रहती है तथा धनाढ्य एवम् पूँजीपति अपनी स्थिति को अति सुदृढ़ करते रहते हैं। इनकी स्थिति को शुक्ल जी व्यक्त करते हुए कहते हैं –

''तुम केवल मशीन हो
जिसको वक्त चलाएगा
तुम्हें हृदय की नहीं
पेट की भाशा पढ़नी है,
खुद्दारी, अस्मिता
हुई कल की बातें
तुमको बाजार डिमाण्ड पर
अपनी मूर्त गढनी है।''[9]

आज विश्व में उद्योगों की प्रगति के साथ पर्यावरण की समस्याओं में भी अभिवृद्धि हुई है। उद्योगों के कारण प्रदूशण की समस्या भी अत्यन्त विकराल रूप ले रही है। वाहनों में बेतहाशा वृद्धि के कारण पर्यावरण में विशैली गैसों से भी आज अनेक बीमारियों का खतरा बना हुआ है। बड़े–बड़े उद्योग धन्धों और जीवाश्म ईंधन के अधिक मात्रा में उपभोग के कारण प्रदूशण में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। पर्यावरण की सुरक्षा भी हमारी जिम्मेदारी हो गई है। जिस पर हम सब को ध्यान देना होगा।

निष्कर्षः

अतएव निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महानगरीय जीवन ने लोगों के रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, बोलचाल, वेशभूशा आदि को भी प्रभावित किया है तथा इनसे भी अधिक मानवीय संवेदना का विशेष रूप से प्रभावित किया है। पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण के कारण आज मनुष्य अपने आत्मीय सम्बन्धों को भूलता जा रहा है तथा अपने आप तक ही सीमित होता जा रहा है जो कि एक चिन्ता का विषय है। शुक्ल जी ने औद्योगिकरण के प्रतिकूल प्रभावों पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है जो आज के समाज के लिए लाभप्रद है अतएव शुक्ल जी का प्रयास सराहनीय है।

सन्दर्भ सूची :–

1. 'दरपन वक्त के' 'भूमिका' डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
2. 'त्रिविधा' पृ0 53, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
3. दरपन वक्त के, पृ0 36, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
4. दरपन वक्त के, पृ0 36, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
5. जरा सी प्यास रहने दें, पृ0 21, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
6. जरा सी प्यास रहने दें, पृ0 21, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
7. दरपन वक्त के, पृ0 40, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
8. कैसे बुने चदरिया साधो, पृ0 57, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल
9. 'त्रिविधा', पृ0 53, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल

शोधार्थी
शारदा कुमारी
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक

23

''हिंदी व्यंग्य साहित्य परंपरा में डॉ हरीश नवल का योगदान''

चित्रा भारद्वाज

सारांश :

व्यंग्य की परंपरा मनुष्य जाति के विकास के साथ उदित होती हुई आज अपनी प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर चुकी है। इस व्यंग्य की परंपरा को प्रौढ़ावस्था तक पहुँचाने में अनेक व्यंग्यकारों का योगदान रहा है, जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से व्यंग्य की परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए उसको उच्च स्तर पर पल्लवित कर स्थापित किया। ऐसे ही एक विशिष्ट रचनाकार डॉ हरीश नवल हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी की नरम पर मारक तीक्ष्णता से मनुष्य जीवन के सभी दूषित हो चुके क्षेत्रों पर वार किया है। इनके योगदान को वर्णित करना ही यहाँ मेरा ध्येय है।

प्रस्तावना

मानव जाति की उत्पति के साथ ही मानवीय समाज मनुष्य–दर–मनुष्य की एक कड़ी के रूप में निर्मित होता गया। इसी निर्मिति में जब मानवीय समूह ने अपनी व्यापकता को पाया, तब मानवीय जीवन में विचारों का मेल न होना भी एक सामान्य प्रवृत्ति परिलक्षित हुई। जिसने एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के विचारों से असंतुष्टि उत्पन्न की। इसी असंतुष्टि की परिणति ही व्यंग्य के रूप में हमारे समाज में पनपती रही। परंतु प्राचीन काल में इस व्यंग्य की उपस्थित धुंधली–सी थी, जो हास्य के घोड़े पर सवार होकर मानव को चेता रही थी अर्थात स्पष्ट शब्दों में कहे तो संस्कृत काल में भी व्यंग्य की स्थिति थी, पर वो अभी अपनी शैशवावस्था में ही दृष्टिगत होती है। उदाहरणस्वरूप व्यंग्य की उपस्थिति से भिज्ञ होकर ही कालिदास जी ने अपने नाटकों में विदूषक रखे। वत्सराज ने हास्य 'चूड़ामणि' और जगदीश्वर ने 'हास्यार्णव' प्रहसन लिखे। पाली में हरिभद्र सूरी ने 'धूर्ताख्यानम्' नामक व्यंग्य ग्रंथ लिखा।

संस्कृत लेखन परंपरा के बाद हमें संतों, नाथों की वाणियों में व्यंग्य की छटा दिखाई देती है। इनमें एक प्रमुख नाम गोरखनाथ जी का है, जिन्होंने व्यंग्यात्मक उपदेशों व उक्तियों के माध्यम से व्यंग्य की चली आती धीमी धारा को एक नई ऊर्जा प्रदान की। गोरखनाथ के बाद व्यंग्य के सशक्त हस्ताक्षर भक्तिकाल में कबीर हुए, जिन्होंने समाज में व्याप्त ऊंच–नीच, जात–पात, छुआछूत की भावना, पाखंड व अंधविश्वास पर गंभीर चोट की। अतः कह सकते हैं कि समाज सुधार के लिए कबीर जी का साहित्य एक सशक्त हथियार की भांति कार्य करता है। परंतु कबीर के अवसान के बाद तीक्ष्ण व्यंग्य की परंपरा कमजोर होती गई क्योंकि मध्यकालीन राजदरबारी व श्रृंगारिक प्रवृत्ति ने समाज के दुख–दर्द की उपेक्षा करके विलासितापूर्ण मनोवृत्ति को ही पल्लवित किया, जिसके परिणामस्वरूप साहित्य व्यंग्य की उपेक्षा हास्य की ओर प्रवृत्त हुआ और गंभीर व्यंग्य पर हास्य की परत इस प्रकार चढ़ती गई कि लोग व्यंग्य को हास्य के पर्याय रूप में ही मानकर व्यंग्य को गंभीरता से लेने में हिचकते रहे, जिससे व्यंग्य को अन्य विधाओं की अपेक्षा दोयम दर्जे का समझने की प्रवृत्ति भी आलोचकों में भी पलती रही, जिसने हास्य और व्यंग्य को एक ही कटघरे में खड़ा कर दिया।

परंतु अंग्रेजों के आगमन ने जहाँ भारतीयों में अपनी अस्मिता को पुनः प्राप्त करने का मंत्र फूंका, वहीं उनके द्वारा प्रचारित व प्रसारित ज्ञान–विज्ञान की बातों ने भारतीय जनमानस में अपनी कमियों पर पुनः दृष्टिपात करने की प्रवृत्ति को भी जन्म दिया। जिसके माध्यम से समाज चेता व्यक्तियों ने हास्य के बादलों में छिपी व्यंग्य की सशक्तता को जानकर उसकी गंभीरता को पुनः जीवित किया। ऐसे ही एक समाज चेता साहित्यकार व व्यंग्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र के रूप में अवतरित हुआ, जिसने अपनी लेखनी से 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी चौपट राजा', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' आदि जैसी रचनाओं का प्रणयन कर व्यंग्य की मृतप्राय व क्षीण परंपरा को पुनः पैनापन व चुटीलापन प्रदान किया।

भारतेंदु के इस महान कार्य ने अन्य लेखकों, साहित्यकारों को भी व्यंग्य लेखन पर अपनी कलम चलाने हेतु प्रेरित किया। जिसके फलस्वरूप हिंदी व्यंग्य साहित्य लेखन की जो मशाल भारतेंदु हरिश्चंद्र ने प्रज्वलित की थी, उसकी लौ को आगे बढ़ाने का कार्य पं० प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट एवं बालमुकुंद गुप्त जैसे कर्मठ विद्वानों ने किया। परंतु जैसे–जैसे स्वतंत्रता प्राप्ति की चिनगारी बढ़ती गई, अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष की धार तेज हो गई थी तब उस विपरीत समय में हमारे यशस्वी साहित्यकारों अन्न पूर्णानंद, बेढब बनारसी, जी० पी० श्रीवास्तव तथा हरिशंकर शर्मा ने व्यंग्य को और अधिक तीक्ष्णता प्रदान की तथा जनमानस को गुलामी एवं अन्याय के विरुद्ध झकझोरा। इस समय व्यंग्य मनीषियों ने पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन करके और अपनी विशिष्ट कृतियाँ छपवाकर व्यंग्य के जलते दीपक में तेल डालने का कार्य किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में परिवर्तन का वातावरण था। हिंदी को माध्यम बनाकर ही देश ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नेतागण, अफसरों की लालची प्रवृत्ति व स्वार्थी मनोवृत्ति ने जल्द ही आम जनता में मोहभंग की

भावना को प्रसारित किया। जिससे आजादी मिलने के बाद भी समाजचेता साहित्यकारों की लेखनी अब एक नया युद्ध लड़ने के लिए तैयार थी, जिसके कारण ही हिंदी में व्यंग्य रचनाकारों की फसल उगने लगी। लेखन के लिए विषय चयन की भी बहुतायत थी, विविधता थी। अतः अब व्यंग्य परंपरा में कई पीढ़ियाँ सामने आईं। व्यंग्य विकास की दशा व दिशा में प्रथम पीढ़ी के रूप में बाबू गुलाबराय, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, लतीफ घोंघी तथा इंद्रनाथ मदान जैसे महानुभाव मैदान में आए। इन महान रचनाकारों ने खूब जमकर व्यंग्य लिखे। साथ ही इन महान व्यंग्यकारों के कंधों पर चढ़कर आगे बढ़ा व्यंग्य दूसरी पीढ़ी को सुपुर्द हुआ। इस दूसरी पीढ़ी के व्यंग्यकारों में शंकर पुणतांबेकर, शांति मेहरोत्रा, नरेंद्र कोहली, सुदर्शन मजीठिया, के० पी० सक्सेना, बरसाने लाल चतुर्वेदी जैसे लक्ष्यभेदी रचनाकार सम्मिलित हैं। व्यंग्य के इन महारथियों ने पिछली पीढ़ी से प्राप्त व्यंग्य की गति एवं धार को अत्यधिक तेज कर दिया।

अब व्यंग्य सर्वमान्य विधा के रूप में स्थापित हो चुका था और तीसरी पीढ़ी के रचनाकारों की टोली अपने दायित्वों को संभालने के लिए मैदान में आ चुकी थी। इस पीढ़ी के मुख्य रचनाकारों अजातशत्रु, गोपाल चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वैष्णव, सूर्यबाला, हरिजोशी, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, विनोद कुमार शुक्ल, सुरेशकांत, बालेंदु शेखर तिवारी, मधुसूदन पाटिल आदि की एक लंबी कतार है, जिन्होंने व्यंग्य परंपरा की वृद्धि में महत्वपूर्ण कार्य किए।

व्यंग्य परंपरा में डॉ0 हरीश नवल का योगदान

हरीश नवल तीसरी पीढ़ी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। जिन व्यंग्यकारों ने स्वयं कष्ट सहकर व्यंग्य की पताका को झुकने नहीं दिया, उन्हीं में से एक महान विभूति डॉ हरीश नवल हैं, जो प्रखर लेखन क्षमता एवं लेखकीय प्रभाव के कारण ही युवावस्था में युवा ज्ञानपीठ जैसे गौरवपूर्ण सम्मान से गौरवान्वित हो चुके हैं। उन्हीं के वांग्मय साहित्य का योगदान हिंदी व्यंग्य परंपरा में प्रमाणित करने का तार्किक प्रयास यहाँ किया गया है।

हरीश नवल ने श्रेष्ठ हास्य और स्तरीय व्यंग्य दोनों पर ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनका व्यंग्य साहित्य जीवन और जगत के अनेक आयामों को समेटकर चलता है। वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों के अलावा उन्होंने सर्वाधिक व्यंग्य शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े विषयों पर लिखे हैं, शिक्षा जगत की सारी विडंबनाओं को उन्होंने निकट से देखा और भोगा है। इसलिए उनकी व्यंग्य रचनाओं में प्रमाणिकता तथा जीवंतता है।

'बागपत के खरबूजे', 'पीली छत पर काला निशान', 'दिल्ली चढ़ी पहाड़', 'वाया पेरिस आया गांधीवाद', 'माफिया जिंदाबाद', 'अमरीकन प्याले में भारतीय चाय', 'दीनानाथ के हाथ' आदि उनके संकलन प्रकाशित हुए हैं, जिनमें उनकी सुरुचिपूर्ण हास्य और तीक्ष्ण व्यंग्य की रचनाएँ संकलित हैं। इन्होंने व्यंग्य की आलोचना पर भी गंभीर लेख लिखे हैं। इनकी शैली में एक विशेष प्रकार की मस्ती है, जो इन्हें अन्य व्यंग्यकारों से अलग करती है। उनका व्यंग्यकार हँसते–हँसते चिकोटी काटने में विश्वास करता है।

अपनी व्यंग्य रचनाओं में हरीश जी भाषाई प्रतिमानों के साथ छेड़छाड़ करके अपनी व्यंग्य भाषा को एक नया स्वरूप देते हैं। विषय और पात्रों के अनुकूल भाषा चुनने में वे सफल हैं। उनकी भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों को सुविधानुसार ग्रहण करने की क्षमता है। मुहावरों, लोकोक्तियों का भी उन्होंने बखूबी प्रयोग किया है। उनकी भाषा चुटीली है, उसमें सूक्ष्म विदग्धता भी कहीं–कहीं दृष्टिगोचर होती है, जिससे वह व्यंग्यार्थ की प्राप्ति सुनिश्चित करते हैं। वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य जैसी शब्द शक्तियों का भी वे बेहतरीन प्रयोग करते हैं। शिष्ट हास्य और मारक व्यंग्य के बीच संतुलन कैसे बिठाया जाता है, इसे नई पीढ़ी हरीश नवल जी से सीख सकती है। निःसंदेह श्रेष्ठ समकालीन व्यंग्यकारों में हरीश नवल का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके लेखन के विषय में सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार क्या कहते हैं, उन्हीं के शब्दों में देखें।

1) प्रेम जनमेजय जी के शब्दों मेंः– "हरीश एक ऐसी किताब है, जो देखने में पहली नजर से लेकर आखिरी नजर तक अति आकर्षक, लुभावनी, पठनीय, सरल एवं प्रिय लगती है, पर इस पुस्तक को पढ़ना क्या उतना भी आसान नहीं है, जितना आजकल के विद्यार्थी हिंदी को समझते हैं। यह पुस्तक न तो सरल है, न ही लुभावनी, न ही उतनी आकर्षक। यह पुस्तक आपसे आपके परिश्रम की माँग करती है, जैसे किसी हरी–भरी घाटियों को अपनी गोद में समेटे सफेद चादर–सी विशाल पर्वत श्रृंखला अपनी विराटता के प्रति चुनौती प्रस्तुत करती है। पर पर्यटक दूरबीन से ही उसकी समीपता को महसूस कर प्रसन्न होता है।"[1]

2) बाल स्वरूप राही के शब्दों मेंः– "उनकी व्यंग्य की परिधि बड़ी विस्तृत है। उनका व्यंग्य सायास नहीं है, उसमें लफ्फाजी भी नहीं है। वह परिस्थितियों और घटनाओं से सीधा उभरता है। घटनाएँ और परिस्थितियाँ प्रायः सामाजिक हैं। अतः उनका व्यंग्य लेखन आज के पाठक के लिए प्रासंगिक है।"[2]

3) नरेंद्र कोहली जी के अनुसारः– "हरीश नवल के व्यंग्य निबंध की तुलना में कथा के अधिक निकट हैं। इसीलिए उनमें वाचन तथा श्रुति प्रिय होने का गुण अधिक पाया जाता है। उनका व्यक्तित्व प्रहारक नहीं है, अपने लेखन में भी वे ध्यान रखते हैं कि प्रखरता, आक्रामकता तथा तीक्ष्णता आए तो विनोद के द्वार से ही आए। यही उनकी सफलता का मूल मंत्र है।"[3]

4) धर्मवीर भारती के शब्दों मेंः– "हिंदी व्यंग्यकारों में हरीश नवल का एक अलग सीान है। आक्रामकता या तलवारबाजी के बजाय उनके व्यंग्य निबंधों में एक महीन मार और एक अभिजात्य सौम्यता है। वही

उनकी शक्ति है।"

5) हरिशंकर परसाई जी के शब्दों में:– "'बागपत के खरबूजे' से हरीश नवल काव्यंग्यकार पूरी तरह से सामने आया है। उसे उनके व्यंग्य–कथा लेखक और विनोदवृत्तिकार सचेतक रूप पसंद हैं। हिंदी व्यंग्य को उनसे बहुत अपेक्षाएँ हैं।"

6) श्रीलाल शुक्ल जी के अनुसारः–''हरीश नवल के व्यंग्य लेखन में जीवन की सामान्य विसंगतियों को भी असामान्य ढंग से और सारी तिक्तता के साथ पकड़ने की क्षमता प्रकट हुई है। उनके विषय केवल दैनंदिन जीवन की उन घिसी–पिटी स्थितियों तक सीमित नहीं हैं, जो कि आज के अधिकतर लेखकों को आकर्षित करती है, बल्कि उनकी दृष्टि जीवन के व्यापक फलक पर जाती है।"

7) श्री कन्हैयालाल नंदन जी के अनुसारः– '''धर्मयुग' में एक रचना 'बागपत के खरबूजे' छपी। पाठक जगत को लगा कि इस खरबूजे का स्वाद कुछ अलग है। मुझे परसाई की लेखनी का स्मरण हो आया। हरीश परसाई परंपरा का नवल वाहक है। उसने सिद्ध भी किया है। मैं इस खरबूजे के स्वाद की गिरफ्त में आता चला गया। हरीश नवल उस दिन से मुझे ज्यादा प्रियतर लगने लगे। जब 'बागपत के खरबूजे' को भारतीय ज्ञानपीठ का युवा लेखन पुरस्कार मिला, तो लगा कि एक खानदानी साहित्यिक को पहचाना गया है– ––––– हिंदी व्यंग्य अब जिन रचनाकारों के काँधे पर बैठकर आगे बढ़ रहा है। उनमें हरीश नवल का नाम अग्रणी पंक्ति में है।'[4]

8) बालेन्दु शेखर तिवारी जी के शब्दों में:– "हरीश नवल को समाज ने व्यंग्यकार बनने के लिए आमंत्रित नहीं किया था, लेकिन वे व्यंग्यकार बन गए।–– ––––– हरीश नवल की व्यंग्य धारणा की दुनिया बहुत व्यापक न होती हुई भी हिंदी व्यंग्य की मौजूदा संकल्प–यात्रा से पूरी तरह जुड़ी हुई है। सुविधा को सुख, विरोध को क्रांति, सूचना को ज्ञान, डिग्री को अध्ययन मानने वाले साम्प्रत समाज को बदलने के लिए कृत–संकल्प हिंदी व्यंग्य के स्वभाव और कौशल की पक्षधर है उनकी व्यंग्यधारणा। हरीश नवल की स्थापनाएँ हरीश नवल के अपने व्यंग्यकर्म की सारी खूबियों को तो रेखांकित करती ही है।"[5] निष्कर्षतः उपर्युक्त व्यंग्यकारों व साहित्यकारों के कथनों को देखते हुए कह सकते हैं कि डॉ हरीश नवल स्वातन्त्र्योत्तर दौर के वरिष्ठ व्यंग्यकार हैं। "नवल की तारीफ में है कि ये व्यंग्य के लिए सिर्फ वहीं स्थितियाँ नहीं उठाते जिन्हें आमतौर पर पकड़ लिया जाता है वरन उनके विषयों में और शैली में व्यापकता की झलक मिलती है, इन दिनों जबकि व्यंग्य के नाम पर 'चहुँ ओर भई बरसात' का आलम है और सतही हास्य टिप्पणियों को व्यंग्य के क्षेत्र में भेजने वालों की भीड़ दिखाई देती है, तब गंभीरतापूर्वक व्यंग्य लेखन करने वाले गिने–चुने लोगों में एक विशिष्ट हैसियत उन्हें हासिल है।'' इसी हैसियत से प्रेरित होकर व पूर्ववर्ती पीढ़ियों के आलोकित प्रकाश को अपने अंदर समायोजित करते हुए आधुनिक चौथी पीढ़ी ने अपना कार्यभार कुशलतापूर्वक संभाल लिया है। इस पीढ़ी के तेजस्वी रचनाकारों में यशवंत व्यास, अलका पाठक, अरविंद तिवारी, सुभाष चन्दर, आलोक पुराणिक, शिवानंद कामड़े, जगत सिंह बिवट, सत्यपाल सिंह सुष्म, रामविलास जांगिड़, अश्वनी कुमार दुबे आदि प्रमुख हैं। ये सृजनकर्ता पुरानी पीढ़ी के व्यंग्य के वाहक हैं, जो निष्ठापूर्वक अपने रचनाधर्म का पालन कर व्यंग्य परंपरा में दिनोंदिन वृद्धि कर रहे हैं। अतः डॉ हरीश नवल जी ने अपनी धारदार व तीक्ष्ण लेखनी के माध्यम से हिंदी व्यंग्य परंपरा को पल्लवित कर अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ

1. परसाई परंपरा का वाहक, अनंग प्रकाशन, दिल्ली 2007, पृष्ठ–63
2. परसाई परंपरा का वाहक, अनंग प्रकाशन, दिल्ली 2007, पृष्ठ–23
3. दिल्ली चढ़ी पहाड़, शुभम् प्रकाशन, दिल्ली–3,1997, फ्लेप
4. परसाई परंपरा का वाहक, अनंग प्रकाशन, दिल्ली 2007, पृष्ठ–16–21
5. परसाई परंपरा का वाहक, अनंग प्रकाशन, दिल्ली 2007, पृष्ठ–73–76
6. नई दुनिया–12–10–1987 के अनुसार

चित्रा भारद्वाज
मकान न०– 506,
सेक्टर–14, रोहतक,
हरियाणा–124001
मोबाइल न०–8168376793

24

प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक में स्त्री–पात्र

डॉ० कुमारी बबीता

सारांश :

जयशंकर प्रसाद आधुनिक नाट्य साहित्य के महान स्रष्टा थे। इसमें संदेह नहीं कि 'प्रसाद का आविर्भाव हिन्दी नाट्य–साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ता है।'[1] हिन्दी नाटकों की परम्परा में आदर्श, संघर्ष तथा चरित्र चित्रण की दृष्टि से वे सर्वाधिक सफल नाटककार सिद्ध हुए हैं। नाट्य शिल्प की दृष्टि से उन्होंने हिन्दी नाटकों के विकास को नई धारा दी तथा चरित्र की दृष्टि से अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय भी दिया। 'हिन्दी नाट्य–साहित्य में प्रसाद जी के नाटक विषय तथा शिल्प की दृष्टि से नवीनता और प्रौढ़ता का संचार करते हैं।'[2] आलोचकों का मानना है कि इनकी बड़ी सफलता चरित्र निर्माण में ही है, उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रबल आधार–स्तम्भ स्वरूप अनेक इतिहास प्रसिद्ध चरित्रों का संघटन और चित्रण किया है बल्कि अपने अन्तर्मन के कवि के आग्रह से प्रेरित होकर कई ऐसे पुरुष व स्त्री पात्रों की रचना की है जो उनके कोमल कल्पनाशील भावुक कवि के सर्वथा अनुकूल है। अगर पुरुष पात्रों को निरन्तर कर्म में रत, फलयोग की भावना से अनासक्त, कर्त्तव्य के प्रति के जागरूक परिपुष्ट पौरुष प्राप्त हुआ है तो स्त्री पात्रों को उन्होंने हृदय का सम्पूर्ण माधुर्य, मृदुता और कौतूहल प्रदान किया है। इस प्रकार प्रसाद जी द्वारा वर्णित चरित्रों में एक विराट किन्तु कोमल कल्पना शक्ति का अपूर्व संयोग मिलता है। नाटककार की विराट भावना पर आधारित चरित्र अतिशय व्यापक, जीवन के हर रहस्य को सुलझाने वाले तथा नाटक के सम्पूर्ण विस्तार में व्याप्त चरित्र हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त इसी कोटि के चरित्र हैं। कल्पना की कोमलता से प्रेरित चरित्र अधिक गीतिमय तथा मृदु बन पड़े हैं जिनमें सुवासिनी, मालविका और कार्नेलिया का व्यक्तित्व निर्माण हुआ है। प्रसाद जी के नाटकों में प्रायः तीन प्रकार के पुरुष पात्र मिलते हैं– प्रथम दाण्डयायन जैसे जीवन के गूढ़ रहस्यों–तत्वों को सुलझाने वाले तत्ववेता मनीषी, द्वितीय चन्द्रगुप्त और सिंहरण जैसे जीवन संग्राम में प्रवृत होकर सुलझाने वाले कर्मठ युवा सेनानी और तीसरे में चाणक्य जैसे राजप्रुत्रों को राजनीति के दाँव–पेंच सिखाने वाले कूटनीतिक आचार्य व ब्राह्मण। इस प्रकार प्रसाद ने पुरुष–पात्रों को विशेष परिवेश, दायित्व और उपयोगिता प्रदान की है मानों व्यक्तिगत रूप से अपनी आशा–आकांक्षाओं के लिए जीने का इन्हें कोई अधिकार नहीं है। चाणक्य महान कूटनीतिज्ञ होकर भी ब्राह्मण व ब्राह्मणत्व के गायक बन गये हैं। राष्ट्र के प्रश्न के समक्ष चन्द्रगुप्त और सिंहरण को सर्वत्र अर्पण कर देना पड़ा है। पर्वतेश्वर और राक्षस को प्रसाद ने स्वच्छन्द जीवन दिशा नहीं दी है। परन्तु, जहाँ तक प्रसाद के नारी–पात्रों का प्रश्न है, वह अधिक स्वाभाविक, व्यापक, स्वतंत्र तथा औचित्ययुक्त है। इस दृष्टि से प्रसाद के नारी–पात्रों में स्वभाव, गुण और करुणा के आधार पर विविधता अधिक है। इन स्त्री–चरित्रों की भी चार श्रेणियां मिलती है– प्रथम, राजनीति की आग से खेलने वाली राज महिषियां, द्वितीय जीवनयुद्ध में प्रेम का सम्बल लेकर कूदने वाली स्वाभिमानी राजपुत्रियां, तृतीय जीवन के भंवर में पड़ी हुई मध्यवर्गीय दुर्बल नारियाँ और चतुर्थ अपने निस्पृह बलिदान से नाटक के जीवन में करुण गंध छोड़ जाने वाली फूल–सी सुकुमारियाँ। स्त्री चरित्रों के प्रति प्रसाद की यह सजगता और सतर्कता उनके कवि स्वभाव का परिणाम है। इन स्त्री चरित्रों के अभाव में कहीं–कहीं पुरुष पात्र अपूर्ण, असहाय और अपर्याप्त भी प्रतीत होते हैं। चन्द्रगुप्त के स्त्री चरित्रों में हमारा ध्यान अलका सहज आकृष्ट कर लेती है जो देशद्रोही और कायर आंभीक की बहन है तथा वृद्ध गांधार नरेश की बेटी है। चतुर्दिक प्रतिकूल परिस्थितियों के रहते हुए भी वह राष्ट्रीय भावना की साक्षात् रणचण्डी है। वह अखण्ड आर्यावर्त की दुर्जेय और कर्मठ सेनानी है। वह अपने पिता से न्याय की याचना करती है, किन्तु क्षमा की भीख नहीं मांगती। स्त्री होकर पर्वतेश्वर के प्रति राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से प्रेम अभिनय में अपने चरित्र को निष्कलंक बना लेना उसके व्यक्तित्व की दृढ़ता का प्रमाण है। वह किसी विलासी या कूटनीतिज्ञ पुरुष के संकेत पर चलने वाली कठपुतली नहीं है। डॉ० बच्चन सिंह अलका के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि 'स्त्री–पात्रों में अलका ही एक ऐसा पात्र है जो सक्रिय रूप से उस लड़ाई में योग देती दिखाई पड़ती है जो विदेशी आक्रमणकारियों को निकालने तथा देश को एक सूत्र में पिरोने के लिए की जा रही थी।'[3] डॉ० हाण्डा ने भी अलका के चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'स्त्री पात्रों में अलका का चरित्र सर्वाधिक आकर्षक तथा सजीव है।'[4] अतः इस दृष्टि से अलका स्त्री पात्रों में लब्धप्रतिष्ठ है।

दूसरी ओर सुवासिनी का चरित्र है जो प्रसाद की कोमल कल्पना की सृष्टि है तथा जिसे राक्षस जैसा व्यक्ति स्वर्गीय कुसुम मानकर हस्तगत कर लेने की कामना में नन्द के क्रोध की भी उपेक्षा कर देता है, जो दूसरों के संकेत पर स्वयं तो नहीं चली, परन्तु नन्द के अभिनयशाला की रानी बनकर सम्राट तक को भी कन्दुक की तरह उछालती रही। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि चाणक्य के नेत्रों में बिलास और कामुकता की परिछाई देखकर उन्हें सावधान करती है तथा उत्थान की दिशा

प्रदान करती है। इस दृष्टि से सौंदर्य की साक्षात् प्रतिमा अभिनेत्री सुवासिनी चाणक्य के चरित्र से ऊपर उठ जाती है।

दूसरी ओर नन्द की पुत्री कल्याणी है जो परिणय प्रस्ताव के पर्वतेश्वर द्वारा ठुकरा दिये जाने पर प्रतिशोध की नागिन बन जाती है। वही कल्याणी चन्द्रगुप्त के संदर्भ में प्रेम की देवी पर समर्पण कर आदर्श पूजा चढ़ाती है। आत्महत्या के लिए उद्यत कल्याणी अपने चरित्र की महानता का प्रकाशन इन शब्दों में करती है। कल्याणी ने प्रण किया था कि केवल एक पुरुष चन्द्रगुप्त का वरण करेगी। रस–लम्पट, कामुक पर्वतेश्वर की हत्या कर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई अपने भव्य रूप का प्रकाशन करती है। इसी प्रकार कार्नेलिया और मालविका नारी भावना की प्रतिष्ठा की दो मूल्यवान केन्द्र हैं। कार्नेलिया विदेशी सिल्यूक्स की पुत्री है। नाटककार ने उसके चरित्र में भारतीयता का प्रवेश दिखाकर उसकी महानता एवं विराटता का उल्लेख किया है। श्री बनवारी लाल हांडा के अनुसार 'वह भारतीय संस्कृति से प्रभावित दिखाई देती है। कार्नेलिया चन्द्रगुप्त की विनयशील वीरता पर मुग्ध हो जाती है।'[5]

निष्कर्ष

इस तरह प्रसाद जी ने अपने चंद्रगुप्त नाटक में नारी चरित्रों को अधिक व्यापक और विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया है। किन्तु पुरुष–पात्र प्रसाद के आग्रहों में बंधे कहीं–कहीं अत्यंत प्रभावहीन तथा स्त्री–पात्रों की तुलना में लघु प्रतीत होते हैं जिसका प्रमाण राक्षस का चरित्र है। अपने प्रायः सभी नाटकों में प्रसाद जी ने स्त्री चरित्रों को कई रूपों में कई कोनों से परखा है। यही कारण है कि उनके स्त्री–पात्र पुरुष–पात्रों की अपेक्षा उदात्त प्रतीत होते हैं। अतः डॉ० दशरथ ओझा के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'प्रसाद जिस प्रवृत्ति और उद्देश्य को लेकर नाटक–निर्माण में तल्लीन हुए थे, उसका चरम उत्कर्ष चंद्रगुप्त नाटक में प्रकट होता है।'[6]

संदर्भ संकेत :–

1) हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ० 50, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
2) प्रसाद का नाट्य–शिल्प, बनवारीलाल हाण्डा, पृ० 73, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, 1973
3) हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ० 67
4) प्रसाद का नाट्य–शिल्प, बनवारीलाल हाण्डा, पृ० 149
5) वही, पृ० 149
6) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, दशरथ ओझा, पृ० 247, राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, 1961

डॉ० कुमारी बबीता

द्वारा : पूर्व प्राचार्य, जिला स्कूल,

हजारीबाग, झारखण्ड।

25

भीष्म साहनी के तमस उपन्यास में शिल्प की दृष्टि से 'कथ्य'

डॉ.प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश :

उपन्यास व्यक्तिगत या समश्टिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं जिन्हें आज का उपन्यासकार जीता है। इसका सम्बन्ध जीवन की उन यथार्थ , वास्तविक स्थितियों से है जिनके भीतर आदमी भी सांस लेता है और उससे उत्पन्न समस्याओं से जूझने के लिए विवश हो जाता है। उपन्यासकार समग्र जीवन को उसकी सारी अच्छाइयॉ–बुराईयों सहित उपन्यास या रचना में प्रस्तुत करना है। युग की आवश्यकता के अनुरुप उसे ढालता है और उपन्यास की मूल सम्वेदनाओं समय–सापेक्ष और आम आदमी से सम्बह करना है। वह निरन्तर कहिन एवं भयावह होती हुई जीवन स्थितियों का वैयक्तिक, सामजिक, राजनीतक एवं आर्थिक स्तर पर विश्लेशित करता है।

भीष्म साहनी स्वातन्त्रोचर युग के सुत्रसिह कहानीकार एवं उपन्यासकार है। उपन्यास के क्षेत्र में उनका पहला प्रयोग 'झरोखे' उपन्यास 1967 में हुआ । लेखक ने इस उपन्यास में ''एक छत्र के नीचे रहने वाले की अलग–अलग राहों को उजागर किया है। इसमें हॅसी–खेल के साथ–साथ जीवन की उस गति को अंकित किया है। जो कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटती रहती है, जडता और बोरियत की गवाही देती है। उपन्यास में विस्मृति की अॅधेरी स्नेह मे पडे अतीत के चित्रों की अपनी कल्पना से सुसगत रुप देने की सार्थक चेश्टा है इसके अतिरिक्त प्रवृति दमन एवं व्यक्तिदमन का भी चित्रांकन हुआ है।

सन् 1970 में अधारित 'कडियॉ' भीश्म साहनी का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जिसमे पटरी से उखडे हुए वैवाहिक जीवन को पुनः स्थापित करने की चेष्टा की है तथा मध्यवर्गीय परिवार की टूटन की ओर इंगित कर आधुनिकता के प्रभाव को स्वीकारा है '' परिवारिक जीवन की बधिन वाली कड़िया चाहे कितनी मजबूत हो उनका टूटना आधुनिक जीवन की नियाति है इसलिए उन्हें जोड़ने की असफल चेश्टा करने की बजाय उनका समाधान ढूढना ही उचित होगा। उपन्यास में चित्रित किया है जो बहुत प्रामणित बन पड़ा है।

सन् 1973 में प्रकाशित भारत–पाक विभाजन के परिणाम स्वरुप देश में होने वाले साम्प्रदायिक दंगों की निर्मम करुण गाथा को प्रस्तुत करने वाला अत्यन्त महत्तवपूर्ण एवं चर्चित उपन्यास है जिसका उददेश्य विभाजन पूर्व की भारतीय लोगों की मानसिकता को पकड़ता है। अंग्रेज, सिख, मुसलमान, हिन्दू तथा सभी धर्मो के निर्दोश लोगों की पीड़ा का वर्णन है साम्प्रदायिकता का तमस समाज को किस प्रकार आच्छदित कर अॅधेरे में ढकेलता है कि व्यक्ति–व्यक्ति अपनी उजड़ी जिन्दगी को मूकदर्शक की भान्ति देखता है, साम्प्रदायिक वैमनस्य की जड़े भारतीय जनमानस में इतनी गहरी पैठी हुई है कि आज भी यज्ञ–तत्र उसक विस्फोट दिखायी पड़ता है धार्मिक उन्माद का जहर आज भी समाज मे तेजी से फैल रहा है। साम्प्रदायिकता का मूल कारण लेखक द्वि–राश्टवाद के सिद्वान्त और भारत विभाजन को मानता है। तमस उपन्यास पर भीश्म साहनी को साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुआ है। दूरदर्शन पर इसके प्रदर्शन के बाद इसकी प्रसिद्वी में वृद्विहुई है।

कथ्य शब्द संस्कृत की कथ धातु से निर्मित है जिसका शाब्दिक अर्थ–कहना है। साहित्यकार भुजीन परिवेश में रहते हुए अपने समाज का अवलोकन करता है। उसमे व्याप्त बुराईयों और विकृतियों को पहचान कर समाज को स्वस्थ विकास की सम्भावनाए दर्शाने की चेष्टा करता है। इस तरह साहित्यकार युग का सृश्टा भी होता है और दृश्टा भी साहित्यकार समाज की बुराईयों, विक्तियों एवं सम्भावनाओं को लक्षित करके अपने दर्शको, सामजिको, पाठको से जा कुछ कहना, दिखाना, सुनाना चाहता है वही उसका कथ्य कहलाता है। ''कथ्य शब्द' अंग्रेजी के थीम को भी कहते है। थीम संवाद, सभ्भाशण प्रवचन का विशय, आधारभूत कार्य या चेष्टा अथवा वह सामान्य प्रकरण या विशय , जिसे कथा–विशेश के द्वारा अवतरित किया गया हो। हिन्दी मे थीम को कथासूत्र की संज्ञा दी जा सकती है। कुछ विद्वान ऐसा मानते है कि कथ्य और कथानक एक ही है लेकिन इसमे प्र्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। डॉ. शिव कुमार पाण्डेय के अनुसार– ''कथ्य का शाब्दिक अर्थ होता है कहने योग्य या कथनीय। कहानी का खुलासा कथानक होता है। इस प्रकार कथ्य और कथानक में अन्तर है..... कथानक तो शिल्प का ही एक अंश है। यह वह ताना–बाना है जिसके द्वारा उपन्यास की कहानी बुनी जाती है जबकि कथ्य उपन्यास द्वारा आन्तरिक लय से सम्बन्धित होता है साहित्यकार की अनुभूति जब काव्य, कहानी, उपन्यास आदि किसी भी रचना में अभिव्यक्त होती है तभी वह इन सबका कथ्य कहलाती है। लूना चरस्को कथ्य को प्रमुखता प्रदान करते हुए कहते है– कला कृति के अन्तर्गत कथ्य को बिम्बों अथवा प्रवाह के रुप में देखा जा सकता है।

शिल्प शब्द शीला धातु में प्रत्यय जोड़ने से बना है। शीला धातु का अर्थ है–ध्यान रखना, पूजन करना, अर्चन करना, अभ्यास

करना। शिल्प शब्द मूलतः मुर्तिकला और वस्त्रुकला के क्षेत्र से सम्बन्धित है। हिन्दी मानक कोश के अनुसार शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्त्रकारी या कारीगरी से है। कारीगरी, हूनर वास्तव में ,शिल्प शब्द का सम्बन्ध साहित्य के अभिव्यंजना पक्ष से है।

शिल्प साहित्यिक कृति को एक प्रकार का विशिश्ट आकार देना है वह साहित्य को रुपाचित भी करता है। रचना के रुप तथा कथ्य दोनों तत्वों में निहित होने के कारण शिल्प शब्द को अधिक व्यापक अर्थो में ग्रहण किया जाता है। रचना के निर्माण में जिन उपकरणों द्वारा उसका ढाचा तैयार किया जाता है। वे सब रचना के शिल्प तत्व कहे जाते है यथा–रचना विधान, रचना शैली व रचना–विधि आदि। वस्तुत्र सभी शब्द र्प्याचवाची प्रतीत होते हुए भी अत्यन्त भिन्नता रखते है। डॉ. सत्यपाल चुघ के अनुसार– विशय वस्तु को कला रुप में ढालने या उसके ढल जाने की प्रक्रिया को शिल्प विधि कहते है। जब लेखक के भाव,विचार, अभिव्यंजना के मार्ग से मूर्त रुप धारण करते है तो उपन्यास का प्रणयन होता है। साहित्य–रचना साध्य है और शिल्प साधन है। वस्तुतः शैली को भी शिल्प–पक्ष का एक अंग माना गया है। शैली काव्य के नाटय रुप को अलकृत करने के साथ–साथ उसके भाव–पक्ष को भी विकसित करती है। बाबू गुलाब राय के अनुसार– किसी काम के किसी विशेश प्रकार से करने की पद्वति को शैली कहते है। प्रत्येक रचना के दो पहलू होते है– सृश्टा और भोक्ता या पाठक और लेखक। साहित्यकार अपनी अमूर्त सम्भावनाओं को मूर्त रुप देने का प्रयास करना है। डॉ. पुश्पा बंसल के अनुसार– शिल्प वह अदा है, वह विधि है, वह तरीका है, जिसके द्वारा उपन्यासकार अपनी वस्तु को रुप देते है।

कथ्य और शिल्प अविभाज्य अंग है, इसीलिए किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तिव नही माना जा सकता। कथ्य ओर न्यासिक रचना दृश्टि की आधार भूमि है। औपन्यासिक भवन की नींव है, उपन्यास शरीर का मेरुदण्ड है।

तमस उपन्यास समकालीन भारतीय इतिहास की सम्भवतः सबसे बडी त्रासदी और दुर्घटना से जुड़ी रचना है। यह रचना किसी उपन्यासकार की विशुद्व कल्पना नहीं है बल्कि भारतीय इतिहास की एक सच्ची घटना है। भारतीय स्वातत्रय आन्दोलन के अन्तिम दौर में देश–विभाजन से पुवै भीशण साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। तमस उसी अचानक शडयन्त्र में पिसते हुए लोगों की कहानी है। आजादी के ठीक पहले साम्प्रदायिकता की वैसाखियॉ लगाकर पाश्चिकता का जो नंगा नाच हुआ, उसके पॉच दिनों की कथा को तमस में उपन्यासकार ने इस खूबी से चुना है कि साम्प्रदायिकता का तार–तार उद्घाटित हो जाता है। साम्प्रदायिक तनाव से वहॉ जिस प्रकार के दंगे हुए और इन दंगो के समय आम आदमी की जो स्थिति हुई, उसे कथावस्तु के रुप में समेटेने का यहॉ प्रयत्न हुआ है।

कथावस्तुदो खण्डो में विभाजित है। पहले खण्ड में कुल लेटर प्रकरण है। नत्थू नामक एक मामूली चमार की कहानी से कथावस्तु का आरम्भ किया गया है। मुराद अली नामक एक कटटर मुस्लिम व्यक्ति ने उसे सूअर की हत्या का काम सौपा है। बदले में उसे पॉच रुपये दिए गए है नत्थू को यह नही मालूम कि सुअर की लाश की आवश्यकता क्यों है उसे तो कहा गया है कि किसी साहब को उसकी आवश्यकता है। बड़ी मुश्किल से रातभर सुअर से जूझकर नत्थू वह काम करता है। दूसरे दिन सवेरे ही शहर में खलबली मच जाती है कि मजिस्द की सीढ़ियों पर किसी ने सूअर मारकर फैका है। मुस्लिम फिर चिढ़ जाते है और दोनो सम्प्रदाय एक–दूसरे के दुश्मन हो जाते है परिणाम स्वरुप सारे शहर में आगजनी और खून की घटनाऍ शुरु हो जाती है। कटटर हिन्दूत्ववादी संगढन हिन्दुओं को इक्टठा कर सुरक्षा के तरीके सिखाते है तो उधर लींग हिन्दूओं पर आक्रमण की योजनाऍ बनाते है। बीस घण्टों के भीतर शहर में मुर्दानी छा जाती है, दुकानें जलाई जाती है, अनेंकों हत्याऍ होती है, अंग्रेज डिप्टी कम्शिनर पूर्णतः खामोश है और नागरिको का एक शिश्ट मण्उल डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड से मिलकर शान्ति स्थापना के लिए सरकारी सहयोग चाहता है। शिश्ट मण्डल के एक सदस्य बख्शी जी शहर में कफयू लगाने की सलाह देते है लेकिन वह बार–बार कहता है िकवह कुछ नहीं कर सकता क्योकि ताकत तो इस वक्त पण्डित नेहरु के हाथ में है। अनके अफवाहे फैलती है। सम्भवतः इसी कारण केवल चोबिस घण्टों में सत्रह दुकाने जलकर राख हो जाती है। इस प्रकार सुअर वाली घटना से शहर का सारा माहौल बदल जाता है। अब दरवाजे बन्द थे,शहर का कारोबार, स्कूल, कालिज, दफतर सभी ठप हो गए थे और ऐसे संशभ भरे नफरत से जलते हुए माहौल में कांग्रेसी जनदल चबूतरे पर खड़े होकर जोर–जोर से तकरीर दे रहा था– साहिबान.... ... आप शहर में अमन बनाए रखे, यह शरारत अग्रेज की है जो भाई–भाई को आपस मे लड़ाता है।

दूसरे खण्ड में इस जिले के आस–पास के गॉवों की मानसिकता का चित्रण हुआ है। शहर की इस घटना की प्रतिक्रिया देहातो से शुरु होती है। पश्चिमी पंजाब के देहातों में हिन्दू और सिक्ख अल्प संख्यक थे। आर्थिक दृश्टि से सम्पन्न थे। इस कारण भी वे इन दिनों अधिक पीसे गए। ढोक–श्लाही वक्ष के हरनाम सिंह और बन्तो नामक सिक्ख दम्पति की दर्दनाक स्थिति से दूसरा खण्ड शुरु होता है। इस दम्पति को गॉव से भागना पड़ता है। पड़ोस के गॉव मे रहने वाले इकबाल सिंह की स्थिति इसी प्रकार की हो जाती है। बलात् उसका धर्म परिवर्तन कराया जाता है। कइयों की बलात् सुन्नत की जाती है। उनके मुॅह में गो–मास ठूसा जाता है। उसकी बेरी जसबीर के गॉव पर भी मस्लिम चढाई कर देते है। सभी सिक्ख गरुद्वारें मे इक्ठा हो जाते है और वहॉ स्त्रियॉ जोहर कर लेती है।

सैयद पुर मे दोनो तरफ के लोग मजिस्द तथा गुरुद्वारे में असला जमा करते है। अल्लाह हो अकबर और सतसिरी अकाल के नारों से आकाश हिल उठता है। सोहन सिंह और मिगदाद दोनों मेल कराने का खूब प्रयत्न करते है अतः दोनों अपनी जातियों में अपमानित होते है। अलगाव वादी शक्तियॉ नफरत को गहरा कर देती है। यह सब जिस सूअर के कारण हुआ, उस मारने वाला नत्थू चमार बार–बार पूछता रहा है कि क्या उसने गलत काम किया है उसी रात मण्डी में भी आग लगा दी गयी है। घडियाल बडे जोरों से बजाया जाने लगा है। घडियाल की यह भयानक आवाज डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड भी सुन रहे है। पत्नी लीजा घबरा गयी है। वह बार–बार रिचर्ड से कह रही है कि फिसाद को रोके परन्तु रिचर्ड का एक ही तर्क है कि हम उनके मार्मिक झगडों मे दसल नही देते । रिचर्ड के इस वाक्य से अग्रेजों की नीति बहुत स्पश्ट हो गई है।

इस प्रकार दोनो खण्डों में क्रूरतम शक्तियॉ भी है और मानवीय शक्तियॉ भी । विभाजन के थोड़े ही दिनों पहले पंजाब के देहातों में जो भयानक मारकाट हुई, यह एक ऐतिहासिक सत्य है। उपन्यास में मानवीय सम्बन्धों में ह्रासोन्मुखी प्रवृतियों ,मूल्य–विघटन, अंग्रेज शासकों की फूट डालने तथा शासन करने की कूटनीति को, साम्प्रादयिक उपद्रवों को और आतंक से विभाजन से पूर्व तत्कालीन पंजाब के पश्चिमी भाग के उस क्षेत्र को उपजीव्य बनाया गया है जहॉ मुसलमानों का बाहुल्य था। अतः तमस साम्प्रादयिक अन्धकार की कहानी है जिसमें वास्तविक और व्यापक अनुभवों की रचनात्मक प्रस्तुति है।

शिल्प की दृश्टि से कथावस्तुः– प्रस्तुत उपन्यास की संरचना उनकी सम्वेदना की भान्ति ही अपनी सादगी के कारण ही पहचानी जाती है फिर भी भीश्म साहनी के उपन्यास तमस की संरचना जटिल होती गयी है इनके उपन्यास में आदि मध्य और अन्त का सहन, सुगम समीकरण है। जीवन के मार्मिक अनुभव प्रसंगों और अर्थपूर्ण वास्तविकताओं का चुनाव भीश्म के उपन्यास की अपनी विशेशता है। चित्रण शैली यथार्थवादी होने के कारण इस उपन्यास का ढॉचा मुख्यत नाटकीयता से निर्धारित हुआ है जिसमे जिज्ञासा, कौतुहल और विस्मय के तत्व बने रहते है जो उपन्यासकार के प्रगतिशील दृश्टिकोण और उनकी विश्लेशण शक्ति के कारण विशिश्ट हो गया है उसी संदर्भ में तमस उपन्यास के कथानक शिल्प का यहॉ अध्ययन किया जाएगा।

कथानक शिल्पः– उपन्यास की संरचना अनेक कहानियों के संकलन से की गई प्रतीत होती है। उपन्यास का कथानक असंगठित होते हुए भी क्रम बनाने में सफल दिखाई देता है। पहले खण्ड में कुल तेरह प्रकरण है जिसमें साम्प्रदायिक हादसे के जीवन्त चित्र खींचे है बल्कि उनके कारणों का भी सुक्ष्म विश्लेशण किया है। रिचर्ड और लीजा की बातचीत से स्पश्ट है कि भयानक हादसे की सबसे बड़ी जिम्मेवारी सरकार पर है जिसकी नीम के तहत ही यह सब कुछ घटित होता है। हिन्दू, मुस्लिम तनाव के बारे में रिचर्ड से बातचीत करते हुए लीजा को बराबर यह महसूस होता है कि मानवीय मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं होता,वास्तव में महत्त्व शासकीय मूल्यों का होता है। मनोहर लाल के अनुसार– इन फिसादों के लिये जिम्मेवार कौन है सरकार उस वक्त कहॉ थी जब शहर मे तनाव बढ़ रहा था अब कफयू लगाया गया है उस वक्त क्यों नही लगाया गया उस वक्त साहब बहादुर कहॉ थे .... तनाव और उत्तेजना की अन्तिम परिणति संघर्श में होनी सामाजिक है। निरन्तर उपर चढ़ता तनाव रुपी धारा अन्ततः अपने नाजुक खोल को तोड़कर संघर्श रुपी किरचे चारो और छितरा देता है। तमस में ऐसी घटनाओं और चरित्रों का आयोजन हुआ है जो तनाव और उत्तेजना को निरन्तर प्रज्जवलित कर भीशण काण्डों की सृश्टि करते है। सुअर मारकर मजिस्द की सीढ़ियों पर फेक देना विकराल घटना चक्र का प्रवर्तन करता है। बदले में गाय काट दी जाती है।

स्वाभविकता, सजीवता और यार्थथताः– शिल्प की दृश्टि से विशेशता है– स्वाभविकता और सजीवता। स्वाभाविकता से अर्थ है कि उपन्यास में वर्णित कथा विश्वसनीय हो। कथानक शिल्प की विशेशता इस तथ्य में निहित है कि उपन्यास में व्यक्ति के जीवन की कथा, इस रुप में प्रस्तुत हो िकवह काल्पनिक होते हुये भी यर्थाथ प्रतीत हो, इसके अतिरिक्त कथानक का विकास सहज स्वाभविक रुप से हो। उपन्यास के अन्तर ये सभी विशेशताऍ हमें देखने को मिलती है इसमे रोचकता, सजीवता व स्वाभविकता के गुण दिखायी पड़ते है। कथा को पढते समय ऐसा अहसास होता है कि मानो सारी घटनाऍ हमारे सामने हुई हो या हो रही है। अप्रेल 1947 क्रूर घटनाऍ हुई है। आगजनी, खून, धर्म–परिवर्तन के जो चित्र यहॉ आये है वे अत्यधिक यथार्थ और मार्मिक है। यथार्थ पर भी उनकी पकड़ में कहीं पर भी ढील नहीं है वास्तव में, यथार्थ की यह अधिकता साहनी की कमजोरी नहीं है, शक्ति है। वे इस यथार्थ को कलात्मक स्तर पर ले जाने में सफल रहे है। इसी कलात्मकता के कारण ही यह उपन्यास नीरस नही लगता। देश में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के चरित्र को भी सहानी जी ने पूरी सजगता के साथ उभारा है। लेखक की राय में ब्रिटिस साम्रज्यवादी सरकार का चरित्र स्वार्थ युक्त और दोहरा था इसीलिये अग्रेजों ने देश में 'फूट डालों और शासक करो' की नीति की अपना अजये हथियार बनाकर एक लम्बे समय तक शासन किया।

वर्णनात्मक प्रस्तुतिः– उपन्यास की कथा प्रस्तुति विम्बात्मक न होकर वर्णनात्मक है। कथा में ऐतिहासिक क्रम का निर्वाह किया गया है। इसमें विभाजन के समय में स्थितियों और साम्प्रदायिक फिसादो को सामाजिक और राजनैतिक नजरिए से देखने का प्रयत्न किया गया है।

सहजता और मौलिकताः– कथानक का निर्माण सहज एं

मौलिकता से परिपूर्ण है, आरोपित नही है। विभाजन पूर्व की यह कथा है। 4 जून 1947 को विभाजन को स्वीकार कर लिया जाता है। इसके पूर्व ही पाकिस्तान की निर्माण की बात की जा रही थी परन्तु पाकिस्तान बनेगा–ऐसा विश्वास दोनों वर्गो में से किसी को नही था। इसीलिए इस उपन्यास का सम्बन्ध विभाजन की समस्या से नहीं है। विभाजन पूर्व साम्प्रदायिक समस्या से इसका सम्बन्ध है। हिन्दू और मुसलमानों की आन्तरिक एकता स्थापित करने के लिए कई शक्तियॉ पिछले कई वर्शो से प्रतिबद्वहै ठीक इसी प्रकार इनमे अलगाव बढाने वाली शक्तियॉ भी है। इस दूसरी शक्ति को उभारने से हिंसा किस प्रकार उभरती है तथा किस प्रकार मानवीय मूल्यों की होली जलायी जाती है इसे यह कथावस्तु इस देश के एक नाटक परन्तु उतने ही महत्त्वपूर्ण मसले को लेकर सहज एवं मौलिक दंग से प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष

सांद्देश्य कथानकः– उपन्यास की कथावस्तु समस्यामूलक है। दो सम्प्रदायों के बीच के तनाव की समस्या को यहॅ लिया गया है। इस समस्या को लेखक नये ढंग से देख रहा है। धर्म, राजनीति और सम्प्रदाय से एकदम अलग हटकर शुद्व मानवीय धरातल से भीश्म साहनी ने जो समस्या रखी है उसे आम आदमी की दृश्टि से देखा जाये। प्रयास ये किया गया है कि मजहबी जनून और नफरत के इस माहौल में इन्सानियत की कहीं कोई एक पतली सी लकीर है अथवा वह भी लुप्त हो गई है। कहीं कोई मानवीयता की रेखा नहीं थी। शाहनवाज, राजो, जरनैल आदि में उन्हें यह रेखा दिखाई पडती है। इस तरह असख्य बर्बर और अमानवीय हत्याओं, अग्निकाण्डों, लूटपाट आदि के बाबजूद मानवीयता भारतीय भूमि से निःशेश नही हुई। मानवता और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के फलस्वरुप कुछ व्यक्तियों के क्रिया कलाप साम्प्रदायिक माहोल के मसस्थल में सदभाव के कारण अपनी स्मृति दिलाए बिना रहते और साथ ही बेहतर भविश्य की ओर इंगित करते है।

इस प्रकार 'तमस' उपन्यास कथा शिल्प के नवीन प्रयोगों से समन्वित होने के कारण सर्वथा सफल है और लेखक ने अपने उददेश्य की अभिव्यक्ति उपन्यास के कथानक, पात्र तथा घटना नियोजन द्वारा कर देता है। उददेश्य के साथ–साथ उपन्यास में शीर्शक लेखक के मन्तव्य को एक शब्द में बाधकर रेखांकित करता है। दंगों की वह सारी स्थिति एक सुविचारित पूर्व नियोजित शडयन्त्र या योजना थी– यह धारणा उपन्यास के स्वबन्ध की भी एक योजना के रुप में ही निर्धारित कर देती है शायद यही कारण है कि उपन्यास में कथा नहीं, उस मूल नक्शे को उजागर करने वाली कथात्मक झलकियों है और रिचर्ड की ही तरह सारी असलियत को समझने वाले भीश्म, किसी एक स्थान स्थिति व्यक्ति पर न टिक कर सर्वदश्य की तरह सब कुछ देखते है। इस प्रकार तमस प्रकृति–कोप जैसी एक दुर्घटना का सटीक दस्तावेज है और इसे भीश्म में अपनी प्रौढ कलम, गहरे निरीक्षण और प्रभावशाली बना दिया है उपन्यास में नया कुछ भी न होते हुए भी एक अजीब तरह की ताजगी है जा इसका महत्त्वपूर्ण गुण है।

संदर्भ ग्रंन्थ सूची–

1. समकालीन साहित्यः एक नई दृश्टि पृ0 126 सहायक स्त्रोत– डॉ. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास के 100 वर्श
2. वही
3. प्रधान सम्पादक, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1 पृ010
4. डॉ.शिव शंकर पाण्डेय, स्नातन्त्रयोत्रर हिन्दी कहानी कथा और शिल्प पृ. 85
5. डॉ.शिव कुमार मिश्र मार्क्सवादी साहिल, चिन्तन, इतिहास तथा सिद्वान्त पृ.391
6. डॉ.सतपाल चुघ प्रेमचन्दोत्त्र उपन्यासों की शिल्प विधि पृ. 08
7. वही, प08
8. राजनाथ शर्मा, भारतीय एवं पाश्यात्य काव्यशास्त्र पृ.108
9. डॉ. पुश्पा बंसल, अन्तराल का शिल्प –सप्त सिन्धुमास, पृ.37
10. भीश्म साहनी तमस पृ. 136
11. भीश्म साहनी तमस पृ. 123
12 वही पृ. 48

डॉ.प्रवीण कुमार वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय
पलवल

26

रामवृक्ष बेनीपुरी स्वतंत्रता के प्रति समर्पित साहित्यकार

डॉ0 पायल कुमारी

सारांश :

स्वतंत्रता सेनानी, महान निबंधकार, प्रसिद्ध रेखाचित्रकार, आलोचक, श्रेष्ठ नाटयशिल्पी रामवृक्ष बेनीपुरी का हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ स्थान है। रामवृक्ष बेनीपुरी बीसवीं सदी के उन हिन्दी लेखकों में है जिन्होंने साहित्य की विभिन्न विद्याओं में श्रेष्ठतम लेखन किया। कथा साहित्य और नाटक में नए प्रयोग किए और कालजयी कृतियों की रचना की। इसी तरह राजनैतिक और साहित्यिक दोनों ही तरह की पत्रकारिता को उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी से नया रूप दिया। स्वाधीनता सेनानी बेनीपुरी समाजवाद की राजनीति के आरंभकर्ताओं में रहे हैं और देश के लिए जेल यात्रा भी की। उनका यह बहुमुखी व्यक्तित्व उन्हें 20वी सदी के महानायकों की कतार में खडा करता है। जिन्दगी की बहुस्तरीय व्यस्तताओं के बावजूद उन्होंने अनवरत साहित्य लेखन किया और महान साहित्य की रचना की। उनका संपूर्ण लेखन अग्रगामी मनुष्य के लिए बहुमूल्य पाथेय है।

बेनीपुरी उन साहित्यिकों में न थे, जो सदा ही कलम लिए बैठे रहते है। स्वातंत्र्य आंदोलन में वे प्रचंड योद्धा के रूप में सामने आए, पर देश के स्वतंत्र होने पर वे मिनिस्ट्री में चिपक नहीं गए उससे अलग रहकर उन्होंने समाजवाद का नेतृत्व किया। स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में बेनीपुरी द्वारा लिखी गई जीवनियाँ काफी चर्चित हुई। इसने आजादी की लड़ाई में शामिल होने के लिए युवकों का मानस तैयार किया। इन जीवनियों का यह ऐतिहासिक योगदान है। इतिहास से जुड़े होने के कारण इन जीवनियों की प्रांसगिकता आज भी बनी हुई है।

रामवृक्ष बेनीपुरी विद्रोही व्यक्तित्व के साहित्यकार थे। उनकी दृष्टि नये समाज पर केन्द्रित थी। निःसंदेह वे क्रांतिकारी थे। उनका ध्येय नये मूल्यों की स्थापना एवं नये समाज का निर्माण करना था। दीनहीन, पीडित, गरीबो, जर्जरित परंपरा में जकड़ी नारियों और असहाय विवश मानवों का कल्याण करने केलिए उनका मन सदैव संवेदनशील रहता। उनके 'चिता के फूल' कहानी संग्रह में शोषित समाज की पीडा को अभिव्यक्ति मिली है। कैंप–जेल में ऊपर–ऊपर जितना आनंद था, भीतर–भीतर उसमें उतना ही खोखलापन था।[1] अपने उपन्यास 'पतितों के दश में' के अंतर्गत उन्होंने भारतीय जेल जीवन के नरक से साक्षात्कार कराया है। जहाँ कल्लू हो, जमादार हो, जहाँ बेंत की तिकठी हो, फाँसी का तएता हो–यह स्वर्ग तो हो नही सकता। ये तो पृथ्वी के ही कलंक हैं–स्वर्ग की बात अलग।[2] बेनीपुरी के नाटक 'अम्बपाली' की पुरानी वैशाली स्वाधीनता आंदोलन के दिनों की भारतीय चेतना का भी प्रतिनिधित्व करती है। चारों ओर से आवाजें आती हैं – हम ऐसा सनहीं होने देंगें– 'हम वैशाली पर अपने को बलिदान कर देंगें', आदि फिर वृज्जिसंघ की जय, 'वैशाली की जय,' 'अम्बपालीकी जय,' की ध्वनि प्रतिध्वनी होने लगती है।[3]

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान 1930 से 1945 के बीच बेनीपुरी ने अनेक बार जेल यात्राएँ की। जंजीरें और दीवारें में उन्हीं यात्राओं का अनुभव दर्ज है। जेल में बेनीपुरी का इतना अधिक समय गुजरा कि उनकी चेतना पर जेल बाद तक भी हावी रही। सपने में भी वे अपने आप को जेल में पाते थे। हजारीबाग, पटना, कैम्प जेल, गया, सारे के सारे जेल सपनों में आते रहते थे। अपने जीवनकाल में वे बारह चौदह बार जेल गये और सात आठ वर्षो का जीवन जेल में कटा होगा। 'जंजीरे और दीवारें' पुस्तक में जेल जीवन के साथियों के व्यक्तित्व का व्योरा है। 1942 के 'भारत छोडों आंदोलन' के दौरान गिरफ्तार जयप्रकाश नारायण के जेल से भागने का जीवन वृतांत इस पुस्तक का अविस्मरणीय हिस्सा है। जेल से जेपी का महापलायन करवाने में बेनीपुरी की अति महत्वपूर्ण भूमिका थी। जय प्रकाश जी जब जेल से छूटे, उन्होंने घोषणा की, हम एक बार और लडेंगें। और अंग्रेजों को भगाकर ही दम लेंगें। मैं फिर एक बार अग्निकुंड में कूदने की तैयारी में लगा।[4] जेल जीवन पर उनका उपन्यास था 'पतितों के देश में 'दूसरा उपन्यास 'कैदी की पत्नी' भी प्रकारांतर से जेल जीवन से ही संबद्ध है। ये तीनों किताबें भारतीय जेल जीवन तथा अपने समय के इतिहास का बहुमूल्य दस्तावेज है। अपनी जेल यात्रा के दौरान बेनीपुरी ने जोश और इकबाल के काव्य का लिप्यंतरण और रवीन्द्रनाथ की कविताओं तथा कुछ पश्चिमी कवियों की रचनाओं का

अनुवाद किया था। प्रेमचंद और बेनीपुरी हिन्दी के दो ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन की भीतरी विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया है। बेनीपुरी जी का एकमात्र कहानी संग्रह 'चिता के फुल में बहुत कुछ आप बीती भी है। इन कहानियों में 'भोगे हुए यथार्थ की भरपूर गूंज है। रामू की लाल आँखे देख चौक पड़ी उसकी माँ। उसने समझा, उसकी तबियत खराब है – शरीर छुआ, ज्वर तो नही था। किन्तु, वह बेचारी क्या जानती थी कि एक ज्वर ऐसा भी होता है, जो शरीर को ठंडा रखता है, परन्तु हृदय को जलाता है।5 3

स्वतंत्रता आंदोलन के क्रम में बेनीपुरी जी ने अनेकों बार जेल यात्रा की। अप्रैल 1930 ई0 से अक्तूबर 1930 ई0 तक छह महीने की उन्हें सख्त कैद हुई। जेल में भी वे संगठनात्मक एंव रचनात्मक कार्य करते रहे। अक्तूबर 1930 ई0 में जब बेनीपुरी जेल से छूटे तब उन्होंने अपने गांव के निकट ही 'बागमती आश्रम' की स्थापना की और आसपास के युवकों को इकटठा कर सत्याग्रह की धुनी रमाई। सरदार भगत सिंह और उनके साथियों की फाँसी पर 'युवक' में बेनीपुरी के एक लेख के कारण उन पर राजद्रोह का अभियोग चला और अंग्रेज सरकार ने उनको डेढ साल की सजा दी। अगस्त, 1942 ई0 के प्रारंभ के दिन थे। किसान आंदोलन के सिलसिले में बेनीपुरी जेल में ही थे। गांधी जी 'करो या मरो' का नारा देने वाले थे। एक महीने का अल्टीमेटम सरकार को देकर 'भारत–छोडों' का नारा बुलंद करने वाले थे। बेनीपुरी के साथी एंव समाजवादी पाटी के नेता जय प्रकाश नारायण हजारीबाग जेल में ही कैद थे। किसी प्रकार मजिस्ट्रेट से प्रार्थना कर अगली योजनाएँ बनाना चाहते थे कि अगस्त क्रांति में उनका क्या काम होगा। 8 अगस्त 1942 ई0 को देशभर में अंग्रेजी शासन के खिलाफ खुला विद्रोह शुरू हुआ। यातायात के साधन ठप हुए, गोलियाँ चलने लगीं, गिरफ्तारियाँ होने लगीं, लोगों की वीरता और सरकार की नृशंसता की खबरे बेनीपुरी को जले में मिलने लगी। सडके टूट रही थीं, रेलवे गोदाम लूटे जा रहे थे, रायफलें छीनी जा रही थीं। बंबई से आया 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा देश के कोने–कोने में फैल गया। जेल से भागने की योजनाएँ बनाई जाने लगी। इन्कलाब जिंदाबाद साधारण मंत्र ही नहीं रहा, वह राष्ट्र का गायत्री मंत्र हो चुका है। इसके ब्रह्मा ने कंमडलु के जल से नहीं, अपने खून के छींटे से इसे पूत किया है।6 बेनीपुरी के प्रयत्नों से जयप्रकाश नारायण अपने पाँच साथियों के साथ 1 नवंबर 1942 ई0 को हजारीबाग जेल से भाग निकले। उनके 'महापलायन' में बेनीपुरी ने पूरी सतर्कता बरती थी। नतीजा यह हुआ कि जेल में उन पर पहरा अधिक सख्त कर दिया गया। इसी क्रम में 1943 ई0 की 26 फरवरी को बेनीपुरी ने अन्य कैदियों के साथ स्वतंत्रता दिवस बनाया। जमादारों, जेलरों और सुपरिटेंडेंट के विरोध के बावजूद भी झंडावादन किया। प्रतिक्रिया स्वरूप बेनीपुरी को गया जेल भेजा गया।

बेनीपुरी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के संबंध में दिनकर जी ने लिखा है – 'उनके भीतर केवल वही आग नहीं थी, जो कलम से निकलकर साहिय बन जाती है। वे उस आग के धनी थे, जो राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों को जन्म देती है, जो परंपराओं को तोडती और मूल्यों पर प्रहार करती है, जो चिंतन को निर्भीक और कर्म को तेज बनाती है। संक्षेप में वे क्रांतिकारी मनुष्य थे और उनका ध्येय नये मूल्यों 4

की स्थापना एवं नये समाज का निर्माण था। समाज जब बदलने लगता है, वह अपनी प्रक्रिया को तेज करने के लिए कुछ बेचैन मनुष्यों को जन्म देता है। बेनीपुरी जी के भीतर बेचैन कवि, बेचैन चिंतक, बेचैन क्रांतिकारी और निर्भीक योद्धा सभी एक साथ निवास करते थे। इसमें दो राय नहीं है कि बेनीपुरी के साहित्य में जो प्रखरता और परिवर्तन चेतना है, वह उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व की उपज है। उनका साहित्य और जीवन दोनों एक दूसरे के पूरक और प्रतिबिंब है। बेनीपुरी जी को कविता 'पचासवाँ पार किया कविता में लोगों में जोश भरते हुए लिखा है –

अब जोश पर होश की लगाम है,
पैरों में गति के साथ यति भी है,
हाथों में बल के साथ अनुभव भी है,
आँखों में ज्योति के साथ सूझ भी है,
खून में उबाल के साथ सम्हाल भी है,
अब एक की जगह दो दो मददगार है तुम्हारे,
अतः बढ़े चलो,
झीकों मत कि मैने पचासवाँ पार किया।7

बेनीपुरी की कथनी और करनी में काफी एकरूपता थी। उन्होंने क्रांतिकारी विचारधारा को केवल व्यक्त ही नहीं किया, वरन उस विचारधारा के अनुरूप ही अपने जीवन को प्रवर्तित भी किया उन्होंने लिखा भी है – केवल प्रचलित विचार प्रवाह को ही बदलना क्रांतिकारी का काम नही होता – 'थियोरी' के साथ 'एक्शन' पर भी पूरा ध्यान देना है।''

संदर्भ संकेत

1. बेनीपुरी ग्रंथावली 1 पृष्ठ 30
2. बेनीपुरी ग्रंथावली 1 पृष्ठ 294
3. बेनीपुरी ग्रंथावली 2 पृष्ठ 73
4. बेनीपुरी ग्रंथावली 4 पृष्ठ 95
5. बेनीपुरी ग्रंथावली 1 पृष्ठ 26
6. बेनीपुरी ग्रंथावली 1 पृष्ठ 113
7. बेनीपुरी ग्रंथावली 1 पृष्ठ 430

डॉ0 पायल कुमारी
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
संजय गाँधी मेमोरियल
महाविद्यालय, पंडरा, राँची।

27

''प्राचीन शिक्षा पद्धति तथा नवीन शिक्षा पद्धति का तुलनात्मक विवेचन''

डॉ0 मन्जू गर्ग

सारांश :

भारत की प्राचीन संस्कृति का इतिहास अत्यन्त गौरवशाली है। इसने सभ्यता के अति प्राचीन काल से ही विश्व में आदरपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। भारत में भाषाओं की विविधता रही है, किंतु भारतीय भाशाओं की लिपियों का उद्गम ब्राह्मी लिपि से हुआ है। सभी भाषाऐं संस्कृत से उद्भूत अथवा प्रभावित हैं। इसमें लिखित साहित्य प्राचीन भारतीय ज्ञान का भंड़ार है। संस्कृत भाषा वस्तुतः भारतीय संस्कृति की वाहिका है। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि का पठन–पाठन सम्पूर्ण देश में होता रहा है। लौकिक साहित्य भी एकता के साधन रहे हैं। कालिदास का काव्य समस्त देश का गौरव है। पाणिनि, पतंजलि आदि के ग्रन्थ कश्मीर से कन्याकुमारी तक शिक्षा के समान माध्यम थे। वैदिक शिक्षा ही भारत की सर्वप्रथम शिक्षा व्यवस्था का रुप रही है। इसके विकास में वेदों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक साहित्य में शिक्षा से तात्पर्य– विद्या, ज्ञान, बोध और विनय से होता था अर्थात वेदों के अनुसार शिक्षा का अर्थ ज्ञान या विद्या की प्राप्ति करना था एवम् शिक्षा का उद्देश्य आत्मानुभूति एवम् आत्मबोध करना था। वैदिक युग में धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष को जीवन का प्रमुख आधार माना जाता था तथा जीवन का एकमात्र उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति था।

प्राचीन भारत में देश के प्रत्येक कोने से विद्यार्थी एकत्र होकर इस तथ्य की पुष्टि करते थे कि विविधताओं के होते हुए भी भारत देश एक है। वैदिक शिक्षा में ज्ञान की खोज केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिये नहीं अपितु धर्म के प्रचार–प्रसार के लिये की गयी थी। आध्यात्मिकता अथवा धार्मिकता एक प्रकार से भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। प्राचीन समाज में पुरुषार्थों का विधान एवम् आश्रम–व्यवस्था प्रतिपादन मनुष्य की आध्यात्मिक साधना के ही प्रतीक रहे। जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है प्राचीन काल में जो धर्म के द्वारा उन्नति करे वही विद्धान एवम् गुणवान कहा गया है। जो शिक्षा धर्म को धारण की शक्ति के साथ–साथ अभ्युदय श्रेय एवं सिद्धि को प्रदान करती है तथा जो भौतिकता, आध्यात्मिकता दोनो का संवर्धन करती है वही शिक्षा श्रेश्ठ मानी गयी है। वैदिक शिक्षा में ब्रह्मचर्य का अत्यधिक महत्व था। विद्यार्थी जीवन का प्रथम लक्ष्य यही था।

वैदिक युग प्रवचन काल था। इसमें पढने और लिखने का प्रचलन नहीं था। सुन कर स्मरण कर लेना विद्यार्थियों की पूर्ण सफलता थी। उस समय आचार्य का सर्वोच्च सम्मान किया जाता था वह राजा से भी अधिक पूज्य होता था इसलिए प्रसिद्ध भी था कि राजा केवल अपने ही देश में पूजनीय होता है जबकि विद्वान का सर्वत्र सम्मान होता है यथाः– ''स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते''

प्राचीन समय में शिश्य गुरुकुल में रहकर विर्द्याजन के साथ–साथ गृहस्थ जीवन की व्यावहारिक शिक्षा, अनुशासन एवम् अच्छे संस्कार को अपने जीवन में उतारता था। गुरुकुल अपने शिष्यों को संस्कारयुक्त और ज्ञानवान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे और शिष्य भी गुरु की सेवा में समर्पित होकर विद्या ग्रहण करते थे। गुरु मौखिक प्रवचन द्वारा शिक्षा प्रदान करते थे और छात्र सुनने के पश्चात मनन और चिन्तन करते थे। घर से दूर शान्त एवं स्वच्छ वातावरण में छात्रों का सर्वांगीण विकास किया जाता था। छात्र अनुशासित रहते थे एवम् गुरु के प्रति श्रद्धा एवं सेवाभाव रखते थे। वैदिक युगीन शिक्षा की कुछ मुख्य विशेषताऐं रही जो निम्न हैः–

1. घर से दूर शान्त एवम् स्वच्छ वातावरण में छात्रों का बौद्धिक व शारीरिक विकास भी होता था। गुरु छात्रों की शंका का समाधान भी करते थे व बीच–बीच में प्रश्न पूछकर उनके बुद्धि कौशल का भी परीक्षण करते थे।
2. शिष्यों व गुरुओं के बीच वाद–विवाद का आयोजन भी होता था। कभी–कभी बड़े–बड़े आयोजन कराकर बाहर से विद्धानों को बुलाकर शास्त्रार्थ भी किया जाता था ऐसे आयोजनों से शिष्यों के ज्ञान में भी वृद्धि होती थी।
3. परीक्षाएं मौखिक रुप से तो प्रतिदिन होती ही थी नये अध्याय आरम्भ होने से पूर्व पहले पढ़ाए पाठ की मौखिक परीक्षा भी ली जाती थी।
4. गुरुकुल में गुरु एवं छात्र पिता–पुत्र की तरह रहते थे इसलिये छात्र आत्म–अनुशासित होते थे दण्ड केवल प्रयश्चित स्वरुप दिया जाता था।
5. पाठ्यक्रम में राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिश एवम् तर्कविज्ञान आदि को शामिल किया जाता था। नृत्य, कला, संगीत व अभिनय आदि को भी स्थान दिया गया था। स्वास्थ्य शिक्षा का पाठ्यक्रम में विशेश स्थान होता था।
6. वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी वे बिना किसी भेदभाव के शिक्षा ग्रहण कर सकती थी।
7. उस समय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों में पवित्रता की भावना का विकास करना रहता था। जिससे वे ब्रह्मचर्य व्रत

का पालन कर सके।

8. प्राचीन कालीन शिक्षा छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करने में सहायक होती थी जिससे छात्र अपने भावी जीवन में सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करें।
9. छात्रों को सर्वश्रेष्ठ नागरिक बनाने के प्रयास रहता था उनमें देशप्रेम की भावना के साथ–साथ उनमें सामाजिक भावना का भी विकास किया जाता था।
10. शिक्षा अध्ययन के साथ–साथ शिष्यों को प्रतिदिन धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन एवम् धार्मिक क्रिया कलाप भी कराये जाते थे जिससे उनमें धार्मिक भावना का भी विकास होता था।
11. खेलकूद, क्रीडा, शारीरिक श्रम एवम् समय–समय पर छात्रों के मध्य प्रतियोगिताएं भी कराई जाती थी।
12. छात्रों को स्वास्थ्य सम्बन्धी जड़ी–बूटियों औषधियों का ज्ञान भी कराया जाता था।
13. छात्रों को जीवन निर्वाह हेतू रोजगार परक शिक्षा भी दी जाती थी जिससे वे गृहस्थ जीवन का निर्वाह कर सके व स्वावलम्बी बन सके।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु व शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त निकट व घनिष्ठ होता था। प्रत्येक शिष्य गुरु के प्रति श्रद्धा एवं सेवा का भाव रखता था। गुरु की आज्ञा का पालन करना, सेवा करना, दैनिक कार्य करना, भिक्षा मांगना तथा आश्रम की व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में गुरु की सहायता करना छात्रों के प्रमुख कर्तव्य माने जाते थे ये सभी कार्य प्रत्येक छात्र आपस में मिलजुल कर एवं प्रेम भाव से करते थे। छात्र द्वारा कोई गलती होने पर दण्ड केवल शिश्यों को प्रायश्चित फलस्वरुप दिया जाता था किसी द्वेशभाव के वशीभूत होकर नहीं। इसलिये शिष्य गुरु के प्रति आज्ञाकारी व विनम्र होते थे। प्रत्येक गुरु अपना कर्तव्य मानता था कि वह शिष्यों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाये और उनका पथ–प्रदर्शन करे। गुरु का जीवन शिश्यों के लिये आदर्श होता था। शिष्यों के लिये गुरु आध्यात्मिक पिता तुल्य थे। अपने शिष्यों का सर्वांगीण विकास करना ही गुरु का परम लक्ष्य रहता था।

यह सत्य है कि सृष्टि के आदि, वेदों के आविर्भाव से लेकर आज तक मानव को जैसा वातावरण, समाज व शिक्षा मिलती रही वह वैसा ही बनता चला गया, क्योंकि ये ही वे माध्यम है जिनसे एक बच्चा कृत्रिम उन्नति करता है बाद में अपने बुद्धि कौशल के आधार पर विचारमंथन और अनुसंधान करके ऊँचाइयों को छूता है। पहले शिक्षा समाज से दूर रहकर शान्त, स्वच्छ और सुरम्य प्रकृति की गोद में रहकर दी जाती थी वह परिवार से दूर गुरु के सानिध्य में रहता था परन्तु आज शिक्षा समाज में रहकर दी जाती है। आज के समाज की दशा शोचनीय है जिसने सामाजिक व्यवस्था को तार–तार कर दिया है। क्या आज के विद्यार्थियों में किंचित मात्र भी माता–पिता में भक्ति, गुरुजनो के प्रति आदरभाव, स्वदेश में अनुरक्ति या कर्तव्यों के प्रति अनुराग है, नही केवल उसमें अर्थासक्ति है। किसी देश का विकास उस देश की शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करता है, क्योकि देश की उन्नति के लिये हर व्यक्ति जिम्मेदार है और वो ही देश को अपने ज्ञान, संस्कार और अच्छे आचरण के जरिये देश को बुलंदियों पर पहुँचा सकता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली जिसमें आध्यात्मिक व भौतिक संसार के लक्ष्य को आधार मानकर युवा पीढी को शिक्षित करने का प्रयत्न किया जा रहा था वह शिक्षा पद्धति के दुर्बल रुप को उजागर करता है। मनुश्य के भौतिक विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाना एवम् सभ्यता, समाज, धर्म से जुडे विचारों को आज की शिक्षा प्रणाली में स्थान न मिल पाना व इसकी उपेक्षा ही आज की दोशपूर्ण शिक्षा प्रणाली के मुख्य दोश हैं। सामाजिकता अपने पतन की ओर अग्रसर है ये सब भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव का परिणाम है। संक्षेप में प्रचलित शिक्षा पद्धति के कुछ मुख्य दोश दृश्टिगोचर होते हैं जो निम्न हैंः–

1. शिक्षा का वर्तमान स्वरुप व्यावहारिक न होकर सैद्धान्तिक हो गया।
2. शैक्षिक पाठ्यक्रम की बोझिल प्रवृत्ति मानसिक तनाव का परिणाम है जो आज के प्रतियोगी युग के कारण जन्म ले रही है।
3. आधुनिकीकरण एवम् तकनीकीकरण ने विद्यार्थियों को पूरी तरह कम्प्यूटर खोज पर निर्भर बना दिया जिससे गुरु व शिष्य के मध्य अंतर बढ़ता जा रहा है।
4. वर्तमान शिक्षा बच्चों में देश प्रेम की भावना व मानव मूल्यों को विकसित करने में विफल रही।
5. वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर पश्चिमीकरण का भी पूरा प्रभाव देखा जा सकता है।
6. उच्च शिक्षा एक निश्चित संभ्रांत वर्ग तक सीमित रह गयी। जिससे सामाजिक कुंठा ने जन्म लिया।
7. शिक्षा अधिक खर्चीली होती गयी जिस कारण गरीब व्यक्ति शिक्षा की पहुँच से दूर होता जा गया।
8. प्रतिस्पर्धापूर्ण युग ने निजी शिक्षाकेन्द्रों को जन्म दिया जिसके कारण आज शिक्षा एक क्रय–विक्रय एवम् पेशेवर शिक्षा संस्थानों के रुप में देखी जा सकती है।
9. ऐसे संस्थानों पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध न होने के कारण यह दिनोदिन फलती–फूलती गयी।

इस प्रकार शिक्षा का वर्तमान स्वरुप मानव के विकास से सम्बन्धित न होकर उसके भौतिक विकास एवं नैतिक मूल्यों के पतन तक सीमित होकर रह गयी। आज का शिक्षित वर्ग ही देश की अर्थव्यवस्था को सुचारु रुप से चला सकता है किन्तु अगर शिक्षा प्रणाली ही ठीक न हुई तो उस देश का भविष्य अंधकारमय हो सकता है इसलिये आज जरुरत है एक अच्छी नई शिक्षा प्रणाली की जिससे

ज्ञानवान एवं एक अच्छे आचरण वाला व्यक्ति बन सके। इसलिये नवीन शिक्षा पद्धति में कुछ ऐसी विशेषताओं का समावेश किया जाये जिनके कारण यह शिक्षा नीति पहले की अपेक्षा अधिक विशिष्ट, श्रेष्ठ, आधुनिक एवं उपयोगी सिद्ध हो और यह आधुनिक युग की आवश्यकता भी है।

- शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन के साथ–साथ जीवन यापन की कला में दीक्षित करना भी हो।
- शिक्षा का परम उद्देश्य बालक को जनतांत्रिक नागरिकता की शिक्षा देना है इसके लिये बालकों को स्वतंत्र तथा स्पष्ट रुप से चिन्तन करने एवम् निर्णय लेने की योग्यता का विकास परम आवश्यक है।
- शिक्षा द्वारा ही बालकों में व्यावसायिक कुशलता के लिये उन्हे व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये जिससे वे शिक्षा समाप्त करने के पश्चात अपने मनपसंद व्यवसाय को शुरु कर सके।
- शिक्षा द्वारा बच्चे के बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक विकास के साथ–साथ उनमें रचनात्मक विकास भी किया जाये।
- शिक्षा के साथ–साथ उनके शारीरिक विकास हेतु खेलपरक शिक्षा एवम् योग की शिक्षा भी प्रदान की जाये जिससे बच्चों का शारीरिक विकास एवम् स्वास्थ्य का भी विकास हो।
- देश में महिलाओं के स्तर को और ऊँचा उठाने हेतु महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाये।
- उनके अनुसंधानों की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना जिससे वे नयी–नयी खोज कर सकें।

शिक्षा वही होनी चाहिए जो मानव के विकास की ओर विशेष ध्यान दें साथ ही उसके आध्यात्मिक विकास पर पूरा–पूरा जोर दें। शिक्षा को समय की मांग के अनुसार उसे उसी रुप में ढालें परन्तु अपने पुरातन शिक्षा प्रणाली से भी प्रेरणा लें जिससे उसकी उपयोगिता और बढ़ जाये। शिक्षा का ऐसा स्वरुप हो जो समाज को नयी दिशा दिखाये और युवा पीढ़ी को देश की धरोहर के रुप में तैयार करें एवम् उसे एक भैतिक संसाधन के रु‍प में विकसित करें। छात्र को आध्यात्मिक विश्व से भी जोड़ा जाये जिससे उसमें संस्कारों को पूर्णतः विकसित करने में सहायता मिलें। शिक्षकों को भी प्राचीन आचार्यों, गुरुओं की भांति मातृत्व्, वात्सल्यभाव, सदाचारी, आध्यात्मिक, विभिन्न विद्याओं में पारंगत, कर्तव्यनिष्ठ, बहुभाशाविद् आदि गुणों से युक्त होना चहिए तभी वे अपना श्रेष्ठम् योगदान मनुश्य निर्माण में दे सकते हैं।

इन्ही उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही भारत में नयी शिक्षा नीति 2020 में लागू की गयी। इस नयी शिक्षा नीति का मसौदा पूर्व इसरो प्रमुख के कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में विशेषज्ञों की एक समिति ने तैयार किया है। नई शिक्षा नीति के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं:–

1. नई शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा पर घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत खर्च किया जायगा जो कि अभी तक 4.43 प्रतिशत है।
2. अब पांचवीं कक्षा तक की शिक्षा मातृभाषा में होगी।
3. मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है।
4. लॉ और मेडिकल एजूकेशन को छोडकर समस्त उच्च शिक्षा के लिए एक एकल निकाय के रुप में भारत उच्च शिक्षा आयोग का गठन किया जायेगा।
5. छठी क्लास से वोकेशनल कोर्स शुरु किये जायेंगे। जो छात्र इंटर्नशिप करने को इच्छुक होंगे वें छठी कक्षा के बाद से ही कर सकेंगे।
6. ई0 पाठ्यक्रम को बढावा देने के लिये वर्चुअल लैब विकसित की जायेगी।
7. वर्श 2030 तक उच्च शिक्षा में GER (Gross Enrolment Ratio) 50: का लक्ष्य है जोकि वर्श 2018 में 26.3: था।
8. नयी शिक्षा नीति 2020 का महत्वपूर्ण पाइंट मल्टीपल एन्ट्री और एग्जिट सिस्टम में एक साल के बाद पढाई छोडने के बाद सर्टिफिकेट, दो साल के बाद डिप्लोमा और तीन–चार साल के बाद पढाई छोडने पर डिग्री मिल जायेगी, इससे देश में ड्रॉपआउट रेश्यो कम होगा।
9. नई शिक्षा नीति में छात्र को कोई कोर्स बीच में छोडकर दूसरे कोर्स में प्रवेश लेने की अनुमति होगी। एवं उसे पूरा करने के बाद बाद में पहले वाले कोर्स को भी जारी रख सकता है।
10. अभी सेंट्रल यूनिवर्सिटीज, डीम्ड यूनिवर्सिटीज और स्टैंडअलोन इंस्टिट्यूशन्स के लिये अलग–अलग नियम है। नई एजूकेशन पॉलिसी 2020 में सभी के लिये समान नियम होंगे।
11. शोध और अनुसंधान को बढावा देने के लिये (NRF) नेशनल रिसर्च फाउंडेशन की स्थापना की जायेगी यह स्वतंत्र रुप से सरकार द्वारा, एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा शासित होगा और बडे प्रोजेक्टों को फाइनेंस करेगा।

निष्कर्षतः नई शिक्षा नीति के ये कुछ महत्वपूर्ण बिंदु हैं जिससे देश में रोजगारपरक शिक्षा को बढावा मिल सके एवम् रटकर पढने की संस्कृति से बच्चों को छुटकारा मिल सके। वर्तमान शिक्षा प्रणाली अपने जिस उद्देश्य के आधार पर लागू हुई जरुरत है वह अपने उद्देश्य में सफल हो और छात्रों के भविश्य को संवारा जा सके यद्यपि समय–समय पर शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन किये जाते रहे हैं

परन्तु कही न कहीं उन परिवर्तनों का पूरा लाभ नही मिल पाता है। यदि शिक्षक का कर्तव्य छात्रों का सर्वांगीण विकास करना है तो शिक्षा प्रणाली का भी कर्तव्य है कि वह छात्रों के सर्वांगीण विकास में अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह निभाये आज का विद्यार्थी जीवन प्राचीनकाल के विद्यार्थी जीवन से एकदम भिन्न है।

डॉ0 मन्जू गर्ग
प्राचार्या
हिन्दू महिला महाविद्यालय,
शामली
पिन–247776
ई0मेल0–mgarg6476@gmail.com

28

रामवृक्ष बेनीपुरी के नाटकों में ग्रामीण जीवन और परिवेश

डॉ0 पायल कुमारी

सारांश :

संस्कृत साहित्य में नाटकों की सुदीर्घ समृद्ध और व्यवस्थित परम्परा रही है। मास, कालिदास भवभूति, आदि नाटककारों ने अपनी प्रतिभापूर्ण शक्ति और कला द्वारा नाटकीय क्षेत्र में अतिशय अभिवृद्धि की। हिन्दी में नाटकों का विकास यद्यपि आधुनिक काल में हुआ है, लेकिन उसकी परम्परागत चेतना संस्कृत से संबद्ध है। वीरगाथा काल, भक्तिकाल, और रीतिकाल की परिस्थितियाँ गद्य के विकास के अनुकूल नहीं थी, फलतः नाटकों का लेखन उक्त काल–खण्डों में नहीं हो सका।

हिन्दी में नाटकों का समुचित विकास भारतेन्दु के साहित्य क्षेत्र में आने के पश्चात ही होता है। भारतेन्दु–युग से पूर्व जिन नाटकों का प्रणयन किया गया उन नाटकों का नाट्य कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्व नहीं है। इन नाटकों में प्राणचन्द चौहान का 'रामायण महानाटक' देव कवि का 'देवमाया प्रपंच,' हृदयराम का हनुमन्नाटक, बनारसी दास का 'समयसार नाटक' विश्वनाथसिंह का 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक उल्लेखनीय है। इन प्राचीन नाटकों में नाटकीय तत्त्वों की रक्षा भी नहीं हुई है। भारतेन्दु के पिता गिरिधरदास कृत 'नहुष' नाटक हिन्दी का पहला नाटक स्वीकार किया जाता है, जिसकी रचना 1859 ई. में हुई। लेकिन कुछ विद्वानों ने विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित 'आनन्द रघुनन्दन' को हिन्दी का पहला नाटक स्वीकार किया है। उक्त दोनों नाटकों की रचना ब्रजभाषा में ही हुई है। 1863 ई में राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास के शकुन्तला नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया। इसका गद्य भाग खड़ी बोली में और पद्य भाग बजभाषा में अनुदित है।

हिन्दी नाटकों के जनक के रूप में मारतेन्दु की ख्याति रही है, जिन्होंने चौदह नाटकों का लेखन किया इनमें से कुछ तो अनूदित हैं और कुछ मौलिक। इन्होंने 'विद्यासागर' का बंगला से, 'मुदाराक्षस' का संस्कृत से और 'कर्पूर मंजरी' का प्राकृत से अनुवाद किया है। इनके मौलिक नाटकों में भारत दुर्दशा, सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली. अंधेर नगरी, नीलदेवी, भारत जननी, वैदिकी हिसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम् आदि उल्लेख्य हैं। इन नाटकों में देश और समाज की तत्कालीन दशा का यथार्थ चित्र अंकित है। देशभक्ति और समाज सुधार के अतिरिक्त उन्होंने पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषयों को भी अपने नाटकों का आधार बनाया। भारतेन्दु के साथ–साथ उनके समकालीन लेखकों का भी नाटक के क्षेत्र में अप्रतिम योगदान रहा है।

भारतेन्दु–काल के पश्चात् हिन्दी नाटकों का विकास जयशंकर प्रसाद–काल में हुआ इन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों की रचना द्वारा नाटकों के स्तर को उन्नत बनाने की भरपूर कोशिश की। अपनी प्रतिभाशक्ति और भावुकतामयी कल्पना द्वारा उन्होंने महाभारत काल से लेकर हर्षवर्द्धन काल तक के इतिहास के धुंधले पृष्ठों पर प्रकाश डालते हुए इस युग में बिखरी हुई भारतीय संस्कृति के मनोरम और हृदयग्राही चित्र अंकित किये हैं। उनके नाटकों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय विद्यमान है। प्रसाद के समकालीन नाटककारों की भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय भूमिका रही है।

जयशंकर प्रसाद के पश्चात् नाटकों के लेखन की क्रिया गतिशील रही। लक्ष्मी नारायण सिंह ने मुख्यतः समस्या प्रधान नाटकों की रचना की उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। उदयशंकर भट्ट ने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक कथानकों को अपने नाटकों का विषय बनाया है। हिन्दी के आधुनिक नाटककारों में सेठ गोविन्द दास का विशिष्ट स्थान है। उनके नाटकों का क्षेत्र अतीव व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक विषयों को अपने नाटकों में स्थान दिया है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने सामाजिक विषयों को अपने नाटकों का आधार बनाया। इन नाटककारों के अतिरिक्त हिन्दी नाटककारों में रामकुमार वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, जी. पी. श्रीवास्तव, विष्णु प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

आजादी के बाद के नाटककारों में बेनीपुरी जी का स्थान अत्युच्च है। प्रारम्भिक दौर में, उनकी दृष्टि बाल–साहित्य की रचना की ओर अग्रसर रही, लेकिन जेल–जीवन के दौरान उन्होंने नाट्य साहित्य की समृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया। इनकी नाट्य कृतियों का सृजन 1947 से 1955 ई. के मध्य हुआ है।

बेनीपुरी जी के नाट्य–साहित्य की ओर दृष्टि ले जाने पर जानकारी होती है कि ग्रामीण जीवन और परिवेश उनके नाटकों के प्राण हैं। ग्राम जीवन की अभिव्यंजना के कारण ही उनका नाट्य–साहित्य अधिक जीवन्त और प्राणवान हो सका है। बेनीपुरी जी के मन–प्राणों में ग्रामीण जीवन पूरी तरह से रचा–बसा हुआ है, फलतः उनके नाटकों में इसकी स्पष्टतः झलक उपलब्ध होती है। बेनीपुरी के नाटक यद्यपि ऐतिहासिक है, फिर भी उनमें ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति सशक्त रूप में हुई है। 'अम्बपाली' उनकी प्रथम

नाट्य कृति है। इसके प्रारम्भ में ही ग्रामीण जीवन और परिवेश की स्पष्टतः झलक उपलब्ध होती है। इस नाट्य कृति में उन्होंने वैशाली की राजनर्तकी अम्बपाली पर मगध सम्राट अजातशत्रु के मर मिटने की कथा का वर्णन किया है।

उक्त नाटक का प्रारम्भ ही ग्रामीण वातावरण से होता है। अम्बपाली नाटक के प्रारम्भ में ही अपनी एक सहेली मधूलिका के साथ आम्रकानन में उपस्थित होती है, जहाँ अरूणध्वज का भी आगमन होता है–एक विस्तृत सघन अमराई, आम की डाल–डाल मंजरियों से लदी झुकी और जिन पर गुंजन कर रही वसंती हवा, जिनसे खिलवाड़ कर रही–आम के पेड़ों के बीच की जमीन में सरसों की फूली हुई क्यारियाँ–वृक्षों से लिपटी लताओं से जहाँ–तहाँ बन गयी कुंजे. सूरज की किरणों से अभी सोना नहीं आया है. मंजरियों पतों, फलों पर ओस की बूँदे उसके स्पर्श से चमचम कर रही–चिड़ियों की चहचह में दूर से सुनाई पड़ने वाली कोयल की कुहू –अमरोई के मध्य में फैला हुआ आम का वृक्ष।[1]

दोनों किशोरियों– अम्बपाली और मधूलिका के मध्य रसमय और प्रेममय बादचीत होती है, जहाँ ग्रामीण जीवन और परिवेश का अभिव्यंजन होता है। इतना ही नहीं, आम्रपाली नाटक के प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में भी ग्रामीण वातावरण का मनमोहक चित्रण प्राप्त होती है–वेगवती नदी की पतली धारा के किनारे बसा। आनन्द ग्राम। फूस के छाए छोटे–छोटे घर। हर घर के आगे बाँस से बनाए चौकोर बाड़े जिनके प्रदेश–द्वार पर बाँस के ही तोरण– बाँड़ों और तोरणों पर लिपटी हरी–हरी लताएं फूलों से लदीं–लदीं इन बाड़ो में छोटे–छोटे बछड़े बंधे।[2] इस घर का आँगन लिपा पुता, स्वच्छ, निर्मल आँगन के एक कोने में एक चबूतरा. जिस पर कुछ फूल और तुलसी के पौधे, बीच आंगन में धूप में बैठी एक बुढ़िया चरखा कात रही, सामने बरामदे में एक किशोरी फूलों की माला गूँथ रही और गुनगुना रही।[3]

'विजेता' बेनीपुरी जी का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है। इसमें मगध सम्राट चन्द्रगुप्त की कथा वर्णित है। ऐतिहासिक नाटक होने के बावजूद नाटक के प्रारम्भ में ही ग्रामीण जीवन की कुछ झलकियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। इसकी जानकारी तब होती है जब अपने बालपन में चन्द्रगुप्त अपने मित्रों के साथ पहाड़ी पर लक्ष्य साध रहा होता है–''छोटी सी पहाड़ी नीचे घनघोर जंगल इस घनघोर जंगल में एक–छोटा सा खुला स्थान। उस खुले स्थान में एक युवक खड़ा है। सामने की पहाड़ी के पार्श्व भाग पर एक गोल चिन्ह बना हुआ है जिसके इधर–उधर कितने भाले लटकते दीख पड़ते हैं। उसके दाहिनी ओर पहाड़ी के सहारे कई भाले खडे किये गये हैं वहीं एक धनुष और तीरों से भरा हुआ एक तरकस लटक रहे हैं।[4]

चन्द्रगुप्त और चाणक्य के बीच लम्बे समय तक संवाद गतिशील रहता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त को उसके बचपन की बात स्मरण दिलाना नहीं भूलता। वह कहता है– ''मुझे उस दिन का स्मरण है जब एक दिन ब्राह्मण अपने सपनों में पागल बना आर्यावर्त के कोने–कोने में घूम रहा था– गाँवों पर ढूढता था, नगरों पर दूढ़ता था, पगडंडियों पर दूढ़ता था, राजपथों पर दूढ़ता था, दूढता था एक ऐसा नायक–लोकनायक जो उसके सपनों को सत्य का आधार दे सके। फिर अचानक उसे एक दिन एक बच्चा दिखाई पड़ता है। हाँ वही बच्चा था। वह एक बच्चा अनेक बच्चों के बीच। अनेक चरवाहे बच्चों के बीच ऊँचे टीले पर खड़ा वह आदेश दे रहा था– देखों वह शत्रु का दुर्ग है, हमें उस पर चढ़ाई करनी है, उस पर अधिकार करना है। तुमलोग चार टुकड़ियों में बैटो।''[5]

'तथागत' नाटक में नाटककार ने गौतम बुद्ध के जन्म से लेकर गृहत्याग एवं बुद्ध बनकर कपिलवस्तु पधारने तक की कथा का वर्णन किया गया है। यद्यपि इस रचना में ग्रामीण परिवेश के बहुत अधिक स्थल परिलक्षित नहीं होते, तथापि नाटक के प्रारम्भ में इसकी अभिव्यजना हुई है। लुम्बिनी वन का दृश्य मनमोहक है, जहाँ बुद्ध की माता मायावती एवं शुद्धोदन के बीच हास–परिहास से समस्त वातावारण मधुमय हो गया है–मायावती–कितना सुन्दर लग रहा है. आर्य।

शुद्धोदन– हाँ बहुत सुन्दर ये पेड़ ये लताएँ, ये पौधे, ये मंजरियाँ, ये कलियाँ, ये फूल, सुन्दर, अति सुन्दर गाया। मायावती– इच्छा होती है कुछ दिन यही रहूँ, आर्य। नगर–नगर देखते–देखते आँखें अब ऊब चुकी हैं।[6]

' नया समाज' बेनीपुरी रचित एकांकी है। इसमें कहीं–कहीं ग्रागीण जीवन की अभिव्यंजना दृष्टिगत होती है। इसके प्रथम दृश्य में ही ग्रामीण परिवेश उपलब्ध हो जाता है। पर्दा उठते ही एक करूण दृश्य आँखों को नम कर देती है। मंच की ओर से एक बूढ़ा किसान दुबला–पतला अस्थि कंकाल, कमर में सिर्फ लगोटी लगाए, कंधे पर कुदाल रखे रंगमंच पर आता है। उसकी बगल में नंगधड़ंग एक छोटा सा बच्चा है। एक मुस्टंड आदमी हाथ में लाठी लिए उसके पीछे है, यह किसान को धक्के देता है, धूँसों से पीटता है। बच्चा चीखता है। बच्चे को झटका देकर मंच की बगल में फेंक देता है। बच्चे का चीत्कार सुनाई पड़ता है। बूढ़ा किसान उस मुस्टंड की ओर चिनगारियाँ भरी आँखों से देखता है। मुस्टड आदमी उसके सिर पर एक लाठी जमाता है।[7]

मंच की दूसरी ओर एक फटी हाफ कमीज पहने एक नौजवान मजदूर रूखा–सूखा चेहरा लिए मंच पर आता है। उसकी आँखें घँसी है, उसकी कमर झुकी है उसके पीछे खाकी कोट पैट पहने मिल का चिपका, जमादार है। वह छड़ी से खेदता, ठेलता उस मजदूर को लिए जा रहा है। उसके पीछे मजदूर की नवयुवती पत्नी है, फटी–फटी साड़ी पहने। उसके हाथ में टूटी टोकरी है। यह लड़खड़ाती., थरथराती. उसाँसे लेती, उनके पीछे–पीछे जाती है।[8]

एकाकी की चौथे दृश्य में भी ग्राम जीवन की झाँकी

उपलब्ध होती है–विनय की झोपड़ी। वह एक पुस्तक पढ रहा है कि गाँव का किसान बूढ़ा गरमू लाठी हॉकते उसके सामने आता है कैलाश पुस्तक रख देता है। उसी समय रहमान दूसरी ओर से आता है, चीनी मिल का एक मजदूर। तीनों में बाते होती है।[९]

निष्कर्ष

इन विविध दृश्यों के अवलोकन के पश्चात् सार में यह कहना अधिक सार्थक होगा कि बेनीपुरी जी का समस्त नाट्यकृतियों में ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। ग्रामीण परिवेश के कारण ही उनके रचनाओं की महत्ता अन्य समकालीन लेखकों की अपेक्षा अधिक है। ग्राम परिवेश के चित्रण में बेनीपुरी जी का स्थान अत्युच्च और अद्वितीय है।

संदर्भ संकेत

1.	अम्बपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी,	प्रथम अक,	पृष्ठ–23
2.	अम्बपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी,	प्रथम अक,	पृष्ठ –29
3.	अम्बपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी,	प्रथम अंक,	पृष्ठ –30
4.	विजेता, रामवृक्ष बेनीपुरी,	प्रथम अंक,	पृष्ठ –104
5.	विजेता, रामवृक्ष बेनीपुरी,	प्रथम अंक,	पृष्ठ –105
6.	तथागत, रामवृक्ष बेनीपुरी,	प्रथम अंक,	पृष्ठ –139
7.	नया समाज, रामवृक्ष बेनीपुरी		पृष्ठ –147
8.	नया समाज, रामवृक्ष बेनीपुरी		पृष्ठ –148
9.	नया समाज, रामवृक्ष बेनीपुरी,		पृष्ठ–249

डॉ0 पायल कुमारी
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
संजय गाँधी मेमोरियल
महाविद्यालय, पंडरा, राँची।

29

मानस में असुर पात्र और तुलसी की मौलिकता

डॉ.रुचिका ढींगरा

सारांश :

मानसकार ने अपनी महाकाव्यात्मक कृति में मुख्यतः सात्विकता की विजय और असात्विकता का अंततः पराजित होते दिखाया है। उन्होंने सज्जन स्तुति से पूर्व खलों की स्तुति कर उन्हें अपनी रचना की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सहयोग की कामना की है। उनके पुरुष और नारी दोनों पात्रों में मानवेत्तर/ आसुरी वृति मिलती है। मानस का उत्तरकांड असंतों की तामसिक वृतियों का परिचय देता है। ऐसे तामसिक वृति वालों का नाश कर देवत्व के गुणों की स्थापना तुलसी के राम अवतार का मुख्य उददेश्य है। तुलसी ने वाल्मीकि रामायण, आध्यात्म रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों का अवलंब लिया है। रामजन्म से लेकर उनके सिंहासनारुढ़ होने तक की मूल कथा के अतिरिक्त अनेक लघु प्रसंग छोटी–छोटी प्यस्विनी सदश अन्ततः मूल राम कथा रुपी प्रशांत में निमग्र हो जाते हैं। पात्रों के चयन में परंपरागत निकष को अपनाया गया है। मुख्य पात्र् कृति में आद्यंत विद्यमान, फलागम् के भोक्ता, विरोधियों पर विजयी और जनमानस के दष्टिकोण एवं वैचारिकता को प्रभावित करते हैं। गौण पात्र कहीं मुख्य पात्र के सहायक, तो कहीं विरोधी हैं। मुख्य कथा के विकास में उनका विशिष्ट योगदान नहीं होता। पात्रों को उनकी प्रवृति, मूल्यों, मनोवैज्ञानिक तथा वंशाधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। एक ही पात्र एकाधिक वर्गो की चरित्रिक विशेषताओं से संयुक्त है। राम तथा उनसे संबंधित सभी प्राणियों में सद्भावना और रावण तथा उसके पक्षधरों में असत भाव का प्राधान्य मिलता है किन्तु विभीषण, मंदोदरी, आदि में सद्भाव प्रमुख है। मंथरा, कैकई शूपर्णखा आदि पात्रों में असत् भाव विद्यमान है। मनुष्य अपने विकास के तीन सोपानों में क्रमशः आहार, निद्रा भय, मैथुन को ही मूलभूत सुख मानने के कारण आत्म केंद्रित, ष्शतुल्य स्थिति से उत्तरोत्तर उपर उठता है। देवतुल्य प्राणियों का वर्तमान संघर्षमय और अभाव युक्त होता है तुलसी ने लोकहितकारी राम एवं भरत के विपरीत भौतिकता संपन्न, असंतुष्ट, अहंकारी रावण और उसके संबंधियों व पक्षधरों का पराभव चित्रित किया है। कुछ पात्र परिस्थितिनुरुप परिवर्तित प्रवृतियों को अपनाने है जैसे राम के प्रति अतिशय प्रेम से युक्त कैकयी मंथरा द्वारा भड़कायी जाने पर त्रिया चरित्र को अपनाती है वह दशरथ मृत्यु का कारण बनता हैं और भरत उस राज्य को त्याग नंदीग्राम में रहने लगते हैं। कैकयी भरत–मिलाप प्रसंग में राम की विनय और क्षमाशीलता उसे स्वयं से विरक्त करती है। निषादराज प्रारंभ में राम और लक्षमण को लेकर संदेह ग्रस्त हैं किंतु अंत में राम के अनन्य भक्त बन जाते हैं। वन में कोल, किरात, वानर, भालू जातियॉ राम के संपर्क में आकर अपनी प्रवृतियों को त्याग देती है। समुद्रका अहंकार राम के आगे नहीं टिकता। असुर विभीषण राम के प्रति अनन्य भक्ति रखते हैं। स्थिर और गतिशील पात्र वर्गगत और व्यक्तिगत पात्रों का ही रुप हैं। रामचरितमानस में ग्राम वधुएं, जनजातियां,मंदोदरी मेघनाथ, रावण वर्गगत तथा कैकयी, मंथरा, विभीषण व्यक्तिगत गतिशील पात्र हैं।

जीवन के प्रति किसी विशिष्ट पद्वति, दर्शन, लक्ष्य को अपनाना जीवन मूल्य होता है। इद, अहम और पराहम् मानव के व्यक्तित्व संगठन के तीन कारक है। इदं का मानव के आग्रह आवेगशील और बौद्विक रुप से संबंध होता है अतः मनुष्य को बहिर्मुखी बनाता है। अहम् यथार्थ से परिचालित चिंतन व विवके युक्त होने से इदं को संयमित रखता है। पराहम को संबंध आदर्श तत्वों से होता है, यह इदं और अहम् दोनों को नियंत्रित रखता है और मनुष्य को अंतर्मुखी बनाता है। मानस में राम पक्ष के अधिकांश पात्र पराहम् तथा रावण के इदं से युक्त हैं। कैकयी, मंथरा, विभीषण आदि की स्थिति मध्य अहम में है।

सामाजिक–पारिवारिक परिवेश व्यक्तित्व का गठन करते हैं। मानस में दशरथ, जनक, रावण,निषाद राज के वंशों के अतिरिक्त ऋषि, मुनियों का भी वंश मिलता है। दशरथ के वंशज कर्मठ, शौर्य और पराक्रम से युक्त हैं (कैकयी, मंथरा अपवाद है)जनक के वंशज आध्यात्मिक मूल्यों से संयुक्त समरस और शांत प्रवृति के हैं। रावण तथा उससे संबंधित व्यक्तियों (खरद्रूषण, मेघनाथ, कुंभकरण,शूर्पणखा) में सत्प्रवृत्तियों, नैतिकता, आध्याम्मिकता का अभाव है। बाली तथा निषादराज गुह अर्धसभ्य वन्य जाति के शासक है। वानर, भालुओं, जटायु गरुड़, काकभुशुंडि आदि ष्शु पक्षियों में नैतिकता,सहजता, सरलता मिलती है। अगस्तय, भारद्वाज, अनुसूया आदि ऋषि पात्र हैं जिनमें सात्विक प्रवृति अधिक है।

असुर शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ प्राणवन्त, प्राण शक्ति से संपन्न है। शंकराचार्य प्राणों में रमण करने के कारण इन्हें असुर मानते है। इन्हें राक्षस भी कहा गया। विष्णु पुराणनुसार ये दक्ष पुत्री खशा और कश्यप ऋषि के पुत्र थे। रामायणानुसार ब्रह्मा ने जल की सृष्टि कर इन्हें उसकी रक्षार्थ उत्पन्न किया था। रावण ने रक्षाम्: कहकर अपने को समुद्र का रक्षक घोषित किया और राक्षस जाति का संगठन किया तथा रक्ष संस्कृति का अध्यक् बना।

तुलसीदास ने राम का विरोध करने वाले पात्रों को (कैकयी, मंथरा,इंद्र पुत्र जयन्त, समुद) दुष्ट असंगत, असुर,पापी बताते हुए काम, क्रोध, मद, लोभ से युक्त, परिवार विरोधी,वेदों ब्राह्मणों के निंदक पर स्त्री गमन असत्यवादी माना है

''काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहूं सों।।
झूठइ लेना, झुठइ देना।। झूठइ भोजन झूठ चबैना।।
बेलहिं मधुर वचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि ह्रदय कठोरा।।
पर द्रोही पर दार रत पर ध पर अपवाद।
ते नर पांवर पापमय देह धरें मनुजाद।।2

कलयुग में ऐसे खल गुणातीत होते हैं। सत्संगति से उनमें परिवर्तन संभावित है किंतु मूल आंतरिक मलीनता कभी नहीं जाती । इनके लिए विनय, प्रेम,औदार्य, ज्ञान, पज्ञा, वैराग्य का प्रबोध निसार होता है। तुलसी में संतों और असंतों दुष्टों कें अंतर को स्पष्ट किया है

''बंदउं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।।

निगमागम सम्मत ब्रह्मरुप राम ऐसे खलों से पृथ्वी और साधुओं के त्राण, धर्म की स्थापनार्थ दशरथ पुत्र राम के रुप में अवतरित होते हैं।

मानस में नियोजित असुर पात्र अपनी भूमिकानुरुप प्रमुख, गौण और नारी वर्गो में विभक्त किए जा सकते हैं। इस कृति में पंद्रह असुर पुरुष पात्र हैं। रावण, कुंभकरण, मेघनाथ, मारीच, विभीषण, खरदूषण आदि प्रमुख तथा माल्यवंत, अक्षय कुमार, प्रहस्त, अकंपन, कालकेतु, कबंध, सुबाहु गौण पात्र है। ये अवसरानुकूल रावण के दुष्कर्मो में सहायक तथा उत्कट आसुरी प्रवृतियों से युक्त है। रावण (पुलस्त्य पुत्र विश्रवा और राक्षस सुमाली की पुत्री कैकयी पुत्र) विद्या, बुद्वि, बल से युक्त रावण मय दानव की पुत्री मंदोदरी का स्वामी और मेघनाद का पिता हैं। माता के राक्षसी रक्त के कारण उसमें अहंकार, असंतोष, उग्रता, काम, क्रोध की प्रचंडता मिलती है। तुलसीदास ने रावण को जय, हिरण्याक्ष, जालंधर, शिवगण नंदक व राजा प्रताप भानु के अवतार रुप में लिपिबद्वकिया है तथा प्रत्येक स्थिति में स्वयं भगवान उसके उद्वारक बने।

विष्णु के द्वारपाल जय–विजय को सनकादि ब्राह्वाणों द्वारा शापित किए जाने पर हिरयकशिपु और हिरण्याक्ष को तापसी शरीर धारण करना पड़ा था। इनका उद्वार भगवान ने क्रमशः वराह और नरसिंह रुप में किया। प्रतापी और वीर असुर जालंधर देवताओं को पराजित करने के पश्चात अपनी पतिव्रता पत्नी के बल के कारण शिव द्वारा भी अजेय बना रहा। भगवान ने उसकी पत्नी वृन्दा के सतीत्व का हरण कर जालंधर को परास्त किया। जालंधर ही कालांतर में रावण हुआ।

विष्णु भगवान ने नारद मुनि को रुपसी राजकन्या से विवाह करने को आतुर देख उन्हें वानर रुप प्रदान किया। नारद को (हरि) वानर रुप में देख शिवगण हंस पड़े। नारद के शाप के कारण रावण और कुम्भकर्ण बने शिवगणों का विष्णु ने राम रुप में उद्वार किया।

नरेश सत्यकेतु के दो पुत्र प्रतापभानु और अरिमर्दन थे। उनके शत्रु ने तपस्वी वेश धारण कर ब्राह्वाणों को सामिष भोजन परोस दिया। मर्यादा प्रिय प्रताप भानु को अपने सहज विश्वास के कारण निर्दोष होते हुए भी शाप ग्रस्त हो रावण रुप में जन्म लेना पड़ा। यहां रावण को शिवगण नंदक और प्रतापभानु रुप में चित्रित करना मानसकार की मौलिकता है। तुलसी जी के अनुसार पूर्व जन्म में रावण को नारद से ऐश्वर्यशाली , बलशाली, विश्व विजेता होने के साथ यह आर्शीवाद भी मिला था कि उसकी मृत्यु राम द्वारा होगी जिससे उसे आवागमन के चक्र से छुटकारा और मोक्ष प्राप्ति होगी।

''उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप।
त्दपि महीसुर श्राप बस भए सकल अधरुप।।

श्राम भक्त तुलसी ने रामचरितमानस में रावण वंश ,जन्म, उसके दिग्विजय जैसे प्रसंगों को संक्षिप्त रुप में उदघाटित किया है। उन्होंने अंगद द्वारा रावण के रुपाकार का अंकन किया है।

''अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसे।
भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना।।

भयावह काया, दस सिर, बीस भुजाओं वाला रावण दसकंठ, दसकंधर, दशानन आदि नामों से जाना गया। रावण ने अपनी तपस्या से शिव द्वारा वानर और मनुष्य के अतिरिक्त सबसे अवध्यता का वरदान प्राप्त किया। सूर्य, चंद्रमा, वायु, कुबेर, अग्रि, यम आदि पर दिग्विजय प्राप्त क रवह उत्तरोत्तर अहंकारी और अत्याचारी होता गया। मानस में रावण यक्षों को भगा लंका पर विजय प्राप्त करने वाले वीर, पराक्रमी, कैलाश पर्वत को भुजाओं में उठाने वाले बलशाली, के रुप में वर्णित है। उसकी मृत्यु पर मंदोदरी रावण की वीरता का गुणगान करती है। तुलसी ने नल नील हनुमान, जाम्बवंत द्वारा रावण के सिर पर उछलकूद कराकर, मुक्का मार मूर्छित करवा कर चाहे उसे करुण पात्र बनाया है फिर भी वह मृत्यु को वीरतापूर्ण अंगीकार करता है। रावण की शक्ति का स्रोत उसकी मायावती शक्तियां हैं। वह सबको भ्रमित करने के लिए हनुमान, भूत, बेताल की उत्पत्ति करता है तथा राम द्वारा खंडित अपने शीश को पुनः जीवित कर लेता है। वह सीता से विवाह प्रस्ताव रखता है।

'' कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।
तब अनुचरी करउं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।। 6

रावण द्वारा अपमानित हो विभीषण को लंका छोड़नी पडती है तथा मारीच और कालनेमि भी राम द्वारा मरना उचित मान रावण की अनुचित मांगों को मानते हैं। मानस का रावण भोग, विलास, मदिरापान में डूबा रहता है। तुलसीदास ने यथास्थान उसकी योग्यता को बताया है। रावण का शिव और ब्रह्व का भक्त होना, नीतिज्ञ, मंत्रियों से मंत्रणा, हनुमान, अंगद द्वारा लंका को तहसनहस करने, उसके लिए अपशब्दों का प्रयोग करने पर भी दूत होने के कारण क्षमा करना, राम से बैर रखकर उनके हाथों मोक्ष प्राप्त करना चाहता है। सीता हरण के समय उनका म नही मन वंदन करना, प्रणय याचना के समय एक दष्टि मात्र की याचना करना, सीता को ह्रदय में धारण करना, राम द्वारा मारे जाने पर रावण के तेज का राम के मुख में समा जाना–इन्हीं बातों की ओर इशारा करते हैं किंतु प्रत्यक्षतः वह राम को तापसी कह कर अपमानित और मृत्यु के समय कहां रामु रन हतौं पचारी, कहकर उनके प्रति क्रोध प्रकट करता है। डॉ भगीरथ मिश्र का अभिमत है '' रावण में भेदभाव की भक्ति देखने को मिलती है।... .. यही भक्ति का भाव ही रावण के चरित्र में अद्भुत दढता का समावेश कर सका था जिससे िकवह कुटुम्ब का नाश होने पर भी विचलित ना हुआ और हंसता रहा। इसी ने ..... राम को उसके प्रति बैर भाव से प्रेरित किया और राम ने ना केवल दर्शन दिए वरन् उसका उद्वार किया।'' 7

कुंभकरण विशालकाय, राजनीति विशारद था और मांस मदिरा का सेवन कर छहः महीने तक सोता था। युद्व में उसे देख सारी सेना में खलबली मच जाती थी। उसके व्यक्तित्व,वीरता और आतंक का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कवि ने किया है। वह नील, हनुमान, अंगद,संग्रीव, लक्ष्मण, राम सभी के साथ वीरता

पूर्वक युद्वलड़ता है। रावण द्वारा राम का विरोध और सीता हरण के दुष्कृत्य से वह क्षुब्ध था। वह रामभक्त था लेकिन भाई से अपने संबंधों के कारण राम से युद्व कर गति को प्राप्त होता है।

मेघनाद रावण का जेष्ठ पुत्र अत्यंत बलशाली, पराक्रमी, एकांतप्रिय,मायावी था। जन्मते ही मेघ जैसी गर्जना करने के कारण उसे मेघनाद और इंद्र पर विजय प्राप्त करने के कारण इंद्र जीत कहा गया। अंत समय में राम लक्ष्मण को पुकारते हुए प्राण त्याग करने में उसक मुख्य उददेश्य राम की सेना को भ्रमित करना था। वह अविचलित भाव से सदैव पिता की आज्ञा का पालन करता था। डॉक्टर जगदीश नारायण अग्रवाल मेघनाथ की तुलना लक्ष्मण से करते हुए कहते हैं '' जिस प्रकार लक्ष्मण राम के अनन्य सहायक रहे हैं उसी प्रकार प्रतिनायक रावण का पुत्र मेघनाद उसकी हठवादिता में सदैव उसका सहायक रहा है। जिस प्रकार राम को लक्ष्मण की वीरता पर गर्व है उसी प्रकार मेघनाथ की वीरता पर रावण को भरोसा है। 8

माल्यवान द्वारा रावण को दिया गया सत परामर्श कि उसे सीता को लौटा देना चाहिए, उसे क्षुब्ध करता है। यह तुलसी की मौलिकता है मेघनाद, राम–लक्ष्मण की सेना को मायावी सर्पो के पाश में बांधता है। जिससे उन्हें मुक्ति नारद द्वारा भेजे गए गरुण ही दिला पाते हैं। तुलसी, वाल्मीकि के विपरीत लक्ष्मण को मेघनाथ की शक्ति से मूर्छित दिखाते हैं। मेघनाद की मृत्यु पर हनुमान और अंगद के विचारों से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि तुलसी राम भक्त थे तथापि वे मेघनाथ के शौर्य की प्रशंसा करते हैं।

''रमानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान।। 9

मानस में मारीच द्वारा ऋषि–मुनियों के यज्ञ का विध्वंस करने तथा सीता हरण प्रसंग में स्वर्ग मृग का रुप धारण कर सीता को आकृष्ट कर राम को उसका आखेट करने के लिए भेजने का वर्णन है। मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षार्थ राम की शक्ति का भुक्त भोगी होने पर वह राम के ईश्वरत्व में विश्वास करने लगता है। वह रावण को राम से विरोध ना करने की सलाह देता है। तुलसीदास वाल्मीकि से भिन्न प्राण त्याग के समय मारीच के मुख से राम नाम का उच्चरण करा कर यह सिद्व करते हैं कि उसके मन के राम के प्रति प्रेम था।

जन्मतः असुर विभीषण रामभक्त होने से तुलसी की दष्टि में भक्त हैं। महाभारत के अनुसार कुबेर ने विश्रवा के पास तीन राक्षसियों को भेजा था। उनमें पुष्पोत्कटा से रावण तथा कुंभकरण, मालिनी से विभीषण, राका के गर्भ से खर और शर्पूणखा का जन्म हुआ। 10 विभीषण की पत्नी सरमा थी और उन के त्रिजट, अनल और सरम नाम के पुत्र तथा त्रिजटा नामक पुत्री थी। मानस में विभीषण विण्णु भक्त हैं। तुलसी के नीति विशारद विभीषण जन्मतः राम भक्त हैं। लंका में रहते हुए भी वे राम भक्ति को नहीं त्यागते। वे रावण को दूत के अवध्य होने का स्मरण कराकर हनुमान के लिए किसी अन्य दंड का विधान करने के लिए कहते हैं। वे राम की महत्ता का गुणगान करने के कारण रावण द्वारा अपमानित हो राम की शरण में चले जाते हैं। राम रावण युद्व के समय वे विभीषण श्रीराम को समुद्र से रास्ता मांगने, मेघनाथ के पावन यज्ञ की पूर्ति ना होने देने, रावण वध करने के लिए उसकी नाभि कुंड में स्थित अमृत को सोखने का परामर्श देते हैं। भाई की मृत्यु विभीषण का विकल अवश्य करती है किंतु अंत में रामाज्ञा से वे लंका का राज्य स्वीकारते है, विमान से वस्त्रों–आभूषणों की वर्षा करते है और उनके साथ अयोध्या भी जाते हैं। खर और दूषण, रावण तथा शूपर्णखा के भाई थे। रामायण में ये दोनों भिन्न चरित्र हैं किंतु तुलसी ने खर दूषण के व्यक्तित्व को मिला दिया है जिससे दोनों के एक होन का भ्रम पैदा हो जाता है। लक्ष्मण द्वारा शूपर्णखा की नाक कान काटने पर वह खर दूषण के पास जाकर उन्हें ललकारती है और राम से युद्वकरने के लिए कहती है। राम युद्व कें अंत में उनका वध कर देते हैं। तुलसी ने राम द्वारा खरदूषण का वध कराकर रावण को राम के ब्रह्मत्व के प्रति आश्वत किया हैं।

गौण असुर पुरुष पात्रों में माल्यवंत,अक्षय कुमार, प्रहस्त, अकंपन,कालनेमि,कबन्ध, कालकेतु, सुबाहु आदि हैं। माल्यवंत अथवा माल्यवान (गंधर्व कन्या देववती के गर्भ से उत्पन्न सुकेश का पुत्र)रावण का नाना और लंका का वृद्व श्रेष्ठ मंत्री था। राक्षस होने पर भी उसमें सात्विक वृत्तियों का प्राधान्य था। वह रावण के राम विरोधी आचरण का विरोध करता है और विभीषण की भाति उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करता है। अक्षय कुमार रावण और मंदोदरी का आज्ञाकारी पुत्र हैं। हनुमान को लंका तहसनहस करने से रोकन वह हनुमान द्वारा मारा जाता है। तुलसी ने इसके विषय में अत्यंत संक्षेप में वर्णन किया है। प्रहस्त (सुमाली और केतुमति पुत्र)स्पष्ट वक्ता एवं नीति चतुर, मंत्री और सेनापति है। वह रावण को चाटुकार मंत्रियों से दूर रहने की सम्मति देता है। वाल्मीकि ने प्रहस्त को शूरवीर रावण से पूर्णतः सहमत माना है और उसका विस्तृत वर्णन किया है। इसके विपरीत तुलसी ने मात्र एक प्रसंग में उसे नीतिज्ञ, राम के ब्रहत्व में विश्वास करनेवाला, दूरदर्शी व रावण द्वारा प्रताडित दिखाया है। युद्व में नील द्वारा उसका वध होता है। अकंपन (सुमाली और केतुमति पुत्र) रावण का कुशल सेनापति, पराक्रमी, शूरवीर एवं सुयोग्य दूत, संपूर्ण अस्त शस्त्र ज्ञाता मायावी, बलशाली है। प्रहस्त, विकट, धूम्राक्ष, सुपाश्र इसके भाई और राका, पुष्पोत्कटा कैकसी, कुंभीनसी बहनें थीं। वाल्मीकि ने तुलसी की अपेक्षा उसका वर्णन विस्तार से किया है। वही रावण को राम वध के एकमात्र उपाय के रुप मे सीता हरण की सलाह देता है तथा युद्वके लिए उकसाता है। वह अपनी मायावी बुद्विसे वानर सेना को विचलित करता है और अंततः हनुमान द्वारा मारा जाता है। काल नेमि (रावण का मामा)को रावण, वैद्य सुषेण के अनुसार मुर्छित लक्ष्मण के लिए भेजता है। रहस्य खुलत ही ये हनुमान द्वारा मारे जाते हैं। तुलसी ने इसके रावण संबंध के विषय में न बताकर इसे राक्षस बताया जो रावणाज्ञा से हनुमान को मारने आता है लेकिन राम द्वारा उद्वार किए जाने की आकांक्षा से रावण का सहयोग करते हुए अंततः मारा जाता है। कश्यप व दनु पुत्र (पूर्व जन्म में विश्रवासु गंधर्व) अष्टावक्र मुनि के शाप से शापित हो दण्डकारण्य में रहता है। वनवास काल में राम लक्ष्मण का मार्ग रोकने पर राम लक्ष्मण क्रमशः इसका दांया बांया हाथ काट देते हैं। वाल्मीकि की तुलना में तुलसी ने इसके श्राप और विकृत रुप की चर्चा संक्षेप में की है। उन्होंने उसके द्वारा राम को शबरी के आश्रम में जाने, सुग्रीव से मित्रता करने का परामर्श भी नही दिखलाया। राम अनुरागी होने के कारण, सदति पाने वाला कबंध राम द्वारा दाह संस्कार की अंतिम इच्छा भी नहीं करता। विराघ (जम– शतहुदा पुत्र) बलवान और तपस्वी था। इसने कुबेर के शाप के कारण राक्षस योनि प्राप्तकी थी। इसका वर्णन भी तुलसी ने संकेतात्मक

रुप में किया है। मानस मे अत्रि ऋषि की आज्ञानुसार सम्मुख आते ही राम उसका वध कर उसे शाप मुक्त कर देते हैं। वाल्मीकि के विपरीत तुलसी ने विरोध के पूर्व जन्म के विषय में और राम, लक्ष्मण, सीता के साथ उसके अभद्र व्यवहार के विषय में कोई संकेत नहीं दिया है। ताड़का पुत्र सुबह विश्वमित्र के यज्ञ में बाधा डालने के कारण राम द्वारा मारा जाता है। वाल्मीकि और तुलसी दोनों ने इस प्रसंग का उल्लेख किया है। मानस में ये पात्र शाप के कारण असुर बने थे अतः तुलसी ने राम द्वारा इन का वध करा कर उन्हें मुक्ति प्रदान कराई।

असुर नारी पात्र भी प्रमुख और गौण वर्गो में राम कथा को अभीप्सित मोड़ देकर विकसित करते हैं। शुपर्णखा राक्षसों के संहार और राम के रामत्व की प्रतिष्ठा का कारण बनती हैं। रावण अनुजा शूपर्णखा अतिशय कामुक, दुष्ट, विकृत मानसिकता वाली, कुशल राजनीतिज्ञ है। वह पंचवटी में राम को देखते ही उनसे प्रणय याचना करती है। लक्ष्मण ने राम के इंगित पर उसे नाक कान विहीन कर दिया था। शूपर्णखा द्वारा उकसाए जाने पर ही खर दूषण राम से प्रतिशोध लेने जाते हैं तथा रावण उनके वध का समाचार पाकर सीता का हरण करता है। तुलसी दासने मात्र 5 चौपाईयों में शूपर्णखा की कथा को उकेरा है किंतु वह इतनी महत्वपूर्ण पात्रा है कि उसके अभाव में राम चरित्र लोकप्रिय ना हो पाता। मंदोदरी वेदों की ज्ञाता, ज्योतिष जानने वाली, शकुन–अपशकुन पर विश्वास करने वाली, निर्भीक (मय दानव अप्सरा हेमा की पुत्री)रावण की प्रिय पत्नी तथा मेघनाद की माता थी। वह रावण के राम विरोधी रुप से सहमत नहीं थी। पति की मृत्यु से विचलित वह रावण के बल के साथ राम की कृपालुता और शीलता का वर्णन करती है। वह रावण से बार बार सीता को लौटाने का आग्रह करते हुए राम की भक्त वत्सल ता के बारे में उसे समझाती है।

मानसकार ने उसका उपदेशिका रुप अधिक उभारा है। ताड़का (सुकेतु यक्ष की पुत्री तथा जंभपुत्र सुंद की पत्नी और मारीच का मां), भयंकर राक्षसी और राम विरोधी थी। तुलसी ने उसका परिचय दो पंक्तियों में सीमित कर दिया है। विश्वामित्र की रक्षा करते हुए राम ने इस का वध किया था। सुरसा (सर्पो की माता) देवताओं के आदेशानुसार सीता की खोज में जाते हनुमान के बल बुद्विकी परीक्षा लेने के लिए राक्षसी रुप लेती है और हनुमान को उपयुक्त मानकर, आर्शीवाद देकर देव लोक चली जाती है। राम विरोधी लंकिनी (चालाक, सूक्ष्म चीजों को देखने में संक्षम)का संहार हनुमान करते हैं। वृद्वा के रुप में रामकथा में समाविष्ट त्रिजटा (विभीषण की बहन, देश शकुन शास्त्र में विशेषज्ञ) अशोक वाटिका में सीता के साथ रहती थी हनुमान के आने से पूर्व ह'ावह लंका का अमंगल देख लेती है। वह सीता को धैर्य बंधाती है और राम विजय पर विश्वास रखती है।

मानस के कतिपय पात्रों में (कैकई, मंथरा) आसुरी प्रवृति दिखाई देती है। कैकयी दशरथ की सबसे छोटी रानी, राम के वनवास की मुख्य सूत्रधार, पाठकों की उपेक्षा– घृणा का पात्र है। मानस में पुत्रेष्टि यज्ञ के परिणाम स्वरुप प्रसाद के विभाजन में सुमित्रा के साथ कैकयी का भी उल्लेख मिलता है। राम के वनवास के साथ ही कैकेई का चरित्र आकार लेने लगता है। दासी मंथरा के भडकाने पर कैकयी राजा दशरथ से राम के लिए वनवास और पुत्र भरत के लिए राजतिलक मांगती है। तुलसी ने सरस्वती द्वारा मंथरा की बुद्वि फेरने के प्रसंग को दिखाकर मंथरा को दोषमुक्त किया है। राम के अनन्य भक्त तुलसी ने कैकयी, मंथरा, जड़ समुद्र सभी असुर पात्रों को अंततः राम भक्ति में लीन दिखाया है।

1. हिन्दी विश्वकोश, संपादक धीरेंद्र वर्मा, प्रथम खंड,पृष्ठ 29
2. तुलसीदास, रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड,पृष्ठ 39 3, 4 दोहा
3. तुलसीदास रामचरित मानस बालकांड 5 2
4. तुलसीदास रामचरित मानस बालकांड 176 दोहा
5. तुलसीदास रामचरित मानस बालकांड 19 2,3
6. तुलसीदास रामचरित मानस सुंदरकांड 9, 2,3
7. भगीरथ मिश्र, तुलसी रसायन पृष्ठ 166
8. डॉक्टर जगदीश नारायण अग्रवाल रामचरितमानस और रामचंद्रिका का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठ 252
9. तुलसीदास रामचरितमानस लंकाकांड, 76 दोहा
10. श्रीमत महर्षि वेदव्यास, महाभारत,वन

डॉ.रुचिका ढींगरा

एसोसिएट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग, शिवाजी कालेज

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दूरभाष 9911146968

30

''तमस'' उपन्यास में शिल्प की दृष्टि से भाषा शैली

डॉ.प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश :

उपन्यासकार के उददेश्य की उसके जीवन दर्शन की प्रच्छन्न अभिव्यक्ति उपन्यास की सबसे बड़ी शक्ति है। उपन्यास के उददेश्य की व्याप्ति प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होती है। उपन्यास का उददेश्य आज के जीवन यथार्थ की समग्र अभिव्यक्ति है। उपन्यास का किसी भी साहित्यिक कृति में लेखक का जीवन दर्शन ही विचार एवं सम्वेदना के रुप में अभिव्यक्ति पाता है। उपन्यास एक जीवन विद्या है और उददेश्य उसका मूल पूरक तत्व है। इसीलिये उपन्यासकार अपने चारो और बिखरी जिन्दगी का दृष्टा नही होता, उसका अभिन्न अंग होता है। वह विभिन्न सामाजिक, आर्थिक,राजनीतिक परिस्थितियॉ समस्याओं से यदि अपने लिए जूझता है तो उनके प्रति अपना मिनि दृष्टिकोण भी विकसित करता है, कुछ निष्कर्ष भी निकालना है। इन्हीं निष्कषों से उसके मन मे कतिपय विशिष्ट विचारों की सृष्टि होती है जिन्हें जीवन दर्शन के रुप में वह अपने सृजन में रेखाकित करता है।

भाषा जीवन और साहित्य के बीच की अविभाज्य कड़ी है। यह सामजिक उपलब्धि और व्यक्तिगत अनुभवों एवं विचारो को समाज तक सम्प्रेषित करने का एक अनिवर्या माध्यम है। बिना भाषा के उपन्यास की कल्पना अमूर्त ही रह जाएगी व उपन्यास आत्मा को भाषा शरीर के द्वारा ही अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। सफल भाषा–शैली काव्याकरण सम्मत होना अनिवार्य है। भाषा इतनी सशक्त होनी चाहिए कि वह विचारों और भावों को सफलतापूर्वक वहन कर सके। भाषा शैली के लिए मौलिकता सर्वाधिक आवश्यक है। सहज स्वाभाविक अलंकारों के प्रयोग से भाषा की शक्ति की अभिवृदि होती है। श्रेष्ठ भाषा शैली के लिए प्रवाह तथा गति आवश्यक है– अच्छी भाषा शैली में उपयुक्त शब्दावली, विचारों की स्पष्टता , ध्वनि, सौन्दर्य, भावानुकूल विविधता उपलब्ध होती है। यह प्रसंगानुकूल, लक्षणामूलक तथा व्यंजनामूलक होती है। वे लेखक अच्छे समझे जाते है जिनकी भाषा शैली में सादगी है।

उपन्यास की मूल संवेदना कभी वर्णनात्मक ढंग से अभिव्यक्त होती है, कभी विश्लेषणात्मक उपन्यास किसी भी शैली और किसी भी भाषा में क्यों न लिखा जाए वह एक सृजन होता है और इसीलिए उस पर उपन्यासकार के व्यक्तित्व की अमिट छाप रहती है। ''कथ्य की सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से एक जीवन्त भाषा का प्रवाहत्मक, आलंकारिक, विजात्मक, प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक, नाटकीय आदि होना जरुरी है। इसके लिए भाषा–शैली का प्रभु विण्णु एवं चुस्त–दुरुस्त होना भी आवश्यक है।''

भाषा जीवन और साहित्य के बीच की अविभाज्य कड़ी है। यह सामाजिक उपलब्धि और व्यक्तिगत अनुभवों एवं विचारों को समाज तक सम्प्रेषित करने का एक अनिवार्य माध्यम है। यह कृत्रिम या निर्जिव न होकर सहज जीवन एवं प्रवाहयुक्त होती है। कृति में शैली का स्थान भी महत्वपूर्ण होता है। शैली वह साधन है जिसके द्वारा उपन्यासकार विषय को सोच सकता है। जॉच सकता है तथा उसका मूल्यांकन कर सकता है। शैली के माध्यम से उपन्यासकार अपनी वस्तु को रुप देना है। विषय वस्तु को कला रुप मे ढालने की प्रक्रिया को हॉली कहते है।

भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' में भाषा शैली में प्रवाहात्मकता ,चित्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता और भावात्मकता आदि विशेषताओं का समावेश किया है। उपन्यास की विशिष्ट पहचान है कि उन्होंने व्यवस्था की विसंगतियों को स्वीकार और प्रतिकार की स्थितियों का वर्णन किया है। उपन्यासकार ने संवादों में भी इसका प्रयोग किया है। कथा के उत्तरार्द्व में जहॉ लम्बे संवाद दिए गए है वहॉ भावात्मक आवेग उन्हें बोझिल नहीं बनने देता । इसलिए एक नाटकीय कौशल उनके इस उपन्यास में मिलता है। संवादों की भाषा पात्रानुकूल है जैसे– ओह, सुन चाचा, मीरदाद बोला, राज किसका है किसका है अग्रेज का है और किसका फौज किसकी है।
स्वादों से पात्रों के चरित्र , मन, स्थिति एवं प्रवाहत्मकता के गुणों का आभास होता है।

उपन्यास में जो प्रभावन्तिवति अथवा एकान्निाति शैली का प्रयोग किया है निश्चित ही स्वाभाविक रुप से किया है। पाक देखते है कि सत्यनाश के प्श्चात अमन सभा की गाड़ी पर आग हाथ में माइक लेकर मुरादअली बैठा हिन्दू मुस्लिम एकता का नारा लगा रहा है। वास्तविकता के संदर्भ में तब पाठक दहल जाता है क्योंकि यही वह व्यक्ति होता है जो सुअर मरवाकर के मस्जिद की सीढियों पर फेकवाता है और मानवता को लज्जित करने वाली बर्बरताओं के दृश्य पॉच दिन तक 'तमस– बनकर छाये रहते है। इस उददेश्यात्मक उपन्यास के प्रभाव को सघन बनाने के लिए उपन्यासकार ने महत्त्वपूर्ण घटनाओं को धोक–धोक कर उपस्थित किया है। धर्म परिवर्तन युद्व, भगढड, प्रभात–फेरी, दीक्षा,छेरबाजी, सुअर हत्या और संगत आदि की घटनाएँ ऐसी ही है । कृति में जीवन के सृजनात्मक नहीं, ध्वसात्मक अंश का चित्रण लअित हैं।लीना की तृप्ति मार्मिक है परन्तु पाठको का ध्यान उससे अधिक राजनीतिक दृष्टि से नंगे होने वाले रिचर्ड पर चली जाती है। हिन्दू राष्टवाद के विषाक्त प्रभावों को,किशोर बालको की मनोवैज्ञानिक दुर्बलताओं और उत्तेजनाओं को उपन्यासकार ने कुछ अतिरिक्त तीखेपन से उभारा है।

दूसरे अध्याय में कथा गॉवों में आती है। और कथा प्रवाह में बहुत बीबता आ जाती है। नगर मे राजनीतिक पैतरें बाजियों से जो प्रभाव उभरने से रह जाता है वह ग्रामाचल की दंगाग्रस्त कथा भूमियों में बहुत सहजता से उभर कर छा जाता है । उपन्यास का सारा ..... बहुत सघन, नुकीला और एकोन्मुख होकर चुभ जाता है। उपन्यास की भाषा सरल, सम्प्रेषणीय और प्रवाहमयी है। भाषा में सजीवता और रमणीयता है। वस्तुतःभीष्म जी ने जिस भाषा का प्रयोग

किया है वह व्यावहारिक, साधारण बोलचाल की और शिष्ट हिन्दी है। अशिष्ट भाषा का कही भी प्रयोग नही किया है। प्रसंग और पात्र के अनुरुप भाषा के रुप विधान की सार्मथ्य का पूर्ण परिचय उपन्यासकार ने दिया है। भाषा में दीयकता उप्पन्न करने के लिए कहीं –कहीं प्रचलित उक्तियॉ और मुहावरों का भी भीष्म खी ने प्रयोग किया है – अब हिन्दूओं के मुहल्ले में न ता कोई मुसमान रहेगा और न मुसलमानों में कोई हिन्दू। इसे पत्थर की लकीर समझों।

उपन्यासकार की भाषा इतनी सरल और अनुभव की सहज भाषा है कि पाठक को उस अनुभव में साझेदारी बना लेती है। उनकी भाषा बिना लाग–लपेट की है। शोर–शराबे वाली नरी की तरह बहती रहती है। उनके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों और जटिल से जटिल स्थितियों का अकन किया है। 'तमस' में उर्दू और पंजाबी के शब्द और मुहावरे बहुतायत से है जिससे भाषा अधिक स्वाभाविक और जीवन्त हो गयी है। इसके अलावा भाषा में उर्दू, फारसी, स्थानीय बोली, अग्रेजी के शब्द भी यत्र–तत्र दिखायी देते है। पात्रों की शिक्षा–दीक्षा तथा विजय के अनुरुप संवाद की भाषा भी प्रयुक्त हुई है। कहीं–कहीं उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया गया है। फसाद, दुरुस्त, फकीर, मुहल्ला, कस्बा, मजहबी, नफरत, अल्लाह,रहम आदि असंख्य उर्दू शब्दों का प्रयोग उपन्यास में यत्र–तत्र हुआ है। भाषा की बहुविधतासे प्रभाव व सम्प्रेषणयिता में वृद्विहुई है वर्णन में कहीं–कहीं ऑचलिकता के रंग बडे गहरे है। कथा–शिल्प की दृष्टि से कथानक की प्रस्तुतियों में यर्थाथता की पकड़ इतनी पैनी है कि देखते ही बनता है। नत्थू द्वारा सुअर मारने के प्रयास मे मूर्त विधातत्व और हरनाम सिंह और बन्तों की आत्मरक्षा के प्रयत्न मे जिज्ञासा और कुतुहल को जागृत करने की अद्भुत क्षमता है। इतने चर्चित कथा तत्व को इस आकर्षण रुप में प्रस्तुत किय जाने में निश्चय ही लेखक की कथा शिल्प सराहनीय बन गया है। क्षेत्रीय प्रभाव के कारण उर्दू फारसी बहुत हिन्दी का प्रयोग स्वाभविकता को उजागर कर एक–एक चरित्र की अमिट छाप छोड जाता है। यथा– हरनाम सिंह का अहसान अली के घर में शरण मॉगना, शरण मिलना, लस्सी पीने से हिचकतना, उसे घर से निकालने का राजो का प्रयत्न, एहसान अली का प्रयत्न और अन्त में उसे रोकना, रमजान उसे कतल करने का प्रयत्न और असफल होना, इस सारी प्रक्रिया को उपन्यासकार ने मनोवैज्ञनिक सम्मत ढंग से प्रस्तुत किया है। इससे ने केवल पात्रों के चरित्र अपने पूरे संस्कारों के साथ उद्घाटित हुए है अर्थात् विषय एवं कठोर परिस्थितियों में मानवीय आचरण का विश्वसनीय अंकन भी हुआ है।

'तमस' में प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से व्यवस्था की विसंगतियों के बीच जीते हुए मनुष्य के अनुभवों को शब्द बद्व किया है। मनोदशाओं और जीवन दशाओं के संकेतों के माध्यम से उभारने की क्षमता भीष्म की कलात्मक प्रतिभा का प्रमाण है। वे कई बार मानवीय स्थितियों को ध्वनिन करने के लिए प्रतीको का सहारा लेते है। भीष्म साहनी साम्प्रदायिक षडयन्त्रों और मनुष्य के बीच के घृणा के बीज खोने की कुटिल योजनाओं के कलुष को नत्थू की बोझिल मानसिकता के द्वारा संकेतित करते है। 'तमस' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। यह सांकतिक है तथा साथ ही सम्पूर्ण कथावृत्त को अपने अन्दर समेट लेना है। उन विशेष दिनों में शासन से लेकर शापित तक प्रत्येक व्यक्ति का मानस अन्धकार हो रहा था। पडोस, परिवार –सम्बन्ध, सभी मूल्य छिन्न भिन्न हो गये थे तथा एक मात्र संकीर्ण साम्प्रदायिकता उभर कर रह गयी थी 'वास्तव' में इसी घृणित साम्प्रदायिक मनोवृति की ओर संकेत करने के लिए रचनाकार ने इसे इतिहास का अन्धकार यानि 'तमस' नाम दिया है।

उपन्यास में नाटकीयता का पूर भी कई स्थलों पर मिलता है। 'तमस' में ऐसी घटनाओं का आयोजन हुआ है जो तनाव और उत्तेजना को निरन्तर प्रज्जवलित कर भीष्म काण्डो की सृष्टि करते है।उपन्यासकार ने छोटी से छोटी भूमिका में अधिकतर चरित्र अपनाकर नाटकीय प्रभाव पैदा करने का चमत्कार दिखाया है। एक–एक चरित्र पारदर्शी हो उठा है। घटनाओं के वर्णन में कहीं–कहीं लगताहै कि करुणा घोल दी गयी हो। दुविधाग्रसत चरित्र के रुप में नत्थू काअन्तईन्द्र अत्यधिक नाटकीय है। वस्तु संयोजन में नाटकीय तत्वोंका समावेश, अप्रत्याशित विकास चमत्कार पूर्ण उद्घाटन आदि नाटकीय सौन्दर्य का विधान रचते है। 'तमस' में संवाद बाहुल्य तो है ही किन्तु अधिक। उल्लेखनीय है उनका भी नाटकीय भूमिका मे होना– एक ही समय में वे उत्तेजित भी करते है, उत्तेजना उपशमित भी, वैर भी जगाते है और दोस्ती भी, गति भी देते है और गति को बाधित कर पुनवेग का निमित भी बनते है। 'तमस' में तनाव, उत्तेजन, संशय, विडम्बना तथा संघर्ष जैसे नाटकीय तत्व प्रबल है। अतः यह संवादात्मकता भीष्म साहनी के लिए वस्तु के सत्य तक पहुॅचने का औजार है और इसी के कारण उनमें उपन्यास में नाटकीयता का गुण मिल जाता है।

व्यंग्यात्मकता भीष्म साहनी की भाषिक सामर्थ्य को बढाती है वहीं उनकी मर्म भेदी दृष्टि का परिचय भी देती है। यह विडम्बना एक ऐसी कलात्मकता क्षमता पैदा करती है कि हम वस्तुओं चरित्रों और घटनाओं के दन्द्वको उससे कही अधिक आसानी से ज्यादा बडे अर्थ पैदा करने के सशक्त माध्यम के रुप में पाते है। चित्रात्मकता भीष्म साहनी की भाषा का विशिष्ट गुण है। भाषा की चित्रात्मकता उनके उपन्यास में कथन–सामर्थ्य में वृद्वि करती हुई उसे अधिक प्रभावी बनाने में तथा कथानुसार अनुकूल वातावरण निर्माण में सहायक बनकर आती है। हरनाम सिंह जब पग–पग पर धक्के खता हुआ घूम रहा है और उसे उसके आश्रयदाता ने भी घर से बाहर खडा कर दिया है तब उस गॉव को छोडते हुए प्रकृति के जो चित्र उभरते है वे मानों बडे जटिल ढंग से दवाबों और इन्सानियत के तकाजो को हमारे सामने मूर्तिमान कर देते है उपर चॉद चमक रहा था, जिससे सारा मैदान काले और सफेद चित्रों में बटा पड़ा था कहीं अन्धकार का पुॅज था तो कही पारे सी चमकती चॉदनी। 'तमस' के शिल्प विधान में एक प्रयोगशीलता का गुण मॉजूद है। यह प्रयोगशीलता एक हद तक भीष्म के अपने युग की प्रवृति है। भीष्म साहनी गद्य में कही कही काव्यत्व लाने की चेष्टा करते दिखयी देते है। भीष्म साहनी ने वर्णनात्मकता, आत्मकथात्मक चित्रात्मक, विम्वात्मक,व्यंग्यात्मक आदि सभी उपकरणों का समर्थ उपयोग अपने उपन्यास 'तमस' में किया है।

निष्कर्ष

उपयुक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'तमस' की भाषा ऐसी भाषा है जिसमे खुलापन है, जीवनतता है, प्रवाह है, यही भाषा विभिन्न मानवीय स्थितियों और मानसिक प्रतिकियाओं की ठीक–ठाक व्यक्त करती है। जनता की भाषा में जो एक गहनता होती है और व्यंजकता होती है उसे 'तमस'

की भाषा तीक्ष्ण यथार्थ गहन अनुभव और कलात्मक उत्कर्ष से पूरी तरह सम्पन्न है। अतः उपन्यास 'तमस' भाषा शैली के आधार पर भी अपनी अलग पहचान रखता है। भीष्म ने कथ्य के अनुरुप ही भाष शैली का प्रयोग किया है। उपन्यास की भाषा शैली में आवश्यकता के अनुरुप चित्रण कौशल, प्रवाहात्मकता, चित्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता, भावात्मकता, नाटकीय प्रतीकात्मकता स्वाभलिकता आदि विशेषताओं का समावेश है। भाषा सहज सरल और सुबोध होने के कारण 'तमस' उपन्यास अनेक पलको से घिरे हुए क्रिस्टल की तरह सजीव चित्र के रुप में हमारे समाने प्रस्तुत हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ.प्रवीण कुमार वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय
पलवल

31

स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षण–संस्थानों शिक्षण–संस्थानों में कार्यरत कार्मिकों की समस्याएं– विश्लेषणात्मक अध्ययन।

डॉ0 विमला देवी

सारांशः

गुरूर्ब्रह्मा, गुरूर्विष्णु,गुरूर्देवो महेश्वरः। गुरूः साक्षात परब्रह्म तस्मै, श्रीगुरूवे नमः।।"

प्राचीन काल से ही कहावत है कि जो सर्वश्रेष्ठ है, वही गुरू है, और गुरू परम्परता अनन्त काल से चली आ रही है, व गुरू के समक्ष जहॉ सभी को नतमस्तक होना पडता था वही आज गुरू के सम्मान के साथ उसे तरह–तरह की चुनौतियों का सामना करना पड रहा हैं। अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये आज गुरू को अनेकों समस्याओं से जूझना पड रहा है। जहां एक ओर शिक्षक को भविष्य–निर्माता/भक्त दर्शन पुरूस्कारों से नवाजा जा रहा है तो वही एक ऐसा शिक्षक समुह जो स्ववित्तपोषित संस्थानों में अनेकों समस्याओं का सामना कर रहा है। वह अपने अधिकारो को प्राप्त करने के लिये आन्दोलनरत है, परन्तु सरकार द्वारा उनके अधिकारो की धज्जियॉ उडाई जा रही है। जब शिक्षक को भविष्य–निर्माता कहा जा रहा है तो यह भी आवश्यक हो जाता है कि उसे सभी सुविधाऐ उपलब्ध कराई जाएं जिसका वह हकदार है। जिससे स्ववित्तपोषित संस्थानों में अध्ययन अध्यापन में असुविधायें कभी बाधा न डालें।

राजकीय उच्च शिक्षण संस्थानों पर जिस प्रकार उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर जोर देने के लिये सभी प्रकार की सुविधाएं मुहैया करायी जाती है तो वही स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षण संस्थानों को अनेको कठिनाईयों का सामना करना पडता है जिसका सीधा सा प्रभाव उनके मन–मस्तिष्क पर पडता है और अध्ययन– अध्यापन कार्य प्रभावित होता है और उच्च शिक्षा में गुणवक्ता बनी रहे कैसे सम्भव है?1986 ई0 राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो या 2020 की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो जब तक कोई भी नीति देश में सफल हो यह संशय ही बना रहेगा।

शिक्षक को समाज का इंजीनीयर भी कहा जाता है जब स्वयं उसकी स्थिति एक आश्रित जैसी बनी हुई है। उसे आज छात्रों पर निर्भर रहकर, सरकार पर निर्भर रहकर, क्षेत्रीय नेताओं की कृपादृष्टि पाकर, अपना सेवा कार्य करना पड रहा है। लगता है जैसे कि गुरू–परम्परा खत्म ही हो गई है। शिक्षण संस्थान आज के समय में राजनीतिक मंच बनकर मात्र रह गये हैं। प्राचीन काल में जहॉ गुरू को देखते ही राजा अपना सिंहासन छोड दिया करते थे वही आज ठीक विपरीत स्थिति है आज मात्र क्षेत्रीय नेता को देखकर गुरू अपनी कुर्सी छोड नतमस्तक होना पड़ता है।

यदि शिक्षक व शिक्षक संस्थानों को उचित परिवेश नही मिलेगा तो क्या एक अच्छे अर्थात सुशिक्षित समाज की कल्पना की जा सकती है मेरे ख्याल से सम्भव ही नहीं। इसलिये जब तक हमारे संस्थान उक्त सभी समस्याओं से मुक्त नही होगे तब तक एक सुसभ्य समाज की कल्पना करना स्वप्न है।

अध्ययन का उद्देश्य– मेरे द्वारा प्रस्तुत विषय में यह इंगित करने की कोशिश कर रही हूॅ कि जितने भी हमारे उच्च शिक्षण संस्थान है और संस्थानों में कार्यरत शिक्षक व कार्मिक है उन्हें कितनी और कौन कौन सी समस्याओं का आज के समय में सामना करना पड रहा है जो कि हमारे समाज के लिये एक लज्जा का विषय होना चाहिए कि जहॉ प्राचीन ग्रन्थों में गुरू को इतना महिमा मण्डित किया है–

गुरू गोविन्द दोउ खड़े, काके लागो पाय।
बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियो बताये।।

उसी समाज में आज गुरू की दयनीय स्थिति बनी हुई है।

आज हर उच्च शिक्षण संस्थानों को छात्र राजनीति का अड्डा बना दिया है। वर्तमान समय में छात्रों द्वारा निर्धारित किया जा रहा है कि कौन शिक्षक योग्य है और कौन अयोग्य किस शिक्षक का स्थानान्तरण होना चाहिए और किसे वही रहकर सेवा करनी चाहिए। इसी के साथ–साथ निजीकरण अर्थात स्ववित्तपोषित संस्थानों को छात्रों के प्रवेश को लेकर संशय की स्थिति में रहना भी चिन्ता का विषय है, क्योंकि ऐसे संस्थानों को प्रवेश लेने वाले छात्रों के शुल्क से ही संस्थान के सारे व्यय तथा शिक्षकों/कार्मिकों के वेतन निर्धारित होते है। यहां तक कि छात्र संख्या कम होने पर शिक्षकों/कार्मिको को वेतन तक नहीं मिल पाता और वे बेरोजगारी की पीढ़ा सहते–सहते आत्मदाह तक करने की सोच बैठते है, जबकि ऐसे समय में सरकार को आगे आकर ऐसे संस्थानों की मदद करनी चाहिए, जिससे कि वे भी समाज में आत्मसम्मान के साथ जीवन निर्वाह कर सकें।

शासन द्वारा निर्धारित जब स्ववित्तपोषित उच्च

शिक्षण संस्थान नियमावली का अनुपालन करते है तो फिर क्यों ऐसे उक्त विपरीत समय में शासन साथ नहीं देता, जबकि वही राजकीय शिक्षण संस्थान से कहीं अधिक गुणवत्तायुक्त शिक्षण कार्य स्ववित्त पोषित संस्थानों द्वारा किया जाता है। फिर ऐसा सौतेला व्यवहार क्यों?

स्ववित्त पोषित शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों की समस्याएं–

लगभग सभी स्ववित्त पोषित शिक्षण संस्थानों में शासन द्वारा नियुक्ति प्रकिया राजकीय शिक्षण संस्थानों के अनुरूप ही होती है। जैसे– शासन द्वारा अनुमोदन, शासन द्वारा नियुक्ति पत्र देना, नियुक्ति पत्र पर सभी शासनादेश संलग्न करना, वेतन निर्धारण करना, आदि। और जब वेतन की बात आती है तो आप स्ववित्त पोषित संस्थान हो कहकर छुटकारा पा लेना। विपरित स्थिति में न ही उन्हें शासन/यू0जी0सी0 द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है। और नही अन्य सुविधाएं। जबकि राजकीय उच्च शिक्षण संस्थानों में संविदा शिक्षक, अतिथि शिक्षक, प्रातः कालीन शिक्षक, सांयकालीन शिक्षक, कामचलाऊ शिक्षक आदि नाम देकर उन्हें सम्मानजनक वेतन दिया जाता है जबकि एक ही व्यवस्था में दो प्रकार के नियम लागू नहीं होना चाहिए।

राजकीय महाविद्यालयों मे सहयोग सम्बधी समस्या–

जहॉ एक ओर राजकीय शिक्षण संस्थानों में राजकीय शिक्षक किसी भी कार्य को करने में लिखित रूप से असहमति व्यक्त करते है (जिसका साक्ष्य मेरे पास है।) वहीं हमारे यही स्ववित्तपोषित शिक्षण संस्थानों में कार्यरत शिक्षक ही वही कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण करते हैं। फिर उनके साथ शासन द्वारा दोयम दर्जा क्यूॅ। मूल्यांकन जैसे महत्वपूर्ण कार्य से तक हमारे इन स्ववित्तपोषित संस्थानो को वंचित रखा जाता है आखिर क्यूॅ?जहॉ एक ओर कहा जाता है कि समान कार्य, समान वेतन फिर राजकीय व स्ववित्तपोषित संस्थानों में भी समान कार्य समान वेतन होना चाहिए।

राजकीय महाविद्यालयों के प्रबन्धन संबंधी कार्यो की समस्याएं–

स्ववित्त पोषित संस्थानों के शिक्षको/कार्मिकों द्वारा राजकीय महाविद्यालयों व शासन द्वारा गैर शैक्षणिक कार्य भी करवाये जाते है जबकि उसका उन्हें अलग से कोई मानदेय नही दिया जाता कोई भी सुविधा देने की बात तो दूर की है उन्हें कोई अवकाश तक नहीं दिया जाता सभी के लिये उन्हें दूसरो की कृपा पर निर्भर रहना पडता है वेतन की कटौती कर ली जाती है। यहां तक कि जब ग्रीष्मावकाश/शीतावकाश में भी उन्हें अपने संस्थान में प्रतिदिन आकर उपस्थिति देनी होती है जब राजकीय शिक्षण संस्थानों के कार्मिक अपने घर परिवार के साथ उक्त अवकाश में रहते है। क्या स्ववित्तपोषित संस्थानों में कार्यरत कार्मिकों का घर परिवार नही होता?क्यों होता है इनके साथ अमानुषीय व्यवहार। क्या ये मनुष्य नहीं है?एक ही शिक्षक समाज से सम्बन्ध होने के कारण दोनों (राजकीय व स्ववित्तपोषित) के साथ असमानताए क्यों?परीक्षा सम्बंधी कार्य हो, छात्र संघ चुनाव सम्बंधी कार्य हो, समाज जागरूता रैली सम्बंधी कार्य हो NAAC जैसे राजकीय महाविद्यालयों के महत्वपूर्णकार्यो हों या फिर अनुसुचित जाति उपयोजना/छात्र उपचारात्मक शिक्षा सम्बंधी कार्य हो, सेमिनार आदि में छात्र सहित उपस्थित रहना हो या फिर राष्ट्रीय उत्सवों में पूर्ण सहभागिता निभानी हो तो राजकीय शिक्षण संस्थानों के शिक्षकों को ढिलाई तो वही हमारे इन स्ववित्तपोषित शिक्षण संस्थानों के कार्मिकों पर शिकंजा कसते हुए तानाशाही जैसी मनोवृत्ति दिखायी जाती है।

जहा एक ओर राजकीय शिक्षण संस्थानो के शिक्षकों को समय–समय पर उच्च वेतनमान देकर सम्मानित किया जाता है तो वही इन स्ववित्त पोषित संस्थानों के शिक्षकों को वेतन की कमी के कारण घर तक बैठना पड जाता है।

स्ववित्त पोषित शिक्षण संस्थानों में छात्र सम्बंधी समस्या –

हम सभी जानते है आज हमारा समाज क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद आदि समस्याओं से ग्रस्त है, जिससे चाहकर भी पीछा छुडा पाना असम्भव है। ऐसे में हमारे इन सस्थानों में कार्यरत शिक्षकों व कार्यरत कर्मचारियों को क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद आदि दंश झेलने पडते है और छात्र–समुह दबाव बनाकर उन्हें समय–समय पर प्रताड़ित भी करता रहता है। दुरस्त क्षेत्रों से नियुक्त शिक्षकों को ऐसे माहौल मे रहकर अपना शिक्षण कार्य करना बडा दुस्कर कार्य बन जाता है उसे व उसके परिवार को ऐसे क्षेत्रों में रहकर अनेको समस्याओं का सामना करना पडता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषणात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षण संस्थानों में कार्यरत शिक्षक व कर्मचारियों को अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें कतई सन्देह नही है क्योकि कहीं न कहीं ये संस्थान देश में बेरोजगारी दूर करने में सहायक हैं तो वही अनुशासन में रहकर व कम संसाधनों में शिक्षण संस्थानों को कैसे चलाया जाये यह भी सिखा रहे है। परन्तु शासन को इसकी समस्याओं को अनदेखा नही करना चाहिए। ऐसे संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों व कार्मिकों को सम्मानजनक वेतन के साथ–साथ सम्मानजनक सुविधाएं भी राजकीय

महाविद्यालय शिक्षण संस्थाओं के शिक्षक के समान सुविधाए देनी चाहिए। जिसमें भी स्ववित्तपोषित उच्च शिक्षण संस्थानों की गुणवत्ता का ह्रास न हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

(1) वन्दना (1977) भारतीय शिक्षा पद्धति के अर्न्तगत उच्च शिक्षा की समस्याएं एवं उनका समाधान उच्च शिक्षा पत्रिका, यू0जी0सी0 नई दिल्ली।

(2) रामगोपाल (2006), उदयोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षा एन0पी0 भार्गव, आगरा।

(3) समसामयिक अमर उजाला, दैनिक जागरण समाचार पत्र,

डॉ0 विमला देवी
असि0 प्रोफेसर (इतिहास)
स्वा0 वि0 रा0 स्ना0 महाविद्यालय
लोहाघाट, चम्पावत
Drvimla2015@gmail.com

32

मिथिला की देव प्रतिमाएँ एवं उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि

अभय चन्द्र यादव 'शोधार्थी'

सारांशः

जम्बूद्वीप के उत्तर–पूर्व भू–भाग में अवस्थित बिहार राज्य का उत्तरी भू–भाग प्राचीन कालीन मिथिला राज्य है। यहाँ का अतीत वैदिक काल से ही बड़ा मर्मज्ञ रहा है, जहाँ पर बड़े–बड़े योद्ध, विद्वान, ऋषि मुनि और दार्शनिक हुआ करते थे और वे अपने–अपने ज्ञान से यहाँ के समाज को लाभन्वित किया करते थे तथा आध्यात्मिक ज्ञान के अनुकूल जीवन यापन करने के लिए प्रेरित करते रहते थे। उन वैदिक मनीषियों द्वारा लोक जीवन को सुव्यवस्थित ढ़ंग से संचालित करने के लिए जिस आध्यात्मिक विचारधारा (ज्ञान) का प्रतिपादन किया गया, उसका ही परिष्कृत स्वरूप कालानतर में आकर देव प्रतिमा के रूप में उपस्थापित हुए। इस क्षेत्र में विष्णु, गणेश, सूर्य, शिव, शक्ति प्रतिमाएँ, अग्नि, हरिहर, बौद्ध, जैन, वाराह, भैरव इत्यादि प्रतिमाएँ अवस्थित है, जो अतीत कालीन सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है, जिनका लोक कल्याण की दृष्टि से अलग–अलग पृष्ठभूमि है। इसलिए यह आज तक यहाँ के समाज में आदर्शता का प्रतीक बना रहा है। अतएव इन प्रतिमाओ की सामाजिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। इस शोध–आलेख में मिथिला का परिचय, देव प्रतिमा का अर्थ तथा प्रतिमा का विवरण प्रस्तुत कर उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि का यथोचित उल्लेख किया जाएगा।

मिथिला क्षेत्र का परिचय :– मिथिला क्षेत्र अतीत काल से ही अपनी ख्याति के लिए विश्व प्रसिद्ध रहा है, परंतु यहाँ पर कब से स्थाई रूप में जीवन–यापन का प्रारंभ हुआ इसमें थोड़ा संदेह है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेखित कथा के अनुसार गौतम ऋषि ने जब ''तत्सो घृत स्नवी महैः'' मंत्र का आहवान किया, तो विदेह माथव (माधव) के मुख से वेश्वानर अग्नि निकलकर पूर्व दिशा की ओर चल पड़ी। जिसके पिछे राजा, ऋषि और अन्य लोग सदानीरा (गंडक) नदी के तट तक आया और तब वेश्वानर अग्नि ने विदेह माथव को सदानीरा के पूर्व में बसने का आदेश दिया। सदानीरा पार करने के बाद जब वे लोग इस क्षेत्र में आए तो यहाँ की भूमि दलदल थी, जहाँ पर यज्ञ करके उसे बसने योग्य बनाया। इच्छवाकु वंशीय राजा निमि के पुत्र ''मिथि'' के नाम पर ही इस क्षेत्र का नाम मिथिला पड़ा।[1] क्योंकि 'मिथि' ने ही इस भूमि को आबाद कर इस संपूर्ण क्षेत्र को एक शासन सूत्र में बांधा था। डॉ0 रश्मि सिन्हा नें लिखा है कि ''भविष्य पुराण के अनुसार निमि के पुत्र मिथि ने तिरहुत (उत्तर बिहार) में मिथिलापुरी बसाई।[2] रामायण में भी इस तरह का संदर्भ मिलता है कि निमि के पुत्र मिथि ने ''मिथिला नगर''की स्थापना की।[3] इन तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि राजा मिथि ने हीं सर्वप्रथम यहाँ की भूमि पर नगरी बसाकर वैदिक कालीन आर्य संस्कृति का प्रारंभ किया था। मिथिला के अतिरिक्त विदेह, तीरभुक्ति, तिरहुत, तपोभूमि, शाम्भवी, सुवर्णकानन, वैजयन्ती, जनकपुर इत्यादि नामों से इसे पुकारा जाता है।[4]

मिथिला क्षेत्र चारों ओर से प्रकृति प्रदत्त भौगोलिक सीमाओं द्वारा घिरा हुआ है। इसके पूरब में महानंदा, पश्चिम में गंडक, दक्षिण में गंगा नदी तथा उत्तरी सीमा 'नेपाल की तराई भाग' हिमालय की ऊँची श्रृंख्लाओं से घिरा हुआ है। इसके अतिरिक्त विभिन्न ऐतिहासिक साहित्यों से मिथिला की भौगोलिक सीमा की पुष्टि होती है। जनक वंश के समय में इसकी सीमा पूरब में कोशी, पश्चिम में गंडक, दक्षिण में गंगा और उत्तर में हिमालय की निचली श्रृंखला तक थी।[5] उपेन्द्र ठाकुर के अनुसार उत्तर में हिमालय की तराई से दक्षिण में गंगा नदी तक 100 मील और पूरब में महानंदा से पश्चिम में गंडक नदी तक 250 मील इसकी सीमा है। (From the foothils of the Himalya in the north to the Ganga in the south it is 100 miles broad and from the Mahananda in the east to the Gandaki in the west it is 250 miles long)।[6] डॉ0 योगेन्द्र मिश्र के अनुसार ''विदेह राज्य पश्चिम में सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर और वैशाली जिला, पूरब में कोसी और महानंदा नदी, दक्षिण में गंगा नदी और उत्तर में हिमालय की निचली श्रृंखला से घिरा हुआ प्रदेश था।[7] इसी तरह शतपथ ब्राह्मण से यह संकेत मिलता है कि सदानीरा नदी को पारकर 'विदेघ माथव' ने अग्नि प्रज्वलित कर विदेह राज्य की स्थापना की थी।[8] इस तरह यह उपरोक्त विवरण वैदिक कालीन विदेह राज्य की सीमा का प्रमाण है। इसका उत्तरी अक्षांश 25.3° से 27.6° तथा पूर्वी देशान्तर 83.9° से 88.5° के लगभग है। इसके अलावा उपेन्द्र ठाकुर, डॉ0 चन्द्रभूषण सिंह, डॉ0 शिव कुमार मिश्र ने उत्तरी अक्षांश 25.28° से 26.52° तथा पूर्वी देशान्तर 84.56° से 86.46° तक माना है। डॉ0 मदन मोहन मिश्र ने 25.28°–26.52° उत्तरी अक्षांश और 85.56° से 86.46° पूर्वी देशान्तर माना है और पंडित ताराकान्त झा ने 25.3° से 27.5° उत्तरी अक्षांश तथा 83.80° से 88.80° अंशतक पूर्वी देशान्तर माना है।[9]

देव प्रतिमा का अर्थ :– किसी भी समाज की वास्तविकता वहाँ के चित्र–कला एवं मूर्ति कला में निहित होता है, जिसमें

कलाकार उस समय के तत्कालीन वास्तुस्थिति को ध्यान में रखकर वहाँ के सामाजिक जीवन, आध्यात्मिकता, धार्मिक भावना और नैतिक आदर्श को चित्रित कर उसे मूर्त स्वरूप प्रदान करता है। इसलिए चित्र–कला एवं मूर्ति–कला को समाज का दर्पण भी कहा जा सकता है, जो अपने–अपने समय के सामाजिक व्यवस्था का द्योतक होता है। कुमार स्वामी के अनुसार–''प्रतीक या प्रतीमा आत्मतत्व ज्ञान के निमित्त भाषा का काम करती हैं। कला केवल भावों का प्रदर्शन हीं नहीं करती अपितु आध्यात्मिक संदेश का संवाहक भी हैं।[10]

देव शब्द का अर्थ है 'देनेवाला' अर्थात रक्षा करने वाला, जीवन देनेवाला, पालन–पोषण करने वाला, ज्ञान देनेवाला, जन्म देनेवाला, संकट से उबारने वाला, आश्रय देनेवाला इत्यादि। इस प्रकार लोक–जीवन अथवा लोक–कल्याण में जिसने सहायता या सहयोग प्रदान किया हो वहीं 'देव' है जिसका पर्यायवाची नाम ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा एवं भगवान है। हमारे देश में अतीत काल से हीं अतिथियों को देव तुल्य मानकर उनका स्वागत किया जाता रहा है। कि–

''अतिथिदेवो भव'' (तैतरीय संहिता 2.11.2.2) अर्थात् अतिथि भगवान है।[11] वेदान्त के अनुसार जब एक योग्य पात्र अपने गुरू से यह दीक्षा प्राप्त कर लेता है कि ''तत्वमसि'' अर्थात् तुम हीं वह ब्रह्म हो, तो उसे मोक्ष ज्ञान प्राप्त हो जाता है।[12] इस प्रकार मानव, भूमि, पेड़–पौधा, पशु, पुष्प–लताएँ, माता–पिता, गुरू, ज्ञान, धन, लक्ष्य, समाज, सामाजिक संस्थाएँ इत्यादि अर्थात् हमारी संपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति का वह माध्यम जो हमे सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित जीवन प्रदान करता है या जीने की राह सिखलाता है वे सभी देव अथवा 'भगवान' कहलाता है, जिसका प्रतीकात्मक मूर्तस्वरूप हीं देव प्रतिमा है।

प्रतिमा का अर्थ है तुल्यता, समानता या रूप। भारत में प्रतीमा अनन्त ब्रह्म का प्रतीक मात्र है। सगुण ब्रह्म की उपासना में प्रतिमा का सर्वोच्च स्थान है। प्रतिमा में देवत्व की स्थापना 'प्राण–प्रतिष्ठा' के द्वारा किया जाता है। अतः अप्रस्तुत या अदृश्य ब्रह्म का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा करती है।[13] डॉ0 नीलकंठ पुरूषोत्तम के अनुसार– ''प्रतिमा शब्द का अर्थ संस्कृत के अर्चा, बेर और विग्रह से स्पष्ट होता है जिसमें उपासना और पूजन का भाव निहित होता है।[14] पुलिन शील (Pulin Seal) ने कहा है– ''भारत की प्रमुख विशिष्टता यही है कि उसमें प्रकृति के सौन्दर्य और अन्तरात्मा की चेष्ठाओं को यथोचित और एकात्मक मूर्त रूप देने की योग्यता है।[15]डॉ0 इन्दुमती मिश्र के अनुसार–''प्रतिमा का अर्थ है प्रतिरूप और इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए प्रतिकृति, प्रतिमा, बिम्ब आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रतिमा शब्द अत्यंत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आ रहा है। ऋग्वेद में यज्ञ के रूप के विषय में प्रतिमा शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रतिमा शब्द केवल दैवी अर्थ के लिए हीं नहीं होता है। महानात्मा, यशस्वी तथा पूर्वजों की बनी हुई आकृतियाँ भी प्रतिमाएँ कहलाती है।[16] उक्त कथनों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि आदर्श पुरूष, पूर्वज, तपश्वी, प्रकृति, अदृश्य ब्रह्म, राजा, पशु इत्यादि के मूर्त स्वरूप को प्रतिमा कहा जाता है।

देव प्रतिमाओं का विवरण :–

मिथिला क्षेत्र के विभिन्न भू–भागों में विष्णु, वाराह, गणेश, सूर्य, शिव, शक्ति प्रतिमाएँ, उमा–महेश्वर, भैरव, अग्नि, बौद्ध, हरिहर, सप्तमातृका, गंगा, यमुना, जैन इत्यादि प्रकार की देव प्रतिमाएँ है। यह प्रतिमाएँ ''प्रथम सदी से 14वीं सदी'' के बीच की बनी हुई है, जो राजमहल, चुनार, गया और खड़गपुर[17] की पहाड़ियों से लाए गए काला, काला बेसाल्ट, कसौटा (सलेटी रंग), भूरा और लाल बलुआ पत्थर से बना हुआ है।[18] इन प्रतिमाओं का निर्माण तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थाओं के अनुकूल लोक कल्याण की दृष्टि से किया गया था, जिन्हें देव प्रतिमाओं के माध्यम से देखा और समझा जा सकता है। इन प्रतिमाओं में वे सभी सामाजिक तत्व विराजमान है, जिन्होंने समाज को सुव्यवस्थित करके उन्हें विकास के मार्ग पर आगे बढ़ाने में अपनी–अपनी भूमिका का निर्वहन किया। अतः मिथिला की देव प्रतिमाओं का विवरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा रहा है –

हिन्दु देव प्रतिमाएँ :– देवता की प्रतिमाएँ –

विष्णु प्रतिमाएँ – भगवान विष्णु जगत के मूल देवता है, जिन्होंने समाज कल्याण में सबसे अधिक भूमिका का निर्वहन किए हैं। इन्हे, विष्णु, हिरि, नारायण, वासुदेव, वैकुण्ठ वासी, पालनहार, जगतपति, माधव, सच्चिदानन्द, सृष्टि संचालक इत्यादि नामों से जाना जाता है।[19] ऋग्वेद में उन्हें ''अक्षर पुरूष'' कहा गया है।[20] इन प्रतिमाओं में मानवाकृति रूप मे भगवान विष्णु अपने भुजाओं में शंख, चक्र, गदा लिए हुए खड़े है और दायाँ भुजा अभय मुद्रा में है। इनका शरीर अधोवस्त्र, उत्तरीय, कटिसूत्र, यज्ञोपवित, एकावली, वनमाला, कारा, कुण्डल, बाजूबंद और मुकुट से शुसोभित है। भगवान विष्णु के बाये तरफ सरस्वती और दाहिना भाग में लक्ष्मी की छोटी मूर्ति बनी है तथा विष्णु के चारों तरफ हाथी, घोड़ा, मकर, बाघ, पुष्प–लताएँ, गंधर्व कन्याएँ और सबसे नीचे सेवक जन उनकी अराधना कर रहे हैं।[21] भगवान विष्णु की ऐसी अनेक प्रतिमाएँ मिथिला के ''सवास (मुजफ्फरपुर), समस्तीपुर, करियन, वासुदेवा, दरभंगा–कुर्सौनदियामी, नेहरा, हावीडीह, नवादा, मधुबनी–जयनगर, भीठ–भगवानपुर, भवानीपुर, विदेश्वर स्थान'' इत्यादि जगहों पर स्थापित हैं।

विष्णु के विभिनन नाम और अवतार उनके द्वारा किए गए कार्यों के आधार पर पड़ा। विश्व के कण–कण में निवास करने के कारण विष्णु, सभी के प्राणों में निवास करने के कारण बैकुण्ठवासी, नार–जल अथवा समाज में निवास करने के कारण नारायण नाम पड़ा।[22] इस तरह वह प्रत्येक समाज में विराजमान अधिपति, भूपति अथवा ग्राम प्रमुख या राजा के समतुल्य थे, जिनका संप्रभुत्व राष्ट्र

स्तर पर आधुनिक राजनीति के अनुकूल था और वे सामान्यतः जीवन में आवश्यक एवं महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखकर प्रजा का मार्गदर्शन करते थे तथा जीव–जन्तु और प्राकृतिक जगत के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए बगीचा, पोखरा, पशुओं एवं पुष्प–वाटिका को संरक्षित करने पर विशेष जो देते थे। उनके द्वारा किए गए उन कार्यों का यह ठोस प्रमाण प्रतिमा के रूप मे पूरे मिथिला क्षेत्र में भरे पड़े हैं।

वाराह प्रतिमा :– भगवान विष्णु के वाराह अवतार की प्रतिमाएँ चन्द्रधारी संग्रहालय दरभंगा, तिलकेश्वर स्थान और बहेड़ा में है। इनके यज्ञवाराह की प्रतिमा बहेड़ा और नृवाराह की प्रतिमा तिलकेश्वर स्थान तथा चन्द्रधारी संग्रहालय में है। जिनका वस्त्राभूषण और आयुध एवं भुजा विष्णु के समान है तथा शिरोभाग पशु की आकृति में है जिनके बॉये कंधे पर एक नारी बैठी हुई है। नीचे दो 'विष कन्या' है जिसमें दाहिने भाग की विष कन्या के हाथ में छत्र है। भगवान वाराह का दायॉ पैर विष कन्या की जांघ पर और बायॉ पैर दूसरी विष कन्या की तलहथी पर है। बहेरा में यज्ञवाराह की मूर्ति है, जिसका मुख उपर उठा हुआ है। इसके संपूर्ण शरीर पर वल्कल धारण किया हुआ है और कमण्डलुधारी ऋषि और अन्य प्रतिमाएँ अंकित है। इनके गले में माला के उपर कई तरह के अलंकरणों के साथ राशियों का अंकन है जिसे पुराणों में 'वेदवेदांगतनु', 'वेदमय शरीर', 'रोमांतःस्य मुनिगण', 'दर्भलोम पशुजानुमुखाकृति' शब्दों से सम्बोधित किया जाता है।[23]

गणेश प्रतिमा :– भगवान गणेश को गजानन, गणपति, लम्बोदर, गौड़ी पुत्र इत्यादि नामों से जाना जाता है। गणेश शब्द का अर्थ गण–समूह या समुदाय और ईश–भगवान अथवा अधिपति होता है। इस पकार एक जन समुदाय के मुखिया अथवा अधिपति को गणेश कहा जा सकता है। गणेश की मान्यता वैदिक काल में बहुत कम था, परंतु गुप्तकाल के इसकी मान्यता बढ़ गइ। वर्तमान गणतंत्र प्रणाली की जो शासन व्यवस्था है वह इसी के आधार पर प्रारंभ हुआ था। गणेश की पतिमा विष्णुबरूआर, भोजपरौल, हावीडीह, देकुली, कोर्थु, हरदबार इत्यादि स्थलो पर अवस्थित है। इसमें हावीडीह, कोर्थु, विष्णुबरूआर की गणेश प्रतिमा अष्टभुजी है और गणेश नृत्य मुद्रा में खड़े है। भोज परौल और देकुली की गणेश प्रतिमा चार भुजाओं से युक्त है और पद्मासन पर बैठे हैं जिसके सामने नीचे में चूहा (मूसक) एवं लड्डू एक पात्र में रखा हुआ है। उनके हाथों में मूली, लड्डू, फल, मोतक, नींबू, पाश, कमल एवं अभय मुद्रा में रहता है।[24] शरीर पर अधोवस्त्र, जनेऊ (यज्ञोपवित) और आभूषण धारण किए हुए है। इनके पास दोनों तरफ नीचे और ऊपर में स्त्री की आकृति बनी है तथा लम्बा सुर, बड़ा पेट, बड़ी–बड़ी दो आँख और छोटा ठिकगना कद है।[25]

सूर्य प्रतिमा :– भारत में सूर्य पूजा का प्रचलन प्राचीन काल से हीं है, जिसका प्रमाण हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त स्वस्तिक चिन्ह है। सूर्य का मतलब होता है अंधकार को दूर करनेवाला और अपने प्रकाश से संसार को आलोकित करनेवाला। इस आधार पर एक गुरू तथा समाज को सुदृढ़ राह पर ले जाने वाला व्यक्ति भी सूर्य के समान हीं है। क्योंकि गुरू अधंकार रूपी अज्ञान को समापत करके ज्ञान रूपी प्रकाश से सबको आलोकित करते है तथा एक समाज सेवी अथवा राजा भी सही दिशा प्रदान कर उसे व्यवस्थित जीवन यापन करने की राह सिखलाती है। इसे सूर्य, सविता, दिनकर, आदित्य, प्राची, सूरज, इत्यादि नामों से जाना जाता है। ''सूर्य पुराण'' में द्वादश सूर्य का विवरण मिलता है।[26] मिथिला में देकुली, सिमरिया भिण्डी, सवास, भोजपरौल, रोहाड़, डिलाही, भीठभगवानपुर, रघेपुरा, कन्दाहा इत्यादि जगहों पर सूर्य प्रतिमा स्थापित हैं।

भारत में सूर्य की प्रतिमा शुंग काल से मिलने लगी है जो उड़ीसा की अनन्त गुफा के द्वार पर और बोधगया के एक वेदिका पर उसे रथारूढ़ अंकित किया गया है।[27] इन प्रतिमाओं में सूर्य खड़ी मुद्रा में रथारूढ़ है, जिनके सुन्दर शरीर, दो भुजा और सुन्दर मुखाकृति हैं। उनके दोनों हाथों में खिला हुआ दण्ड युक्त कमल हैं। शरीर अधोवस्त्र, यज्ञोपवित, कुण्डल, गोल टोपी इत्यादि से सुशोभित हैं। उनके दोनों पार्श्व में डण्ड–पिंगल और सामने सारथी अरूण है। इसमें सूर्य और डण्ड–पिंगल के पिछ गोल प्रभामण्डल बना है। इसके अलावा उषा–प्रत्युषा नाम सहचरियाँ, यम–रेवन्तादि चार बेटे और दो पटरानियाँ भी रहते है।[28]

अग्नि प्रतिमा :– मानव जीवन में अग्नि का विशेष महत्व है। इससे उष्मा–प्रकाश की प्राप्ति होती है। वैदिक काल में यज्ञ के माध्यम से उसमें हवियाँ डालकर प्राकृतिक वातावरण को शुद्ध किया जाता था ताकि शुद्ध प्राणवायु मिल सके। इसलिए यह वैदिक ऋषियों का एक मात्र साधन था, जिसके माध्यम से आत्मा और परमात्मा दोनों के बीच संबंध स्थापित किया जाता था। यहाँ पर अग्नि की प्रतिमाएँ डिलाही, विदेश्वर–स्थान इत्यादि जगहों से प्राप्त हुई है। इसमें पद्मासन पर पर्यंकासन मुद्रा में बायॉ पैर मोड़कर और दायॉ पैर को नीचे लटकाके बैंठे हैं। उनके शरीर के पिछे ज्वाला धधक रहा है। अग्नि देव की दो भुजाएँ है जिसमें दाएँ हाथ में अक्षमाला लिए हुए हृदय को स्पर्श किए है तथा बाएँ हाथ में कमण्डलू है। उनकी बड़ी–बड़ी मुँछे और दाढ़ी है, सिर पर बालों का जटा है, शरीर पर यज्ञोपवित, आभूषण एवं अधोवस्त्र धारण किए हुए हैं। नीचे बकरी है जिसके सामने एक स्त्री हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही है। बाएँ एवं दाये तरफ ऋषि बैठे हैं।[29] एक दूसरी प्रतिमा में नीचे का भाग स्पष्ट नहीं है पर इसमें पद्मासन पर पलथी मारकर बैठे हैं, जिसके बॉये तरफ एक स्त्री खड़ी है।[30] यह प्रतिमा एक ऊँची चबूतरे पर स्थित यज्ञ कुण्ड में प्रज्वलित अग्नि के रूप में प्रदर्शित है।

शिव–पार्वती (उमा–महेश्वर) प्रतिमा :– भगवान शिव के लिंग की

पूजा का प्रमाण हड़प्पा सभ्यता से ही ज्ञात होता है। मिथिला में भी चतुर्मुखी शिवलिंग का प्रमाण इटवा–शिवनगर एवं हनुमान नगर गॉव से प्राप्त हुआ है जिनका मात्र 'धर से उपर का भाग' ही उत्कीर्ण है। इसमें उनके शिर पर मुकुट एवं शरीर पर विविध आभूषण आलोकित है।[31] इसके अलावा उमा–महेश्वर की अनेक प्रतिमाएँ भी है, जो डोकहर, तिरहुता, महादेवमठ, भोजपरौल, मंगरौनी, बनरझूला, अंदौली, दरभंगा शहर, सिमरिया–भिण्डी इत्यादि जगहों पर अवस्थित है। इन प्रतिमाओं में शिव–पार्वती ललितासन पर बैठे हैं। शिव के दायॉ पैर नीचे बसहा पर है तथा उनके बायॉ जांघ पर पार्वती बैठी है, जो अपना बायॉ पैर मोड़कर रखा है तथा दायॉ पैर नीचे सिंह पर रखी है। इसमे शिव और पार्वती के चार–चार हाथ हैं जो विभिन्न आभूषणों से विभूषित होकर एक दूसरे को आलिंगन मुद्रा में प्रदर्शित है जिसमें शिव का दायॉ हाथ पार्वती के होठ को स्पर्श किए हैं और पार्वती अपनी दायीं हाथ शिव के कंधा पर रखी है। शिव के हाथ में त्रिशूल है।[32] इसके अलावा कुछ प्रतिमाओं में गणेश, कार्तिक और अनके आकृतियाँ है तथा शिव के आसन के पिछे त्रिशूल और तलवार की आकृति भी बनी है।[33] इस प्रकार यह एक सामान्य सामाजिक जीवन का प्रतीक भी है, जो मिथिला समाज के दाम्पत्य जीवन को उजागर करता है।

भैरव प्रतिमा :– यह भगवान शिव का हीं एक रूप है, जिसे भैरव, काल भैरव, महाभैरव, भैरव नाथ, इत्यादि नामों से जाना जाता है। ''भै–डर और रव–ईश्वर'' अर्थात् डर का ईश्वर या पिता। इस प्रकार भैरव का अर्थ डर (भय) का बाप होता है, जो शिव का मात्र दश हजारवॉं अंश के बराबर है, पर इससे महाकाल भी डरते हैं। लहेरियासराय में एक भैरव प्रतिमा है, जो छोटा सा पैनल पर बना है, जिसमें श्वान (कुत्ता) के उपर वे सवार हैं, जिनके बाएँ हाथ में भिक्षापात्र है जो श्वान के सिर के उपर में है और दायॉं हाथ में दण्ड लिए हुए कंधे पर टिकाए है।[34]

भैरव की एक अलग प्रतिमा 'बलिया' में स्थापित है जिनकी भुजाएँ खंडित हैं। प्रतिमा शास्त्रीय लक्षणों के अनुकूल यह महाभैरव की प्रतिमा है। डॉ0 नीलकंठ ने अहिच्छत्र के मृत्फलक का हवाला देते हुए कहा है कि शिव के घोर रूप का दर्शन महाभैरव के रूप में इन मृतफलको पर होती है।[35] बी0पी0 सिंह के अनुसार इनके पेट निकला हुआ और बाल खड़े तथा बिखरे रहते हैं।[36] कपालिको का इष्ट देव भैरव हैं जिसे ये लोग प्रसन्न करने के लिए भष्म का लेपन शरीर पर करता है और रक्त–मांस, सुरापान से उनकी पूजा करता है।[37] 'राव महोदय' ने भैरव का रंग जल से भरे हुए मेघ के समान बताया है।[38] आगम के अनुसार भगवान भैरव क्षेत्रफल के रूप में शिव के मात्र दस हजारवें भाग शक्ति का धारण करता है किन्तु महाकाल भी उनसे डरते है।[39]

देवी अथवा शक्ति प्रतिमाएँ :– देवी–शक्ति की उपासना का प्रचलन सैंधव काल से ही माना जा रहा है। इसकी उत्पति का आधार दैवी (प्रकृति) अथवा दैविक (प्राकृतिक) शक्ति एवं देवताओं (परमात्माओं) द्वारा प्रगट (स्थापित) की गई शक्ति से संबंधित है।[40] देवी शक्ति के अंतर्गत भूमि और नदी आती है, जो संसार के समस्त जीवों को जीवन प्रदान करती है। इसलिए नदी और भूमि को देवी माता के रूप में पूजा की जाती है।[41] इसी आधार पर माँ के नाम में भी 'देवी' शब्द जोड़ा गया। इस प्रकार 'पुर' (नगर या दुर्ग), 'गॉव' (ग्राम) और 'घर' (गृह) इन तीनों की अपनी–अपनी देवी–देवता रहा है। क्रमशः ये तीनों 'राज्य', 'समाज', और 'परिवार' की संगठित शक्ति का घोतक है। जिसके अंतर्गत सभी लोग शांति पूर्वक जीवन यापन करते हैं। राष्ट्र की इन संगठित शक्तियों को संचालित करने के लिए एक तंत्र (कानून) की व्यवस्था की जाती हैं जिसे 'शासन तंत्र' कहा जाता है। यह 'शासन तंत्र' राष्ट्र की 'शक्ति' होती है। इसलिए इसे 'तांत्रिक शक्ति' भी कहा जाता है और इसी से तांत्रिक सम्प्रदाय का उद्भव हुआ, जिन्होंने 'शाक्त धर्म' के अन्तर्गत 'शक्ति' की पूजा उपासना का प्रचार–प्रसार किया। इस प्रकार देवताओं की पत्नीयाँ तथा उनके द्वारा प्रयुक्त शक्ति भी देवी–शक्ति कहलाई, जिसका सामान्य आयुद्ध लक्षण भी देवताओं के समान ही रहती है। जैसे– सप्तमातृका प्रतिमा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, कार्तिक, वाराह और यम' के आयुद्ध लक्षणों की तरह उनकी शक्तियों का आयुद्ध लक्षण भी समान है।[42] अतः मिथिला क्षेत्र का अन्तर्गत दुर्गा, काली, महिषासुर–मर्दिना, गिरजा, चामुण्डा, सप्तमातृका[43] गंगा, यमुना इत्यादि देवी–शक्तियों की प्रतिमाएँ अवस्थित है।[43] यह प्रतिमाएँ वारी, गिरजा–स्थान, फुलहर, भंडाइरसों, बनगॉव–महिषी, भगवतीपुर नाहर, सिमरिया–भिण्डी, अंधराठाढ़ी इत्यादि जगहों पर स्थित है, जिसमें कुछ प्रतिमाओं का विवेचन किया जा रहा है।

महिषापुर–मर्दिना की एक प्रतिमा भगवतीपुर नाहर में है जिसमें उनकी दस भुजाएँ आयुधों से सुसज्जित हैं और वे अपने त्रिशूल से महिषासुर का वध कर रही है। उनका दायॉ पैर सिंह पर है और सिंह महिष को अपना शिकार बना रहा है। इसी प्रकार की एक प्रतिमा अन्दामा में है जो अष्टभुजी है।

दुर्गा की प्रतिमा भंडारिसों और लोहना में है, जिसमें वे पर्यंक आसन पर दायॉ पैर नीचे लटकाकर बैठी है तथा नीचे सिंह की आकृति है। इनकी चार भुजाऍं खड्ग, ढ़ाल, त्रिशूल और शंख से शुसोभित है।

दुर्गा/पार्वती के रूप मे उनकी प्रतिमा भोजपरौल और उच्चैठ से प्राप्त हुई है, जिसमें वे ललितासन पर पर्यंक मुद्रा में दाहिना पैर लटकाकर बैठी है और नीचे बाघ की आकृति बना है। इनकी चार भुजाएँ पद्म, शंख, कमण्डलु और त्रिशूल से शुसोभित है।

गिरजा रूप में इनकी प्रतिमाएँ मिर्जापुर, फुलहर, कुर्सौनदियामी, अन्धराठाढ़ी इत्यादि स्थलों से प्राप्त हुई है जिसमें

उनकी चार भुजाएँ विविध वस्तुओं से शुसज्जित है और दोनों पार्श्व में गणेश तथा कार्तिकेय की छोटी–छोटी आकृति है।

भीठ भगवानपुर से सप्तमातृका की प्रतिमाएँ मिली है जिसमें सभी ललितासन पर बैठी हैं और उनकी चार–चार भुजाएँ आयुधों से परिपूर्ण है।

गंगा और यमुना की प्रतिमा अन्धराठाढ़ी से प्राप्त हुई है जिसमें विविध वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर मकर के उपर गंगा और कछुआ के उपर यमुना की आकृति को दर्शाया गया है।

बौद्ध देव प्रतिमाएँ :–सिद्धार्थ ने जब बोधि ज्ञान की प्राप्ति कर लिए, तब से वह बुद्ध कहलाने लगा तथा इस बोध ज्ञान का प्रचार–प्रसार करने के लिए जिस धर्म की स्थापना किया गया उसे ''बौद्ध धर्म'' कहा जाता है। गौतम बुद्ध के जीवनकाल में ही बौद्धमत में सुधारणावाद के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे थे।[45] बुद्ध के पश्चात् बौद्ध सम्प्रदाय पूर्णतः दो भागों विभाजित हो गए (1) महासांघिक एवं (2) सुधारणावादीया स्थविरवादी। महासांघिक (थेरावादी) मत से संबद्ध लोग हीनयान तथा स्थविरवादी मत के लोग महायान साखा के नाम से जाना गया।[46] बौद्ध धर्म में प्रतिमा का निर्माण सुधारणावादी शाखा के अन्तर्गत प्रारंभ हुआ।

देवता की प्रतिमाएँ :– मिथिला में बौद्ध धर्म से संबंधित देवताओं की प्रतिमाएँ कोर्थु, महिया, जरहटिया, दरिमा, जयमंगलागढ़, संघौल, बलिया, साम्हो इत्यादि स्थलो से प्राप्त हुआ है।[47] जिसमें वे भूमिस्पर्स, ध्यानमुद्र, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में अवस्थित हैं, परंतु इनमें सर्वाधिक प्रतिमाएँ खंडित है।

देवी की प्रतिमाएँ :– बौद्ध धर्म में भी हिन्दु धर्म की तरह बहुत सारे देवियों की प्रतिमाएँ बनने लगी थी जिसमें मैत्रेय, मारिची और तारा की प्रतिमा विशेष प्रसिद्ध रहा है। मिथिला में वारी और रजौड़ा से तारा एवं मारिची की प्रतिमा मिली है। तारा की ये प्रतिमा पर्यंक आसन में है जहॉ पर उनके दाहिने हाथ में खिला हुआ दण्डयुक्त कमल है।[48] मरीचि की प्रतिमा भग्न है।

जैन देव प्रतिमाएँ :– ''जैन'' शब्द की उत्पति ''जिन'' से हुई है, जिसका अर्थ है 'इन्द्रियों' पर विजय प्राप्त करना। इस तरह जब जैन धर्मावलम्बी तपस्या करके ''कैवल्य ज्ञान'' की प्राप्ति कर अपने इन्द्रिय पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो वह जितेन्द्रिय कहलाता है, जिसे तीर्थंकर भी कहा जाता है। कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति के निमित, लोगों को इससे अवगत कराने के लिए जिस संघ की स्थापना किया गया, उसे जैन संघ अथवा जैन धर्म कहा गया। जैन धर्म का अस्तित्व आदिकाल से ही माना जा रहा है। जिनके प्रवर्तक ऋषभदेव थे। जैन धर्म में कुल 24 तीर्थंकर हुए जिसमे अंतिम तीर्थंकर 'वर्धमान (महावीर)' हुए।[49]

मिथिला में जैन धर्म से संबंधित प्रतिमाएँ बहुत कम संस्था में मिला है। मुजफ्फरपुर संग्रहालय में गुप्तकालीन ऋषभदेव की एक प्रतिमा है जो भुरे पत्थर से बना है। इसके अलावा हाजीपुर में भी एक जैन प्रतिमा है। इन दोनों प्रतिमाओं में जैन तीर्थंकर पदमासन पर आसीन है जिनके नीचे उनका वाहन वृषभ को भी दर्शाया गया है।[50] इसमें एक प्रतिमा में पद्मासन के नीचे चक्र भी दर्शाया गया है। प्रतिमा शास्त्रीय लक्ष्णों के अनुकूल यह जैन प्रतिमा ही है।[51]

सामाजिक पृष्ठभूमि :– मिथिला की ये 'देव प्रतिमाएँ' प्रतिमा मात्र ही नहीं है, बल्कि यह उस समय के तत्कालीन समाजिक व्यवस्था का एक ठोस प्रमाण भी है, जिसका निर्माण सिर्फ इसलिए नहीं हुआ कि ये भगवान है, बल्कि इसलिए हुआ, क्योंकि उन्होंने समाज के उत्थान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाया था। जहॉ एक तरफ निति का निर्धारण बह्मा द्वारा किया जाता था, वहीं पर उस नीति का पालन विष्णु द्वारा प्रतिपादित किया जाता था और भगवान शिव कर्मफल का निर्णायक होता था। ''गणेश'' गणसंघ का प्रमुख होता था, इसके अलावा मातृ शक्तियाँ भी जनकल्याण कार्य में पूर्ण सहयोग करती थी। सूर्य प्रतिमा ज्ञान और प्रकाश का प्रतीक है जिस तरह अंतरिक्ष के सूर्य प्रकाश फैलाकर संपूर्ण सृष्टि को आलोकित करता है, उसी प्रकार सूर्य के समान 'गुरू' भी अपने ज्ञान द्वारा मानव के अंतः चक्षु में अपना दिव्य ज्ञान पूंज फैलाकर जनकल्याण करते थे। इसी तरह बौद्ध एवं जैन प्रतिमा भी ज्ञान का द्योतक हैं जिसमें ज्ञान द्वारा लोगों को मुक्ति प्राप्त करने के लिए सरल उपाय बताए गए है। इन प्रतिमाओं में पुशओं की आकृति, फल, सर्प इत्यादि की आकृतियॉ है जो तत्कालीन समाज के क्रियाकलापो एवं वन्सजीवों के चित्रण का द्योतक है जो यह दर्शाता है कि उस समय पर्यावरण में संतुलन स्थापित करने के लिए वन, पुष्प वाटिका, पुष्परिणी एवं वन्यजीवों का संरक्षण किया जाता है।

निष्कर्ष :– उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह ज्ञात होता है कि मिथिला में देव प्रतिमाएँ विभिन्न कार्यों को सम्पादित करने वाले महानायक एवं महानायिकी का प्रतिबिंब है जिन्होंने अपने–अपने समय में प्रजा का रंजन व्यवस्थित ढंग से किया। जिसके कारण तत्कालीन समाज में चहुमुखी विकास हुआ। प्रजा में विश्वास बढ़ा, धर्म एवं अर्थ में अभिवृद्धि हुई जिसकी वजह से वर्तमान समय में इस अतीत कालीन संस्कृति की जयघोष गूंज रहा है और मिथिला अथवा पूरे भारत के लोग हर्षोउल्लासपूर्वक समय–समय पर तरह–तरह के सांस्कृतिक कार्यों में हमेशा लगे रहते है। अतः यह विवरण मिथिला के सांस्कृतिक पक्ष को एक ठोस आधार प्रदान करने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन करता है।

संदर्भ सूची :–

1. मिथिला प्राच्य प्रभा, विभागीय शोध पत्रिका, प्रा0 भा0 इ0 पुरातत्व और संस्कृति विभाग, ल0ना0मि0वि0, दरभंगा। सुचित्रा ऑफसेट एण्ड प्रिंटिग प्रेस,काली स्थान चौक, बेगूसराय, प्रथम अंक–2012,पृ0–02

2. सिन्हा, डॉ0 रश्मि – उत्तर बिहार में पुरातत्व का उद्भव एवं

विकास, जानकी प्रकाशन, अशोक राजपथ, चौहट्टा, पटना–800004, पृ0–35
3. मिश्र, डॉ0 शिव कुमार (2002ई0) – मिथिला राज्य : एक ऐतिहासिक तथ्य, सावित्री प्रकाशन, पटना–800001,पृ0–8
4. मिथिला प्राच्य प्रभा, पृ0–1
5. वहीं0
6. Thakur Upendar (1988)- History of Mithila, Mithila Institute of post -Graduate studies and research in Sanskrit Learning, Darbhanga and Printed at the tara printing works, waransi, P-4,5
7. मिश्र, डॉ0 योगेन्द्र – हिस्ट्री ऑफ विदेह, पृ0–1
8. मिश्र, डॉ0 शिव कुमार, पृ0–11
9. History of Mithila पृ0–4, मिथिला प्राच्य प्रभा पृ0–1,16, मिश्र डॉ0 शिव कुमार पृ0–13
10. अग्रवाल, वासुदेव शरण (1977ई0) – भारतीय कला, वाराणसी
11. मिश्र, जयशंकर (2003ई0) – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, कला प्रकाशन बी 33/33 ए–1न्यू साकेत कॉलोनी बी0एच0यू0, वाराणसी, पृ0–233
12. गौतम, पी0 एल0 (2014ई0)– प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, मैक्ग्रो हिल एजुकेशन, पृ0–24 ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली, अध्याय–72.8
13. अग्रवाल, वासुदेव शरण
14. जोशी, डॉ0 नीलकंठ पुरूषोत्तम (2000ई0) – प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ0–1
15. सिंह, डॉ0 विन्ध्येश्वरी प्रसाद (1999ई0) – भारतीय कला को बिहार की देन, बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद्, आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, सैदपुर, पटना–800004, पृ0–12
16. मिश्र, डॉ0 इन्दुमती (2006ई0) – प्रतिमा विज्ञान मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा, भोपाल (म0प्र0)–462003, पृ0–48
17. सत्यार्थी, एस0 एन0 (2003ई0) – पाथर पर लिखल मिथिलाक इतिहास, विस्मृत मिथिला प्रकाशन, ई/44 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, लहेरियासराय, दरभंगा (बिहार)–846001, पृ0–12
18. मिश्र, डॉ0 इन्दुमती, पृ0–63
19. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–73–108
20. मिश्र, जयशंकर, पृ0–686
21. मिश्र, इन्दुमती, पृ0–113–148, डॉ0 बी0पी0 सिंह, पृ0–174
22. मिश्र, जयशंकर, पृ0–693–708
23. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–99
24. डॉ0 बिन्ध्येश्वी प्रसाद, पृ0–177
25. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–167–170
26. सत्यार्थी, सत्यनारायण झा (2001ई0) – मिथिला की प्राचीन देवी–देवताएँ, विस्मृत मिथिला प्रकाशन, ई/44 हाउसिंग बो र्ड कॉलोनी, लहेरियासराय,दरभंगा–846001, पृ0–20
27. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–158
28. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–156–164, सिंह, डॉ0 विन्ध्येश्वी, पृ0–179
29. मिश्र, डॉ0 इन्दुमती, पृ0–313
30. सिंह, डॉ0 विन्ध्यश्वरी प्रसाद, पृ0–178
31. मिश्र, डॉ0 इन्दुमती, पृ0–253
32. सिह, डॉ0 विन्ध्येश्वरी प्रसाद, पृ0–177
33. मिथिला प्राच्य प्रभा, पृ0–60
34. वहीं, पृष्ठ–60
35. जोशी डॉ0 नीलकंठ, पृ0–42
36. सिंह डॉ0, विन्ध्येश्वरी प्रसाद, पृ0–177
37. मिश्र, जयशंकर, पृ0–735
38. मिश्र, डॉ0 इन्दुमती, पृ0–274
39. मिश्र, सुनिल कुमार (2010ई0) – मिथिला के मंदिरगढ़ और पुरातत्व, दामोदर प्रकाशन, भाया–रहिका (मधुबनी)
40. मिश्र, जयशंकर, पृ0–747
41. सिंह, डॉ0 विन्ध्येश्वरी प्रसाद, पृ0–183
42. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–139
43. मिश्र, डॉ0 इन्दुमती, पृ0–149–176
44. सिंह, डॉ0 विन्ध्येश्वरी प्रसाद, पृ0–181–183
45. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–191
46. मिश्र, जयशंकर, पृ0–826
47. मिथिला प्राच्य प्रभा, पृ0–16,124
48. पाथर पर लिखलाक मिथिलाक इतिहास (2003ई0) विस्मृत मिथिला, लहेरियासराय, दरभंगा (बिहार) 846001,पृ0–44
49. मिश्र, जयशंकर, पृ0–774
50. मिथिला प्राच्य प्रभा, पृ0–63
51. जोशी, डॉ0 नीलकंठ, पृ0–210–221

अभय चन्द्र यादव 'शोधार्थी'
प्राचीन भारतीय इतिहास पुरात्व एवं
संस्कृति विभाग, ल0ना0मि0वि0,कामेश्वरनगर, दरभंगा
मो0–7492871431

33

EMMA: A JANE AUSTEN PROTAGONIST AHEAD OF HER TIMES

Sagorika Sen,

Abstract:

The evolution of novels in English Literature is a slow and gradual process. Novels usually act as a mirror to the society. Through novels, one can actually get a close view of the social norms, customs, culture, traditions and values which the society follows. The advent of English novels began with the publication of Robinson Crusoe in 1719 and Moll Flanders in 1722. Through novels we get a glimpse of the social history. The writer pours his/ her heart out in portrayal of the characters and lives his/her own emotions, beliefs and sentiments through them. The novels of the Romantic period were chiefly based on two main themes: the gothic fiction and realistic novels on social manners. Jane Austen is considered as one of the pioneer novelists of the Romantic age. Her works have been loved by all through generations. Her novels were mostly based on rural background with everyday occurrences but what makes her far ahead of her contemporaries is the portrayal of such characters which are relatable through the ages. One such character is Emma Woodhouse from the novel, Emma. She is a timeless character with whom women through the ages have related and can still relate. This has made this novel a world classic.

Keywords:

Manners, romantic age, protagonist, educated, emma, character, match-making, realistic, modern world

Introduction:

The Romantic age in English literature emerged as an artistic and literary movement in the early 19th century. The Romantic Movement came as a strong reaction against the Industrial Revolution which completely transformed the agrarian and rural villages of Europe to urban, industrialised cities. The movement was further fuelled by the ideas of 'Liberty, Equality and Fraternity', highly popularised during the French Revolution. The romantic writers advocated the ideas of individualism, escape from the mundane reality, imagination and idealisation of nature through their writings. This period was highly dominated by poetries and gave the world the most renowned poets of British history such as William Wordsworth, Samuel Taylor Coleridge, Percy Bysshe Shelley, John Keats etc. It was believed that the true essence of romanticism could be best expressed by poems and hence poets were considered the privileged ones. Though along with poems, novels also became extremely popular during this period. A new genre of prose writing, the *Gothic fiction* came into vogue during the Romantic period. The first Gothic novel, The *Castle of Otranto* was written by Horace Walpole in 1765. Gothic novels provided the readers with stories of horror, supernatural and ghosts. They usually portrayed stories of damsels in distress that fell into trouble with something horrible and always were in need to be rescued. The settings were sinister dungeons, dilapidated castles and rugged landscapes. The most popular gothic novels of the romantic age were *The Mysteries of Udolpho* (1794) by Ann Radcliffe and *Frankenstein* (1818) by Mary Shelley. Another genre of novels which rose to fame during this period were the novels based on upper-middle class British societies and their mannerisms. Jane Austen championed this genre of novel writing and still today is one of the most widely read novelists in the world. She wrote six novels during her lifetime, of which two were published posthumously.

Jane Austen rejected the concept of sentimental novels, popularised by novelists such as Samuel Richardson and Henry Fielding as well the gothic novels. She critiqued them as escapist novels which were completely fictional and far away from the monotonous realities of life. The writings of Jane Austen revolved around the social realities and carried significance. Her novels were heroine centric and actually relatable to life. Her characters were not perfect or flat characters but showed kaleidoscopic shades of inter-twining characteristics such as pride, ego, temper, impatience, prejudice etc and committed mistakes just like commoners. Novelist Charlotte Bronte praised Austen's works saying they have neat borders and have a graceful way of confining the readers. On the other hand, renowned modern novelist DH Lawrence, called her “English in the bad, mean, snobbish sense of the word.” Her novels revolved around a small world with a small set of characters but portrayed the social norms of the entire society through her witty, humorous, satirical and ironical language. Her first novel, *Sense and Sensibility* was published anonymously in 1811. It was an epistolary novel about the life of two Dashwood sisters, Elinor and Marianne and their

journey to find love and marriage. Her second and highly acclaimed work, *Pride and Prejudice (1813)* was a commentary on British society, manners and mannerisms, education, money and marriage. What made the novel unique and different from other novels written on similar themes was the portrayal of a strong-minded protagonist, Elizabeth Bennet. This novel was even adapted as television series and film. Austen's third novel, *Mansfield Park (1814)*, was a story of a young poor girl, Fanny Price.

Her fourth novel, *Emma (1815)* is often considered as a revolutionary and an experimental novel. Critics such as John Mullan called it as a novel much ahead of its times. *Emma* is the story of a rich, independent and beautiful girl Emma Woodhouse who lives with her widowed father in Hartfield in the country village of Highbury. She declares that she would never marry anyone unless she falls in love with someone, which she finds quite unlikely as no one could match her expectations but she takes immense pride in her match-making skills and considers herself elite among her neighbours. Through this novel, Austen has given us a glimpse of the lifestyle of British gentry by using free indirect speech in her writing. The heroine, Emma is full of errors, and through the pages of the novel, the reader is made to go through her delusions and errors. Unlike the women of that time, she is not meek and gullible. She considers herself to have the best judgement and have powers to mould and reform the lives of those near her. Jane Austen had herself written about *Emma,* "I am going to take a heroine whom no one, but myself will much like"

The novel begins with the line… "Emma Woodhouse, handsome, clever, and rich, with a comfortable home and happy disposition, seemed to unite some of the best blessings of existence; and had lived nearly twenty-one years in the world with very little to distress or vex her." In this opening line itself, the omnipresent narrator gives us an overview of the protagonist. Emma is portrayed as a smug and wealthy lady with little experience of the outer world but she considers herself as a *know-it-all.* The storyline provides the readers a good laugh. As the plot develops, we get to know more about her. Emma lives with her old father. Her governess had married a rich man, Mr Weston and Emma self congratulated her for making the match. Though she had no idea what true love is neither she had ever experienced any such feeling though she believes herself capable of finding true love for other people. She befriended a simple and naïve girl, Harriet Smith of unknown parentage. Emma sets to find a suitable match for Harriet. Though it was a very kind act but through her meticulously genius writing, Austen makes her readers feel that deep inside her heart, Emma felt Harriet much inferior to herself. Match-making for Emma was just a way to pass her leisure time and it made her feel self-important. She felt herself naturally gifted in finding love for other people. To make Harriet a gentleman's wife, Emma tried to make the village vicar, Mr. Elton fall in love with Harriet through many antics. She also insisted Harriet in rejecting the marriage proposal of Mr. Martin, a farmer, as Emma considers him not fit to marry Harriet. All these efforts turned into serious blunder when instead of reciprocating feelings for Harriet, Mr. Elton got infatuated towards Emma, which left poor Harriet heart-broken and Emma, flabbergasted. This entire situation is very entertaining for the readers and quite new compared to the novels published during and prior to that period. English novels from the very beginning objectified women either as angels, who could never commit anything wrong or as fallen women, who had no place in society. There was nothing in between both. Emma strikes a perfect balance here. She has both vice as well as virtue in perfect measures and this is what a modern woman can relate to. Emma is not an evil character; she creates a mess but even learns from her mistakes. This kind of a protagonist was not created by any other writer. Earlier novelists like Richardson had created an epitome of chaste and virtuous women in novels like *Pamela* and *Clarissa.* On one hand where Pamela won the love of Mr B. through her perseverance and determination, on the other hand Clarissa starved herself to death after being raped by her suitor. This could be entertaining to read but not relatable to real life. One can hardly be a Pamela or Clarissa in the modern world but there can be an Emma found among us women.

As the story further moves forward, Austen introduces the character of Mr. Knightley, the brother of Emma's sister's husband and a close friend of the Woodhouse family. He is a matured and wise man who advised Emma multiple times on her missions of match-making and helped her passively but never dominated or humiliated her. Here again Austen created a male character much ahead of the time she was writing. Men, at Austen's times were considered superior to women in all respect and their voice was considered final but here Mr. Knightley throughout the story stood firm as a support system for Emma. He corrected her where she was wrong but also respected her intelligence. He praised he intentions and never tried to demean her for her follies. Mr. Knightley believed that Mr. Martin was a worthy husband for Harriet and reprimanded Emma multiple times over her meddling. Finally Mr. Knightley was proven

correct when the furious Mr. Elton left for the town of Bath and got married. Now Emma could do nothing but comfort the poor Harriet. Here again Jane Austen introduces a new character, a new visitor to Highbury, the handsome Frank Churchill, son of Mr. Weston from his dead wife. He was raised by his uncle and aunt in London and came to visit his father after a long time. Emma quickly realised his attentions towards her and was delighted and flattered. She enjoyed his flirtations but Mr. Knighley did not share Emma's thoughts. He found Frank suspicious and untrustworthy but Emma routs his suspicions. Everyone expected Emma and Frank to make a perfect match except Mr. Knightley. On more addition takes place in Highbury with the arrival of Jane Fairfax, granddaughter of Emma's neighbour Mrs. Bates. She is quite similar to Emma in every respect, may it be beauty, talent or education but lacked wealth. Emma immediately developed a strong dislike of Jane even without knowing her properly and Frank also agreed with her thoughts. As the story progresses, the readers find Emma's dislike for Jane grew when she found Mr Knightley being extra courteous to Jane and they could likely marry. Jane Austen writes, "She could see nothing but evil in it. It would be a great disappointment to Mr. John Knightley; consequently to Isabella. A real injury to the children-a most mortifying change, and material loss to them all;- a very great deduction from her father's daily comfort- and, as to herself, she could not at all endure the idea of Jane Fairfax at Donwell Abbey. A Mrs. Knightley for them all to give way to! - No Mr. Knightley must never marry." Here the readers can experience a very commonly felt emotion of jealousy. Before the arrival of Jane Fairfax, Emma was the sole centre of everyone's attention in Highbury and everything revolved around her. With the arrival of Jane, somewhere Emma felt uneasy. Moreover, when Mr. Knightley paid attention to Jane, for the first time in her life Emma felt insecure about losing him. Reading Emma feels like listening an actual story.

More misunderstandings ensued when Harriet believed Mr. Knightley's noble gestures towards her as love. Soon Emma dismissed Frank's advances and tried to match him with Harriet, already in love with Mr. Knightley. Mr. Knightley suspected Frank and Jane to hide something from everyone and having a secret. At last an unexpected revelation startled everyone when Frank and Jane announced that they were already secretly engaged. His attentions towards Emma were just a screen to hide his true feelings towards Jane. They were waiting for the consent of Frank's uncle and aunt. Now, with the death of his aunt and his uncle's approval, they could finally declare their relation in public. They could now marry. Emma again worried about Harriet as she thought Harriet had fallen in love with Frank but Harriet's confession came as a huge blow to Emma. When Harriet told her that she loves Mr. Knightley and thinks he too likes her, Emma could not hold her tears and broke down completely. This was the time she realised her own love for Mr. Knightley and he was the one made for her. When she met Mr. Knightley, things turned to her favour when he told her that he actually loved her. Ultimately Harriet also found her true love in Mr. Martin and accepted his proposal. The novel ends in a happy note but again strikes a bell in the minds of the readers. Most of the people in the modern world too get confused when it comes of finding true love. They too make mistakes like Emma and then learn from those mistakes. Emma is a perfect image of imperfections but the readers adore this image.

Emma is a very strong character. Her personality shows both the positive and negative traits just like a person is in his/her real life. Even the other characters shown in the book are relatable. We can easily find someone snobbish like Mr. Elton, smart like Frank Churchill and wise like Mr. Knightley around us. There are also several quotes in the book which can be applied to anyone's life irrespective of the time frame. Quotes like "There are people, who the more you do for them the less they will do for themselves, Vanity working on a weak head, produces every sort of mischief or Men of sense, whatever you may choose to say, do not want silly wives." These quotes told in various situations in the novel have idiomatic meanings and can be applied at different instances. This novel also focuses on equality between men and women even at certain parts we can even find women dominating men. The women characters are build very cleverly. Characters of Emma and Jane have a brain of their own and did not always work to oblige the society. Men on the other hand were shown as genteel, ambitious or foolish.

Emma is a novel which can be read by anyone, of any age group and find it entertaining. Virginia Woolf wrote about Jane Austen that "If Jane Austen had lived longer and written more, she would have been the forerunner of Henry James and of Proust." The October 1815 issue of The Quarterly Review represented Emma as 'a new kind of fiction.' It further added that until the 19th century, novels written were highly dramatic and sentimental with extraordinary scenes and characters and contained extremes of human behaviour and emotions but Austen's novels described the events and characters that readers will

recognise from their own experience. It is hard to make realistic depictions interesting, but that Austen succeeds, writing with 'such spirit and originality, that the readers will never miss the excitation which depends upon a narrative of uncommon events. Marina Chernysheva of Macmillan Readers reviews the book and writes, "Jane Austen is interested in personal relationships, what actually this or that person is like. Her characters are complicated and their inner world is revealing gradually. Jane Austen doesn't wish to put confusion in the minds of her readers but on the contrary she intends to show how the behaviour of people whom even we know closely can differ at times."

Emma is a novel to enjoy and brings a smile at the lips of the reader. The third person witty narrative binds the reader through the pages. It is not a novel written to thrill its readers but it's a story which is to be enjoyed along with sipping a cup of tea. The narrative is slow with long depictions of the characters but once the story catches its pace, it definitely beholds the attention of the readers.

References-

1. Austen, Jane. (1994). Emma. Introduction and Notes by Nicola Bradbury University of Reading. Wordsworth Editions Limited. Oxford. Clays Ltd, Stives plc.
2. Scott, Walter. Emma, a Novel. Review. Vol. 14, 1815, pp. 188-201
3. Austen, Jane. Emma. Richard Bentley, 1841.
4. Kohn, Denise. "Reading Emma as a lesson on 'Ladyhood': A study in the domestic Bildungsroman." Essays in Literature 22.1 (1995): 45.
5. Austen, Jane. Emma. New York: W. W. Norton and Company, 1972.
6. www.gradesaver.com
7. www.sparknotes.com

Sagorika Sen

PGT English, UPG +2 High School,

Salgawan, Hazaribagh-825302

Contact : 9852520070

e-mail : sagorikasen.sen@gmail.com

34

A STUDY ON LOK ADALATS IN INDIAN LEGAL SYSTEM.

Dr. Santosh Kumar Sharma

Abstract

Any contention resembles tumor. The sooner it is settled, the better it is for the gatherings included and the general public when all is said in done. The contention develops at an exponential rate in the event that it isn't settled at the primary stage. One debate prompts another and it is therefore better to determine it the exact second it emerges. The technique to accomplish this objective must be settled upon by both the gatherings included. The condition of vulnerability and hesitation ought to be as brief as could reasonably be expected.

The Constitution of India has characterized and announced "to secure to every one of the subjects of India, Justice-social, monetary and political; freedom; equity and society" as the shared objective for its nationals. The unceasing estimation of constitutionalism lies in the Rule of Law, which has three aspects : Rule by Law, Rule under Law and Rule as indicated by Law.

Alternated Dispute Resolution(ADR) started in the USA as an undertaking to discover contrasting options to the customary lawful framework that was viewed as ill-disposed, exorbitant, erratic, inflexible, over-professionalized, harming to connections, and constrained to limit rights-based cures rather than imaginative critical thinking. The American roots of the idea are not astonishing, given certain highlights of case in that framework, for example, trials of common activities by a jury, legal advisors' possibility expenses, absence of use in loaded with the control " the failure pays the expenses".

KeyWords: Lokadalat, alternate dispute resolution, dispute, courts, remedy.

1. Introduction

Any contention resembles tumor. The sooner it is settled, the better it is for the gatherings included and the general public when all is said in done. The contention develops at an exponential rate in the event that it isn't settled at the primary stage. One debate prompts another and it is therefore better to determine it the exact second it emerges. The technique to accomplish this objective must be settled upon by both the gatherings included. The condition of vulnerability and hesitation ought to be as brief as could reasonably be expected.

2. Methodology

Narrative and Descriptive methodologies are used by the researcher for the study.

Sources of Study

Only Secondary sources are referred for this research paper. Secondary sources are in the form of Books and Articles.

Need for Alternative Dispute Resolution

In the legitimate framework as it works in India, any wrong is viewed as an issue of course.The goal of ADR is to check prosecution blast, make the equity framework more affordable and effectively open to the unskilled and indigent. The concentration is to stay away from quarrels and build up a symphonious connection between the debating parties by settling the question throuprocedure of arbitration, mediation, transaction and the preferences. The ADR framework can never be a total other option to the ordinary arrangement of question determination. For instance, settling of criminal question should never be possible through the ADR system. There is not a viable alternative for Court choices in criminal law. Besides, it is fundamental for both the gatherings to be truly keen on tackling the debate calmly.

The Courts of law are stood up to with four principle issues which are as per the following:

1. The quantity of Courts and judges in all evaluations is alarmingly low.
2. Increase in the quantity of cases attributable to the different State and Central acts
3. The costs associated with indicting or guarding a case. The Court expense, the legal advisor's charge and the coincidental charges adds up to a significant substantial aggregate.
4. The process is exceptionally unwieldy and tedious as a result of the gigantic number of effectively pending cases.

Types of Alternate Dispute Resolution:

An extensive variety of debate anticipation and determination strategies exist in India that enable the members to build up a reasonable, financially savvy, and private gathering to determine question. All ADR[1] systems accessible in the nation can be comprehensively talked

about at two levels:

1. Those which are appropriate all through the nation and
2. Those which are accessible at the state/UT level to manage particular issues emerging under their locale.

The accompanying are models for ADR as models for use in debate redressal exist on national level:

1. Tribunals, commissions, sheets, and so forth.
2. LokAdalats
3. Arbitration
4. Conciliation
5. Ombudsman
6. Fast Track Courts

Tribunals

Article 323-B was added to the Constitution to approve the governing body to build up tribunal, commissions, locale sheets, and so forth., for the settling or trial of any debate, grievances or offenses regarding any matters.

LokAdalats

LokAdalat or the People's Courts, choose the question with most extreme undertaking to land at a trade off or settlement on the premise of standards of equity, value, reasonable play and other legitimate standards. At the point when the LokAdalat can't touch base at a bargain or settlement, the record of the case is come back to the Court, which at first alluded the case to the LokAdalats. The LokAdalat is directed by a sitting or resigned legal officer as the director, with two different individuals, for the most part an attorney and a social worker[2].

Arbitration

Settlement of debate by arbitration has been honed in India from the far off past and the legitimate writing lets us know of the old arrangement of arbitration for settling question concerning the family, or the exchange or a social group[viii]. The Constitution of India additionally commands it as a Directive Principle of State Policy that the State ought to energize settlement of universal question by arbitration.

Mediation

There isn't a great deal of contrast amongst mediation and mollification. Mediation is one of the techniques by which mollification is accomplished. Placation is basically a consensual process. Under Part III of the Arbitration and Conciliation Act, 1996, Section 61 to 81 accommodates strategy for mollification of debate emerging out of legitimate relationship, regardless of whether legally binding or not.[3]

Ombudsman

In certain casual question, an outsider ombudsperson is selected by the association to research protests inside the organization and avert debate or encourage their determination. The Ombudsperson may utilize different ADR instruments during the time spent settling disputes.

The Swedish governing body initially made the position of ombudsperson in the mid 1800s; the strict interpretation of ombudsperson is "an examiner of subject protests." This authority was thought to be a man of "known lawful capacity and extraordinary trustworthiness" and was picked by the Swedish parliament to serve a four-year term.

Fast Track Courts

The Eleventh Finance Commission prescribed a plan for formation of 1734 Fast Track Courts (FTCs) in the nation for quick transfer of the pending cases. The Ministry of Finance authorized a measure of Rs. 502.90 crores as "extraordinary issue and up gradation give" for legal organization. The plan was for a time of 5 years. The Finance Commission Division (FCD), Ministry of Finance discharged supports straightforwardly to the State Governments under the plan Of Fast Track Courts. It is the essential duty of the State Governments to set up these Courts in meeting with the concerned High Courts.

An aggregate of 1,734 such Courts are required to be set-up by the Government of India under this entirely midway subsidized plan. Quick track Courts are intended to speedily clear the epic size of pendency in the area and subordinate Courts under a period bound program.

Origin of LokAdalats

The idea of LokAdalats started in India amid the British Rule to control the voice of the general population. Presently, however this idea has been revived. It has turned out to be exceptionally well known among defendants. Studies have demonstrated that it is a standout amongst the most proficient and critical ADR instruments and most suited to the Indian condition, culture and societal interests. Camps of LokAdalats were at first settled in Gujarat in March 1982 and now have been reached out all through the country.

The LokAdalat began attributable to the disappointment of the Indian legitimate framework to give quick, successful, and reasonable equity. The advancement of this development was a piece of the methodology to calm the substantial weight on the Courts with cases pending transfer.

LokAdalats are a mix of each of the three types of customary ADR: Arbitration, Mediation, and Negotiation. They utilize appeasement, with components of arbitration given that choices are ordinarily authoritative, and are a representation of lawful decentralization as clashes

are come back to groups
from whence they began for nearby settlement.[4]

Directives and Legislation

The appearance of Legal Services Authorities Act, 1987 gave a statutory status to LokAdalats, as per the established order in Article 39-Aof the Constitution of India. The Legal administration Authorities Act was sanctioned to constitute legitimate administrations experts to give free and able lawful administrations to the weaker areas of the general public and to sort out LokAdalats to secure that the operation of the lawful framework advances equity on the premise of equivalent open door. The settlement of question by the Panchayats or tribal heads was common since antiquated circumstances. At the point when statutory acknowledgment was given to LokAdalat, it was particularly given that the honor go by the LokAdalat will have the power of announcement of a court which can be executed as a common court proclaim.

The Act is an administrative endeavor to decongest the Courts and to guarantee the decentralization of justice.

Since 1985, LokAdalats have been only composed for settlement of engine outsider cases, following the activity of previous Chief Justice of India, Shri. P. N. Bhagwati. The undertaking got a positive reaction, since both the petitioner and in addition the Insurance Company could determine benefits. The expanding number of cases in the Motor Accident Claim Tribunal (MACT) and the overabundance of pending cases squeezed the safety net provider and the legal framework to consider a fast transfer situated framework, for example, LokAdalats/Conciliatory gatherings. LokAdalat has turned into a Dispute Management Institution. It is a casual arrangement of question determination, without the procedural wrangles of standard trial. Since the Legal Services Authorities (Amendment) Act 1994 , the LokAdalat settlement is not any more an intentional idea. By this Act LokAdalat has statutory character and has been

lawfully perceived. Certain notable highlights of the Act are specified beneath[5]

LokAdalats might be sorted out at such interims and places and for practicing such locale and for such ranges as State Authority or District Authority or the Supreme Court Legal Services Committee or each High Court Legal Services Committee or, as the case may[6] require.

Structure

Each LokAdalat constituted for a zone should comprise of such number of serving or resigned legal officers; and some other person.

Ward

LokAdalat has the ward to decide and to touch base at a bargain or settlement between the gatherings to a debate in regard of any case pending earlier; or any issue which is falling inside the locale of, and isn't brought under the watchful eye of, any court for which the LokAdalat is organized.

1. (a)Any case pending under the steady gaze of any court.
2. (b)Any case not brought under the watchful eye of any court.

Permanent Lok Adalat

In 2002, Parliament achieved certain corrections to the Legal Services Authorities Act, 1987. The said correction presented Chapter VI-A. As indicated by the correction, the Central or State Authorities may set up by notice, Permanent LokAdalats for deciding issues in association with Public Utility Services.

Open Utility Services include: Transport benefit, Postal, transmit or telephone utilities, Supply of energy, light and water to open, System of open conservancy or sanitation, Insurance administrations and such different administrations as told by the Central or State Governments.

Lasting LOK ADALAT's have similar forces that are vested on the Lok- Adalats, specified under Section 22(1) of the Act.[7]

Procedure Followed in Court

The LokAdalat is typically managed by a sitting or resigned legal official as the administrator with two different individuals, an attorney and a social specialist. It has been seen through experience that cases including financial question are effectively settled through LokAdalats. Subsequently, most engine street mischance debate are conveyed to LokAdalats. The essential state of the LokAdalat is that the two gatherings in debate should agree to the settlement. It is fundamental that the gatherings associated with the question are entire heartedly engaged with the equity apportioning framework and do maintain the choice given by the LokAdalat[8].

There is no court charge. On the off chance that the case is as of now documented in the standard court, the charge paid will be discounted if the question is settled at the LokAdalat. The procedural laws and the Evidence Act are not entirely taken after while evaluating the benefits of the case introduced to the LokAdalat. The choice of the court is official on the gatherings to the question and its request is fit for execution through legitimate process. No interest lies

against the choice of the court.[9]

LokAdalat is exceptionally successful in the settlement of cash claims. Question like segment suits, harms and marital cases can likewise be effortlessly settled before LokAdalat as the degree for trade off through an approach of compromise is high in these cases. [xxv] LokAdalat is to be sure an aid to the defendant open, where they can get their debate settled quick and free of cost.[10]

Cases Suited for LokAdalat

LokAdalats have the ability to manage the accompanying cases[xxvi]:

- Compoundable common, income and criminal cases.
- Motor mischance cases
- Partition Claims
- Matrimonial and family question
- Bonded Labour question
- Land securing debate
- Bank's unpaid credit cases
- Arrears of retirement benefits cases
- Cases which are not under the purview of any Court.

Powers of LokAdalats

The Powers offered on LokAdalats are as per the following:

1. It has the energy of the Civil Court, under the Code of Civil Procedure, 1908, while attempting a suit, in regard of the accompanying issues:- [xxvii]

a) Power to summon and authorize the participation of any witness and to look at him/her on pledge.
b) Power to authorize the revelation and creation of any archive[11]. c) Power to get confirm on sworn statements,
d) Power for demanding of any open record or report or duplicate thereof or from any court.
e) Such different issues as might be recommended.

2. Every LokAdalat should have the ability to indicate its own methodology for the assurance of any question preceding it.
3. All procedures previously a LokAdalat might be regarded to be legal procedures inside the importance of Sections 193, 219 and 228 of IPC.
4. Every LokAdalat should be considered to be a Civil Court with the end goal of Sec 195 and Chapter XXVI of Cr.P.C[12].

Finality of the LokAdalat Award

Amid the LokAdalat, the gatherings consent to submit to the choice of the judge at the LokAdalat. Be that as it may, it has been seen that a similar request is tested on a few grounds. In one of the current cases, the Supreme Court of India has by and by let go every single such uncertainty. In unequivocal terms, the Court held that the honor of the LokAdalat is on a par with the declaration of the Court. The honor go by the LokAdalat is simply the choice of the Court however touched base at by the less difficult strategy for placation rather than the procedure of contentions in court[13].

Assent of Parties

The most critical factor to be considered while choosing the cases at the LokAdalat is the assent of both the gatherings. It can't be constrained on any Gathering that the issue must be chosen by the LokAdalat. [xxxii] However, once the gatherings concur that the issue must be chosen by the LokAdalat, at that point any gathering can't leave the choice of the LokAdalat. In a few occasions, the Supreme Court has held that if there was no assent, the honor of the LokAdalat isn't executable and furthermore if the gatherings neglect to consent to get the question settled through LokAdalat, the normal prosecution process stays open for the challenging gatherings.[14]

The Supreme Court has likewise held that bargain is constantly two-sided and implies common modification. Settlement is end of legitimate procedures by common assent. In the event that no trade off can be landed at, at that point no request can be passed by the LokAdalat.

3. Suggestions and Conclusion

The unique conditions winning in the Indian culture require an exceptionally sharpened lawful administration which is viable for poor people and the down- trodden. The LokAdalat system is no more an investigation in the nation, it is indeed, a full-demonstrated achievement that requirements to build its space and bring under its domain the few perspectives that have been avoided till date. LokAdalats can be seen as an instrument to social change also.,"LokAdalat has the potential for social recreation and lawful activation for social change. It can impact the style of organization of equity and the part of the legal counselor and judge in it.

It can take law nearer to the life of the general population and lessen uniqueness between law in books and law in action." The requirement for LokAdalats is bothered by the tremendous populace of India that makes an unmanageable weight on the Judiciary framework. To expand the proficiency of the arrangement of LokAdalats, it is essential for people in general, the legal counselors, the official and the Judiciary to work in amicability and coordination. The general population ought to be made mindful of the upsides of the LokAdalats. The fundamental test that lies in the way of the accomplishment of Judiciary is the contribution of the majority. In the current circumstance,

the fall back on LokAdalats has empowered neighborly question settlement. The achievement of LokAdalats ought to for sure be measured by the general air created in the nation, not by the number and nature of LokAdalat held, cases settled or remuneration.

Dr. Santosh Kumar Sharma
M. COM, MBA, LLB, WITH PhD; LLM.
H.No. 5113, Sec-03, Ballabgarh,
Faridabad, Haryana
Mo.-9899882948
santosh.sharma2013@gmail.com

35

Marxist Elements in Jane Austen's Pride and Prejudice

Mr. Roshan Lal

Abstract :

Jane Austen who is acclaimed as the prominent figure in the history of the art of fiction, widened the scope of fiction in almost all its directions. Jane Austen is considered as a Marxist before Marx. She discussed the importance of economic conditions in matter of human life. In Pride and Prejudice, even the first sentence of the novel emphasizes the Marxist perspective about money's influence on a man's goal to find a suitable wife and vice versa. This novel is concerned with the patriarchal society of England in which men held the social and economic power. The objective of this article is to evoke a vision of society as governed by the values of market place where human relations are threatened by an excessive emphasis upon money and status. The Marxist features and matrimonial issues especially regarding women world would be analyzed in the light of feminism psychoanalysis of characters according to altitudes of late 18th and early 19th century. Pride and Prejudice illustrates a number of specific lessons and teaches one larger, more general lesson that applies to many challenges in life : the importance of knowing yourself and what you need, and remaining true to your principles even when it is easy to go in different way. Throughout the novel, the strong themes of prejudice, reputation and class are explored as the romance between Elizabeth Bennet and Mr. Darcy develops.

Keyword : Marxism, economy, society, Matrimony, feminism.

Jane Austen is acclaimed as the prominent figure in the history of the art of fiction. She widened the scope of fiction in almost all its directions the epithets as “two inches of ivory” or “Ivory Towered” employed by the critics indicate the perfection attained by her small world of the country bourgeoise. It is said that Jane Austen was a Marxist before Marx. Karl Marx (1818-1883), a German philosopher and socialist of the 19th century who co-authored with Fredrich Engels “The communist Manifesto” in 1848. Political and economic theories presented by him are given the name of “Marxism”. He showed that all social systems are economically motivated.

Maxism is concerned with understanding texts in a social and historical context. Literature and art are considered as part of the ideology and capable of reflecting it and its conflicts. Marxist approach to literature tends to be developed the models of economic and political change that Marx and Engels have devised, rather than on the things they said about literature as such. There is thus much attention given to the modes of production, to the relation between economic base and ideological superstructure and to the significance of power and hot it expresses class oppression. The large understanding of class oppression will undoubtedly leads to the understanding of gender oppression, thus creating an obvious connection between Marxist and Feminist Criticism.

There were various influences on early Marxist thinking in addition to that of the political experiences of its founders, including the works of the 18th century German philosopher Hegel. Marxism also built upon the socialist thinking which was produced in France at the time of the French Revolution, and its inverted some of the ideas of early economic theory, especially the view that the pursuit of individual economic self-interest would bring economic and social benefits to the whole of the society. As we have Kate Millet's Sexual Politics and her claim that ideological indoctrination and economic inequality are the cause of women's operation, Elaine Showalter's 'Gynocriticism' a field of the feminist activity which deals with the distinctive themes, structures and geners of women writing, the nature of female language, and the historical problems facing women as writer's and the Marxist feminism which “Sought to extend” Maxism's analysis of class to a woman's history of her material and economic oppression.

Jane Austen presented some of Marxist ideas in her novels. She discussed the importance of economic conditions in matter of human life. In 'Pride and Prejudice, Mrs. Bennet is the height of Marxism since her singular goal is to marry off all her daughters to wealthy men. As the first sentence of the novel emphasizes a Marxist perspective about money's influence on a man's goal to find a suitable wife and vice versa. As W.A. Carlk says :

“It is a truth universally acknowledged that a single man in possession of a good fortune must be in want of a

wife".[1]

But Dorothy, another writer, changes this sentence into a new version. "A single woman must be in want of a man with good fortune."

So it is natural that Jane Austen's novel starts with the importance of economy. In the age of Jane Austen there were no any insurance schemes or banks or any pension etc. So the people wanted to marry in the high families so that their future may be secured. The only source of having financial comfort for a woman was marriage in a rich family.

Pride and Prejudice is concerned with the social fabric of late eighteenth and early nineteenth century England, a patriarchal society in which men held the economic and social power. In an often satirical portrait of the men and women attempting to gain livelihood, Austen subtly and ironically points out faults in the system, raising questions about the values of English society and power structure of the country. At the same time Jane Austen reflects the 18th century view that man is primarily a social animal and has responsibilities to the rest of the society. The individual must subordinate his feelings and needs to the larger purposes of the society of which he is a part.

This novel focuses on Elizabeth Bennet, an intelligent young woman with romantic and invidualistics ideals, and her relationship with Mr. Darcy, a wealthy gentlemen of very high social status. At the outset of the novel, Elizabeth's loud and dim-witted mother, her follish younger sisters and her beautiful older sister Jane are very excited because a wealthy gentlemen, Mr. Bingley, is moving to their neighborhood.

As Jane reveals in her enumeration of Bingley's virtues, "He is sensible, good humoured, lively …… has happy manners. So much ease with such perfect good breeding."[2]

The central theme of the story reflects all the major attributes of evolutionary social development described as they express through the institution of marriage. Elizabeth and Charlotte often discuss the probability of Jane's marriage with Bingley. Elizabeth is happy that Jane makes no great display of affection but Charlotte feels that to be so very guarded could disadvantages. "If a woman conceals for affection with the same skill from the object of it, she will lose the opportunity of fixing him, and it will then be but poor consolation to believe the world equally in the dark." [3] It is very seldom found that love grows even without enoucragement. As several views are expressed about marriage. Lydia wants to find sexual pleasure, Jane and Elizabeth both want to marry for love and position.

We see how important it is to get the five girls married because Mr. Bennet's property is entailed so that at his death it must go to a male cousin. Consequently, this makes it even more imperative that each of the girls be well settled before Mr. Bennet's death. With such economic insecurity, it is not difficult to realize the preoccupation of Mrs. Bennet with the problem of finding husbands for her daughters or to appreciate the moral courage shown by Elizabeth, when she turns down seemingly attractive marriage proposals offering economic security. As Elizabeth's plight is what that she must find a man who is at least her equal in intelligence and sensitivity, who can give her an appropriate social and economic position and who does not object to making a disadvantageous alliance.

For Elizabeth, the only potential suitable mate is Darcy, but at the time of his first proposal Elizabeth neither likes and nor respects him. Since she sees marriage primarily as a means to personal happiness, this is an enormous obstacle. As Elizabeth makes a grand marriage, one which indicates her worth and carries with it all of the glories so vulgarly celebrated by her mother.

"And is it really true? Oh! My sweetest Lizzy! How rich and how great you will be! What Pin money, what jewels, what carriages you will have! Jane's is nothing to it – nothing at all. I am so pleased – so happy ……. Dear, dear Lizzy. A house in town! Everything that is charming! ….. ten thousand a year!"[4]

It is true, as many critics have observed, that 'Pride and Prejudice' evokes a vision of society as governed by the values of the market place. Human relations, and especially the marriage relation, are threatened by an excessive emphasis upon money and status. It should be noted, however, that this debasement of social institutions and interpersonal relationship is more of a threat and an object of satire than a triumphant reality in the world of the novel. There is one marriage which is motivated by socio-economic consideration – that of Charlotte and Mr. Collins. When Charlotte accepts Collins, Elizabeth feels that she has "Sacrificed every better feeling to worldly advantage".[5]

As far as marriage is concerned, Jane Austen seems attach more importance to love, less to money in marriage. The conversational norm of time is adhered to if Mr. Darcy marries Miss Bingley or Miss Catherine de Bourgh. But it is poor Elizabeth Bennet who is married to him. Pemberely House for Elizabeth does not stand for mere wealth or material possessions. She has already known about the riches of Mr. Darry First Elizabeth was in no mood to see

great houses ; 'She must own that she was tired of great houses; after going over so many, she really had to pleasure in fine carpets or stain curtains." But her aunt, Mrs. Gardiner, informs her that the house stands for greatness of art and genius; it has excellent natural beauty.

"If it were merely a fine house richly furnished. I should not care about it myself, but the grounds are delightful. They have some of the finest woods in the country".[6]

'Pride and Prejudice' traces the courses of Pride and Prejudice which seem continually to run into each other under stress of circumstances and inclination, giving rise to a series of entanglements for which the characters concerned seem unprepared. It is this aspect which makes for suspense in the novel, while it brings into being multiple perspectives from which the characters behaviour can be assessed. It is therefore, necessary not to identify pride and prejudice with individual characters – Darcy and Elizabeth – since they are found functioning in the consciousness of both. However they are shown to have originated in different sets of factors identifiable with the characters' endowments and inheritance. This is quite obvious when we study Darcy's confession to Elizabeth.

"As a child, I was taught what was right; but I was not taught to correct my temper. I was given good principles, but left to follow them in pride and conceit Unfortunately, an only son I was spoiled by my parents who though good themselves……allowed, encouraged, almost taught me to be selfish and overbearing – to care for none beyond my own family circle, to think meanly of all the rest of the world".[7]

Darcy's career through the novel brings out the different phases of the process of transvaluation needed for experiencing true love – phases that concide with his growing preoccupation with his inner feelings, characterized by a sense of guilt growing at his heart which does find a parallel in Elizabeth's case. This happens because of the rebuff that he receives on each occasion when he makes his overtures to her. What emerges from it is not merely a battle of sexes but a class of strong personlities conceived and developed in terms of "Critical antitesis"[8] to the traditional figures of romance. Fairly early in the novel the lines of conflict are clearly indicated, as the following dialogue between Elizabeth and Darey brings out.

'There is, I believe, in every disposition a tendency to some particular evil, a natural defect, which not even the best educated can overcome'.

'And your defect is propensity to hate everybody'.

'And yours', he replied with a smile, 'is willfully to misunderstand them'.

'Do let us have a little music,' cried miss Bingley."[9]

There is a definite pattern in relationships between characters what wickham does for Elizabeth, Miss Bingley does for Darcy : Miss Bingley, another hypocrite while displaying Darcy's wit and right thinking, makes him seem a desirable party, just as Wickham's attention are proof of Elizabeth's Chasm.

Bingley and Jane, as well as being like each other, each performs a similar function towards Darcy and Elizabeth. Intelligent and right thinking, both reveal the greater intelligence and subtlety of more important character. The exchange between the two men at Netherfiedd establish – as Jane Austin has already remarked that Bingley was by no means deficient by Darcy was clever.

"Upon my honour, I believed what I said of myself to be true, and I believe it at this moment. At least, therefore, I did not assume the character of needless precipitance merely to shew off before the ladies.

'I dare say you believed it, but I am no means convinced that you would be gone with such celebrity. Your conduct would be quite as dependent on chance as that of any man I know and if as your were mounting your horse, a friend were to say, "Bingley you had better stay till next week". You would probably would do it.[10]

The first aversion of Elizabeth for Darcy was inevitable because of the circumstances in which they met, because Darcy was proud of his social position and Elizabeth encumbered by her unpresentable family and because they were people of such decided character that they were certain to dislike each other at the beginning. Elizabeth is true to the candour of her mind in believing Darcy to be cold, haughty and vindictive; she is equally true to it later in acknowledging that she is mistaken and in changing her opinion. The action is created here by those characters who remain true to themselves, it is their constancy which, like a law of necessity, sets the events moving, and through these they gradually manifest themselves.

"The correspondence in a novel of this kind between action and the characters is so essential that one can hardly find terms to describe it without appearing to exaggerate, one might say that a change in the situation always involves a change in the characters, while every change, dramatic or psychological, external or internal, is either caused or given its form by something in both….."[11]

The economic determination of Jane Austen is of the type which one usually associates of a landed aristocracy

or gentry. The social standards are almost entirely those of money and snobbery. It is remarkable to what an extent the plots and characters are dominated by questions of money. The axis of the plot in this novel is money and marriage or rank or marriage. The social standard, ideal and duty of a woman is assumed to be to marry as high as possible and we know on Mrs. Bennet's evidence that, according to the tariff, 10000 a year was as good as a lord. The only standard in the novel which competes a lord. The only standard in the novel which competes with money is snobbery. It is time that this snobbery is a favourite subject of Jane Austen.

Marxist literacy criticism maintains that a writer's social class, and its prevailing ideology have a major bearing on what is written by a member of that class. So instead of seeing authors as primarily autonomous, the Marxist sees them as constantly formed by their social contexts in ways in which they themselves would usually not admit. This is true not just of the content of their work but even of formal aspects of their writing which might at first seem to have no possible political overtimes. The traditional Marxist criticism tends to deal with history in a fairly generalized way. It talks about conflict between social classes and clashes of large historical forces, but contrary to popular belief, it rarely discuses the detail of a specific historical situation and relates it closely to the interpretation of a particular literary text. As Newton implies, "this suggest one of main differences between the Marxist Criticism of the 1960s and 1970s and the cultural materialist and new historicist criticism which came to the fore in the 1980s, since the latter very often dealt closely with specific historical documents, attempting, in an almost archaeological spirit, to recreat the "State of mind" of a particular moment in History".[12]

Lenin also argued in 1905 that literature musty become instrument of the party, 'Literature' he said, "must become party Literature….. Literature must become the part of the organized, methodical, and unified labours of the social democratic party".[13] A 'Vulger Marxism' of 1930s, a direct cause-effect relationship between Literature and economics was assumed, with all writers seen as irrevocably trapped within the intellectual limits of their social class position. An example of such rigid king of Marxist literary criticism is Christopher Caudwell's Illusion and Reality (Written in 1930 and published in 1946). Coudwell's writing is both very generalized, in the sense that there is little detailed textual reference to the works under discussion, and very specific that a writer is linked to some aspect of her or his social status.

The fictional world of the writers as Balzac, Tolstory or Jane Austen accords with the Marxist conception of the real world as constituted by class conflict, economic and social "Contradictions". The Italian communist Antonio Gramsci, while imprisoned of the fascist government, wrote approximately thirty documents between 1929 and 1935. These documents were based on political, social and cultural subjects, known as the "Prison notebooks". Gramsci maintains the original Marxists distinction between the economic base and the cultural superstructure, but replaces the older notion that culture is a disguised "reflection" of the material base with concept that relation between the two is one of "reciprocity" or interactive influence. A leading theorist of Marxist Criticism in England is Terry Eagleton, who has expanded and elaborated the concepts of Althusser and Macherey into his view that a literary text is a special kind of production in which ideological text is a special kind of production in which ideological discourse – described as any system of mental representation of lived experience, is reworked into a specifically literacy discourse. In recent years Eagleton has been increasingly hospitable to the tactical use, for dealing with ideology in literature. Marxist criticism seems to conflict in its basic assumptions with those of post structuralism and post modernism and the most significant Marxist writing in 1980s and 1990s had involved a process of intricate interaction with these movements.

So it is true to say that traditional Marxist Criticism tends to deal with history in a fairly generalized way. As far as the social background of England in 18th century is concerned, ladies were often entangled in matrimony by force or trickery. Girls of beauty and fortune were often abducted and married by force. Marriages of a more lawful kind were generally conducted on business principles. They were settled and arranged by parents and guardians, who were guided by profit motive as elaborated by Jane Austen in Pride and Prejudice.

REFERNECE

1. Dr. S.Sen, Pride and Prejudice : A Critical Evaluation, Unique Publication New Delhi, 2010, 299.
2. Ibid, P. 112
3. Ibid, P. 114
4. Bernard J.Paris, Character and conflict in Jane Austen's novels (The Harvester press Ltd.), P. 101-102.
5. Ibid, P-104
6. Atma Ram, Woman as a novelist : A study of Jane Austen,

(Doaba House, new Sarak Delhi, 1989), P. 68.
7. Jane Austen, Pride and Prejudice (London : OUP, Repr. 1971), The World's classics) P. 357
8. F.B. Pinion, A companion to Jane Austen, P. 96
9. T. Vasudeva Reddy, Janme Austen : The Dialectics of Self Actualization in her novels, Sterling Publishers Pvt. Ltd., 1987, P./ 39.
10. Jane Austen : The Six novels. (Published 1813), P. 74
11. Judith O' Neill, Critics on Jane Austen (George Allen & Unwin Ltd., 1970), P. 30
12. Peter Barrey, An Introduction to literary and cultural theory (Manchester, New York, 2002), P. 158.
13. Ibid, P. 159

Roshan Lal
Asst. Prof. (English)
JUMGRR College
Ch. DADARI, (Haryana)
9466079813

36

`TRAUMA AND MEMORY IN A PALE VIEW OF HILLS BY KAZUO ISHIGURO

Nisha Kumari

Abstract :

Memory and trauma are recurrent theme in Ishiguro's *A Pale View of Hills* (1982). The memory of the narrator helps in establishing identity of the characters. Almost all the characters are traumatized by the war. Ishiguro uses trauma to show the fragmentation not only in the buildings at that time in Japan but also the fragmented psyche of man and the traditional Japanese values which were getting fragmented then. Memory functions as constructing identity because it is through the use of flashbacks that the whole story is portrayed. The characters suffer immense trauma which also affects their identity. The modern world faces immense problems due to identity crisis. Thus, the article focuses on how the theme of memory and trauma are brought in the novel.

Keywords: memory, trauma, narrative, psyche, unreliability

Ishiguro is one of the most renown author of the contemporary literature. He has published seven novels as yet. His recent novel **Klara and the Sun** will be published in March 2021. His novels portray that he has been deeply inflicted by World War II. He was born in Japan in 1954. His father, an oceanographer shifted to England when he was 5 but never returned. Ishiguro's mother was also a victim to the World War II. The atomic bomb which was dropped in Japan in Hiroshima and Nagasaki on Aug 6, 1945 at 08:15 am and Aug 09, 1945 at 11:02 am respectively. These bombs caused unimaginable damage in the city. It traumatized the people both emotionally and mentally.

A Pale View of Hills (1982) portray vivid pictures of devastated Nagasaki where the buildings are demolished and the citizens are yet in mental devastation because of their losing of their near and dear ones. The novel's protagonist, Etsuko is a Japanese who settled in England later. She is no doubt a victim of the War. She lives with her Japanese husband Jiro in an apartment in Nagasaki which was newly built. She describes the vast open ground just in front of her block in the novel. She says:

"My husband and I lived in an area to the east of the city, a short tram journey from the centre of town. A river ran near us, and I was once told that before the war a small village had grown up on the riverbank. But then the bomb had fallen and afterwards all that remained were charred ruins. Rebuilding had got under way and in time four concrete buildings had been erected, each containing forty or so separate apartments.Of the four, our block had been built last and it marked the point where the rebuilding programme had come to a halt; between us and the river lay an expanse of wasteground, several acres of dried mud and ditches. Many complained it was a health hazard, and indeed the drainage was appalling. All the year round there were craters filled with stagnant water, and in the summer months the mosquitoes became intolerable." (Ch 1, p.11)

The city after the War is shown to be busy with rebuilding its charred ruins. The characters in the novel are especially traumatized by the War. Though new buildings were being reconstructed in Nagasaki and Hiroshima but the trauma that the War caused leading to the death of their relatives was still lingering in their memory. Etsuko also never mentions her family which infers that her family members perhaps passed away in the War. Then, she had to live in the house of Ogata San, whose son Jiro she later marries. She also played violin at that time during night like "a mad girl". She was very traumatized by the War. In a conversation with Ogata San, when Etsuko asks:

"What was I like in those days, Father? Was I like a mad person?"|

"You were very shocked, which was only to be expected. We were all shocked, those of us who were left. Now, Etsuko, let's forget these things. I'm sorry I ever brought up the matter." (Ch 1, p.58)

Ishiguro uses flashbacks diligently. Etsuko is haunted by her past memories after the death of her elder daughter Keiko- the daughter by her Japanese husband who committed suicide. It may be because the unexpected death of her daughter raised a question on her motherhood. So, these memories infact depict the unresolved issues and unfulfilled desires. They are also a way of justifying herself. The episode of Etsuko's friend Sachiko is a clear example of how she justifies her present through her past actions. Even Etsuko left Japan and her Japanese husband Jiro and settled in England. She times and again justifies her leaving of Japan when she talks to Niki, her younger daughter from her

English husband when she says:

My motives for leaving Japan were justifiable, and I know I always kept Keiko's interests were justifiable, and I know I always kept Keiko's interests very much at heart. There is nothing to be gained in going over such matters again. (Ch 6, p. 91)

Though she left Japan so that she can give a promising future to her daughter Keiko. She later married an Englishman with whom she had her younger daughter Niki. But the suicide of Keikoand her strained relations with her both the daughter obviously raises questions on her motherhood for which she gives grounds for Sachiko's continuous remarks about her when she takes care of Mariko-

"How kind you are," Sachiko said again. Then she smiled once more. "**Yes, I'm sure you'll make a splendid mother**." (Ch-1 p. 15)

It is only at the end of the novel that Etsuko confesses her feelings in front of Niki:

"But you see, Niki, I knew all along she wouldn't be happy over here. But I decided to bring her just the same". (Ch 11, p. 176)

One of the characters in the story Mrs. Fujiwara, neighbour of Etsuko also lost her four children and her husband in the War, leaving only herself and her eldest son alive. She now runs a small noodle shop so that she can relieve herself from the memory of the dead. She often advises Etsuko to "keep [her] mind on happy things" (A Pale View of Hills, Ch-1 pg 24). Even the younger character, Mariko Sachiko's daughter who is merely 10 years old is severely traumatised by the War. She is quite grieved by her mother's shifting to America with her American boyfriend Frank who, she believes "*pisses like a pig*" (p.85)

. She does not go to school. Her mother is quite neglectful towards her because of which she often behaves wild. Mariko often complains of seeing illusion of a strange woman who according to Sachiko is the woman who drowned her baby in Tokyo when she was merely five years old and then herself committed suicide.

She killed herself. They said she cut her throat. I never knew her. You see, Mariko went running off one morning. I can't remember why, perhaps she was upset about something. Anyway she went running off out into the streets, so I went chasing after her. It was very early, there was nobody about. Mariko ran down an alleyway, and I followed about her. There was a canal at the end and the woman was kneeling there, up to her elbows in water. A young woman, very thin. I knew something was wrong as soon as I saw her. You see, Etsuko, she turned round and smiled at Mariko. I knew something was wrong and Mariko must have done too because she stopped running. At first I thought the woman was blind, she had hat kind of look, her eyes didn't seem to actually see anything. Well, she brought her arms out of the canal and showed us what she'd been holding under the water. It was a baby. I took hold of Mariko then and we came out of the alley." (Ch-5 p.74)

There is a parallel between Sachiko and Etsuko. Both of them have their own reasons for leaving Japan but both fail to achieve their objectives because of their daughters Mariko and Keiko respectively. Mariko seems to be mentally unstable prior the havoc of bomb blast whileKeiko finds herself hard to settle in Britain. Etsuko seems to have constructed the story of her friend Sachiko and

Mariko in order to bring out her guilt on the strained relationship with her daughters.

On asking Ishiguro he explains,

"it's really Etsuko talking about herself, the meanings that Etsuko imputes to the life of Sachiko are obviously the meanings that are relevant to Etsuko's own life. Whatever the facts were about what happened to Sachiko and her daughter, they are of interest to Etsuko now because she can use them to talk about herself."

Further more, he adds, "the whole narrative strategy of the book was about how someone ends up talking about things they cannot face directly through other people's stories. I was trying to explore…how people use the language of self-deception and self- protection." (Mason, 1989:337)

A number of critics have also identified similarity between Sachiko- Mariko and Etsuko's story. On reading *A Pale View of Hills* in reference to Blanchot's notion of self-dispossession, Cynthia F. Wong says:

in working through the meaning of her dead daughter's life, Etsuko situates her tale in Nagasaki and focuses on a strange and enigmatic friendship with another woman named Sachiko, whose own daughter's actions seem to foretell the suicide of Etsuko's daughter years later (Wong, 1995: 129).

Mrs. Fujiwara also narrates the incident of a young pregnant woman who visits the cemetery regularly. She disapproves of the woman as she thinks that it is a "shame" to think of the past. She says:

"*There's a young woman I see every week," Mrs Fujiwara went on. "She must be six or seven months pregnant now. I see her every time I go to visit the cemetery. I've never spoken to her, but she looks so sad, standing there with her husband.*

*It's a shame, a pregnant girl and her husband spending their Sundays thinking about the dead. I know they're being respectful, but all the same, I think it's a shame. They should be thinking about the future." (*Ch-2 p. 25)

Etsuko was pregnant that time with Keiko and it is Mrs Fujiwara who often infuses her with optimism. She advises her

"You've everything to look forward to now, Etsuko. What are you so unhappy about?".

"Unhappy? But I'm not unhappy in the least."

She continued to look at me, and I laughed nervously."Once the child comes," she said, "you'll be delighted, believe me. And you'll make a splendid mother, Etsuko." (Ch-5 p.77)

Trauma is presented through the use of memory. The narrator Etsuko looks back upon the past and paints the traumatised Nagasaki with its people in one of the most realistic ways. The situation can be related to Ishiguro's real-life incidents as well. Ishiguro admits to Maya Jaggi that he '*felt compelled'* to mention about Japan from his memories as he had heard in his childhood which he did in his earlier novels. (Ishiguro, Maya Jaggi 24)

The unreliability of Etsuko's memory can be seen in various incidents in the beginning of the novel, when she starts narrating the episode of Sachiko and her daughter Mariko, she addresses Sachiko as *"someone I (she) knew once. A woman I knew once*". (Ch-1 p.10)

These lines clearly give the ideas to the readers that Etsuko is not sure about the Sachiko. Infact, she does not even address Sachiko as a *friend* but rather as *a woman.* This is an indication that Etsuko uses Sachiko as an instrument to bring her guilt out and to bring the other aspect of her character which she constantly tries to hide.

She even admits later in the chapter

Memory, I realize, can be an unreliable thing; often it is heavily coloured by the circumstances in which one remembers, and no doubt this applies to certain of the recollections I have gathered here. (Ch-9 pg 156)

The gaps and omissions give readers enough space to give varied response and interpretation to the novel. The troubled Etsuko, her story of her friend Sachiko, the view of Ogata San on democracy all point towards the changing Japan not only in its newly constructed buildings but also in the form of ideas which he regards are passing.

Discipline, loyalty, such things held Japan together once. That may sound fanciful, but it's true. People were bound by a sense of duty. Towards one's family, towards superiors, towards country. But now instead there's talk of democracy. You hear it whenever people want to be selfish, whenever they want to forget obligations. (Ch-4 p. 65)

Ishiguro is a wonderful writer who uses memory to show the characters who were traumatized. The narrator though has moved away from her homeland but there are repressed memories which often traumatize her. She couldn't leave the terrorized past behind but instead is agonized by those incidents even in the present.In an interview with Adam Smith, Chief Scientific Officer of Nobel Media on Oct 05, 2017 when asked about the themes of his novels, Ishiguro replies:

"…One of the things that's interested me always is how we live in small worlds and big worlds at the same time: that we have a personal arena in which we have to try and find fulfillment and love, but that inevitably intersects with a larger world, where politics, or even dystopian universes, can prevail. So I think I've always been interested in that. We live in small worlds and big worlds at the same time and we can't … forget one or the other."

Conclusion:

Thus, the trauma and memory are woven meticulously in the novel. The characters use their memory in the form of flashbacks and portray the trauma that give the novel a universal concern and thus every human being can relate with these aspects of life. It helps the readers to enjoy the literary work by looking at these aspects simultaneously.

References-

A Pale View of Hills. 1982. London: Faber and Faber, 1991.

Jaggi, Maya (1995), "Interview: Kazuo Ishiguro talks to Maya Jaggi", Contemporary Literature, Vol 11, No 22

Mason, G (1989), "An Interview with Kazuo Ishiguro," Contemporary Literature, 30, 335-47.

Wong, C.F. (1995), "The Shame of Memory: Blanchot's Self- Dispossession in Ishiguro's *A Pale View of Hills," CLIO*, 24, 127-45

www.nobelprize,org> literature>in

Nisha Kumari
Research Scholar
Ranchi University, Ranchi
Phone No- 09234268233
Mail- nisha.str88@gmail.com

37

Frauds and Financial irregularities in Indian Banking System: An analytical study

Nisha[1] Dr. Seema Dahiya[2]

Abstract :

In Indian banking system, giving loans and large amount transactions starting from mid 18th century. It is beneficial for economic growth if transactions are done honestly and in a bonafide manner. Due to failure, banks are facing problems in recovery of loans and fluctuating non-payment assets since last two decades. If the bank money is locked with some defaulters, then it prevents the money from being used by thousands of other who could put it to productive use. Therefore, recovery of loans becomes important for the banking sector. The person may use mal practices to obtain money which will be the easiest way to commit a fraud. The frauds have been increased in Indian banks with the liberalization of the economy which started in 1990. And at that time no effective steps were taken to prevent frauds. As time passed there was a tremendous increase in the frauds in Indian banks. . Harshad Mehta and Ketan Parekh were the well known people who were indulged in banking frauds. They represented how a middle class person can think to get rich in short term by playing around with the existing rigid systems. Since 2000, there had been approximately 2085 frauds reported to the Reserve Bank of India. As on 31st March 2018, Indian banks' Gross Non-Performing Assets or Bad Loans stood at Rs. 10.25 lakh crore. A recent estimate by Reserve Bank of India in 2018-2019, is over 6800 cases of bank fraud involving an unprecedented Rs. 71500 crore have taken place in the country, due to which the country's banking system had suffered a lot.

Keyword: Indian Banking system, Frauds and Scams, NPA (Non-Performing Assets), legislation.

In the banking sector, the non- performing assets (NPA) by lenders create threats to the existence of the banks. The banking system of any country comprises of the small savings of the people. When a large number of people deposit their money into banks, it becomes the responsibility of the bank. Commercial bank lends this money to traders, institutions and individuals in turns to earn profits in the form of interest. Banking fraud has been continuing since 1992, when the financial fraud started with Harshad Mehta for non-professional safety management in banks.

From cricket event organizers, liquor barons to diamond merchandisers all have been accused of multi crore scams and the tendency of suddenly leaving the shores of India. The data assumes significance as banks are grappling with high profile fraud cases involving absconding billionaire Nirav Modi and liquor baron Vijay Mallya among other. The famous cases which shook the entire banking system includes PNB bank scam, Airlines kingfishers scam, Allahabad bank scam, Rotomac Pen scam, kanishka Gold Pvt. Bank scam, RP info system bank scam, Simbhaoli Sugar Mills bank scam, Harshad Mehta Scam, Ketan Parekh Scam, Indian Bank Scam (Gopala Krishnan case), Winsome Diamonds scam and PMC Bank Scam. Recently, Sterling Biotech bank fraud is highlighted by the Enforcement Directorate. The Enforcement Directorate agency said that it has issued an order of attachment of assets worth Rs.9778 Crore. On June 27, 2017, the ED attached several properties of sterling Biotech promoters. The probe agency said that the sterling group promoters not only siphoned off these loan funds to finance their Nigerian oil business but also used the money for their personal use. Recently RBI founded Yes Bank's failures to raise new funding to cover its NPAs, inaccurate statements of confidence in its ability to receive new funding. On 8 March 2020, the Enforcement Directorate arrested Rana Kapoor, the founder of Yes Bank under the charges of Money Laundering. The CBI searched and founded Yes Bank Scam pertaining to the Rs. 600 crore alleged bribe to the family of its co-founder Rana kapoor by DHFL.

Definition of Fraud

Oxford Dictionary describes 'fraud' as criminal deception, use of false representations to gain unjust advantage, by dishonest artifice or trick.

[3] "Which are the biggest banking scams in India? By Hemant Singh, July 10 2018 from Jagranjosh.com

[4] www.thehindu, updated on June 03, 2019

[5] https://m.businesstoday.in

[6] https://m.businesstoday.in , updated: June 26, 2019

[7] www.en.m.wikipedia.org/wiki/Yes_Bank

[8] https://www.bloombergquint.com>...

According to Ghosh committee report in 1990, Bank fraud

may be committed by the employees of the bank or by the employees of the bank in collusion with the outsiders and also by outsiders. But now, there is no limit and anyone who is smart enough to outwit the bankers and the bank can indulge in a bank fraud.

The Study of some Bank frauds and scams

The Pay-Off Scandal / Security Scam (1993)

In 1990, Harshad Mehta had risen to prominence in the stock market. He had been buying stock heavily. The shares which attracted his attention were: Apollo Tyres, Reliance, Tata Iron and Steel Company, BPL, Videocon and Associated Cement Co. (ACC). He manipulated the stock market rate by lobbying and the share prices rose tremendously. Due to which many people lost their life saving. His illicit methods were exposed on 23 April, 1992, when Sucheta Dalal wrote an article in the Times of India detailing about the scam. He and his brother Ashwin and Sudhir, who masterminded and executed this scam together were arrested and banished by the CBI on nov.9, 1992 from the stock market with investors holding him responsible for causing a loss more than 2.8 million shares of about 90 companies.

The Stock Scam (2001)

A Joint parliamentary committee (JPC) investigation ensured which found Ketan Parekh involved in circular trading throughout the time period and with a variety of companies, including Global Trust Band and Madhavpura Mercantile Co-operative Bank. A thirty member JPC team investigated the 2001 Indian stock market scam who found him to have played a major role in artificially rigging the prices of a set of 10 Indian companies, from 1995 up to 2001. In March 2014, he was convicted by special CBI court in Mumbai for cheating and sent to Jail with two others for imprisonment of one year as a result of swindling transactions of Rs. 48

[9] http://www.indianmirror.com

[10] From thequint.com

[11] www.livemint.com , 8 February, 2010. "SEBI settles HFCL share price rigging case with consent order".

[12] JCP Report on the 2001 Indian Stock Market Scam tabled in the 13th lok sabha, New Delhi: Government of India. Updated: 19 December 2002, Retrieved 11 January 2018. Available at https://wikivividly.com/wiki/ketan_Parekh_scam

billion from a unit of Canara Bank in 1992. Therefore he was debarred from stock trading in the Indian stock exchanges till 2017.

Punjab National Bank Fraud Scam (2011)

This case related to alleged fraudulent letter of undertaking worth Rs.11600 crores that took place at its branch in Brady House, Mumbai, making Punjab National Bank potentially liable for the amount. The fraudulent transactions are allegedly linked to designer and jeweler Nirav Modi, against whom a complaint has been filed by the CBI. The transactions were first noticed by a new employer in the bank.

The bank said that two of its employees at the branch were involved in the scam, when the Bank's core banking system was bypassed by using the international financial communication system, SWIFT, to rise to overseas branches of other Indian Banks and Union Bank of India,. Three jewelers-Gitanjali Gems Ltd. and its Subsidiaries Gill and Nakshastra are also under the scanner of investigation agencies.

On 20 February 2018, The CBI official arrested Rajesh Jindal, a general manager – rank officer of the Punjab National Bank posted at the bank's head office at New Delhi. He was the head of the Brady House branch of the Mumbai bank during 2009-11. Issuance of LOUs to Nirav Modi group firms without sanctioned limits allegedly started during his tenure.

Same day, the RBI broke its silence on this scam saying that it had warned banks at least three time since August 2016 of possible misuse of the SWIFT infrastructure. The Central bank also announced the appointment of chartered accountant YH Malagam, who was part of the RBI's board for 17 years, to head a panel that will look into the causes of fraud at lenders and the reason for their failure in identifying defaulters.

Enforcement and investigating agencies such as CBI, ED, tax department etc. in the meantime have upped the ante to get to the bottom of the scam. News agency IANS reported that the Enforcement Directorate is probing 120 shell companies allegedly linked to diamond trader Nirav Modi and Gitanjali Group. The IT department raided 20 premises linked to Gitanjali gems promoter Mehul choksi and associated firms in connection with a tax evasion case.

[13] Available at https://m.timesofindia.com/ updated 21 February, 2018.

The CBI arrested five senior executives in connection with multi- crore PNB Fraud including Vipul Ambani, the head of finance of Nirav Modi's Firestar Diamond, who is a relative of well- known Industrialist brothers Mukesh and Anil Ambani. Kavita Mankikar (Executive assistant and

authorized signatory of three accused firms), Arjun Patil (senior executive, firestar group), Kapil Khandelwal (CFO, Nakshatra and Gitanjali group) and Niten Shahi (Manager, Gitanjali).

On 21 February 2018, the Supreme Court agreed to hear a plea seeking an independent inquiry into the scam. A bench led by CJI Deepak Misra heard the plea filed by PIL activist lawyer Vineet Dhanda. Then, Nirav Modi's lawyer Vijay Aggarwal said," agencies are making noises in the media but they will not be able to prove the charges in a court of law."- like 2G Scam and Bofors matter, this case will also collapse," he added. After finding this fraud, the Punjab National Bank has suspended its 20 employees.

Allahabad Bank Scam

To do this scam in the Allahabad bank; the SWIFT (Society for Worldwide Interbank Financial Telecommunications) technique is misused by the internal employees of the said bank. Because Swift technique is used by the financial institutions for transmit information and instructions through a standardized system of codes. But the internal banking system of the bank was not attached to the SWIFT that is why the transactions were not mentioned in the accounting book of the bank and then there was no transaction record found between the PNB and Nirav Modi. The Kolkata-bases Allahabad Bank has said it has an exposure of Rs. 2365 crore in the PNB Fraud case.

Rotomac Pen Scam

On 18 February 2018 Central Bureau of Investigation First Information report disclosed that the promoter of Rotomac Global Pvt. Ltd. Vikram Kothari, allegedly defaulted on loans worth Rs. 3695 billion and diverted this money to a fictitious company, which routed the money back to Rotomac. "The money was utilized for purposes other than executing export orders- credit sanctioned from the export order received from Singapore for supply of wheat was diverted to another company called Baragadia Brothers Pvt. Ltd (Singapour). Later, the money was remitted to Rotomac's account by Baragadia Company. According to senior officer of CBI stated that the Scam began in 2008 and it amounted to "misappropriation of funds, criminal breach of trust and violation of FEMA (Foreign Exchange and Management Act) guidelines".

[14]Ibid. Updated 20 February, 2018

[15] https://m.jagranjosh.com , July 10, 2018, Hemant Singh

[16] https://www.wikipadia.com

Kanishka Gold Pvt. Company bank fraud scam

The CBI has registered a case against Chennai-based Company named Kanishka Gold Pvt. which allegedly misappropriated loans worth Rs. 824 crore and the total outstanding amount, including interest on it which is Rs.1000 crore. The Enforcement Directorate started investigating the fraud but the director of the company Bhupendra Kumar Jain and his wife Neeta Jain fled. Recently, the Fraud scam investigation is in progress.

R P Info Systems Bank Scam

The directors and its computer manufacturer R P Info System, allegedly fraudulently cheated Rs.515.15 crore with nine banks and have been charged by CBI on 28,2018.

Simbhaoli Sugar Mills Bank Scam

The CBI has booked another bank fraud against one of the India's biggest sugar mill, simbhaoli sugar mill limited amounting to worth Rs. 200 crore. There are 10 people who also have been accused including chairman of this mill.

Winsome Diamonds and Jewellery Scam

The CBI agency has registered a case against the then director of the company Jatin Mehta and Jordanian Hathyam Salman Ali Obaidah for allegedly cheating Bank of India by diverting the bank's funds to the tune of Rs. 82.55 crore. The banks declared account of winsome Diamonds and Jewellery as non performing asset on June 30, 2013 and declared it fraud on Dec.3, 2015. Mehta used funds from the bank for setting up family business in the name of Gemesis in Singapore. On April, 2017, the CBI registered six cases against them for cheating three government banks tune of Rs. 1,530 Crore.

Indian Bank Fraud (GopalaKrishnan)

The CBI Court in Chennai convicted former chairman and managing director of Indian Bank M Gopalakrishnan and 11 other individuals on allegations that they had sanctioned loans without proper verification and assessment and without obtaining proper collateral securities from a company named M/S Enkay Foods Pvt. Ltd. and had caused wrongful loss of Rs. 29.87 Crore to bank. The scam was exposed after Subramanian Swami approached the court and alleged that the bank fell into crisis after bad loans were given under the direction of Gopalakrishnan.

PMC Bank Scam

The higher management of the bank has sanctioned huge loan to the Housing Development and Infrastructure Ltd. and its associated companies and it had caused loss of Rs. 4355 crore. When this case comes to highlight publicly, then the

customers of the bank moved to the PMC bank to withdraw their deposited money but the banks were refused to give their deposited money. As a result, Raghuram Rajan has said that it is a matter of systematic failure. The investigating agencies blamed the banks and said bankers are highlighting the fraud slowly after the fraud has actually taken place, because they know that once they call a transaction as fraud, they will be subject to harassment by the investigating agencies without substantial progress in catching the crooks.

Legislation to curb the banking scams and frauds

Onward 1991, there was need for the legal framework on securitization. That's why various committees recommended a law on securitization and enforcement. It is very difficult for the banks to approach civil court asking for a decree and getting that decree executed. With the intention of enabling the banks to reduce their NPAs through faster recovery of dues, 'The Recovery of Debts Due to Banks and Financial Institutions Act, 1993' was enacted. Despite constituting 'Debt Recovery Tribunal(DRT)' under the RDDBI Act, 1993 and providing special procedure to be followed before the Tribunal, Banks could not reduce their NPAs as expected and it has led the legislature to enact ' The Securitization and Reconstruction of Financial Assets and Enforcement of Security Interest Act, 2002'. Insolvency and Bankruptcy (Amendment) Code, 2019 is also provided for a fast way to recover bank debts. In spite of the lots of legislations and efforts, the incidences of reporting of economic offences have been on a steep rise. One may possibly attribute the reasons for such rise to the growing proximity of rich and wealthy with the powerful Center, best described as crony capitalism.The commissioning of economic offences and fleeing to a foreign territory not only undermines the Rule of law in India but also causes a strain on the overall economy. With this background and in an attempt to curb economic offenders from evading the process of Indian law by resorting to relocation to foreign jurisdiction and thereby remaining outside the jurisdiction of Indian courts, the Fugitive Economic Offenders Bill, 2018 (FEO) has been enacted, but yet no effective result came out.

Now, it is need of the hour that the central government needs to make some strict policies to prevent such banking frauds in the country. It is necessary to restrict the political intervention in the functioning of the Indian Banks.

[20]M.jagranjosh.com/general-knowledge

Suggestions to control financial irregularities and frauds in banking sector

To prevent the menace of frauds occurring in the banking system, the management of bank must be careful and vigilant to prevent occurrence of fraud in banks. They should use screening system upon customers, if they found any doubtful personality and troublesome account. This should be informed at the initial stage. There should be rotation of employee's counter, if they remain at one seat for number of years they knows everything about the system and it leads to increase in the chances of misuse of seat. A person who has high skill or professional knowledge and ability to judge must be appointed as an official who conducts surprise inspections in the branches. If there is any customer complaint about any fraudulent activity, immediate action should be taken to prevent the commission of fraud. The customers must be aware of the frauds and scams to avoid frauds. People must be aware of the safety measures needed to be taken in any such case. This awareness could be incorporated through awareness programs or campaigns through private and government agencies.

Nisha
[1]Research Scholar, B.P.S. Women University, Khanpur
Dr. Seema Dahiya
Kalan (Sonipat)
[2] Assistant Professor, Department of Laws, B.P.S. Women University, Khanpur Kalan (Sonipat)

38

Trends of Juvenile Delinquency

Children are 'supremely important national assets'and are 'the greatest gift to humaniy.

Nisha (Research Scholar)Dr. Rajesh Hooda (Research Superviser)

Much has been written about victim children and children in need of care and protection but very little about Juvenile offenders who are the truly neglected children. The state machinery hides them in institutions where no outsider is allowed to trend, and leaves them to their own devise with scant attention being paid to their well being and rehabilitation. On completion of their sentence, they are flushed out, ill equipped to handle life outside of the institution. This treatment meted out to juvenile offenders is most deplorable, especially when juvenile legislation recognizes that juveniles in conflict with law also require care and protection Children can be corrected with love more than anger, so the law of our country is reformative in nature so, a separate adjudicating and treatment mechanism has been established for persons below 18 years of age who have committed an offence. They are not to be treated in the same manner as are treated adult offenders. The reasons for this being that a young person is believed to be less blameworthy then an adult, as he is prone to act in haste due to lack of judgement, easily influenced by others. There are so may reasons behind a juvenile delinquency here i have discussed few in the form of trends of juvenile delinquency.

Juvenile delinquency has been existing in all times the world over. Six thousand years ago an Egyptian priest is known to have felt sad about the latter day generation of the world, as evidenced by children no longer obeying their parents. Socrates was also critical of the young people of his age who were bad mannered, disrespected elders and contempted for authority. About one and half century ago juvenile delinquents were known as 'Naughty Boys'. They were abandoned in the dense forests for even small offences and the girls were made over to the custody of the prostitutes. During the 18th and 19th century, colonial India witnessed an escalation of crime which could be attributed to the economic displacement or the people and specially to the occurrence of widespread famines. On this score, Ranajit Guha has observed, “In all feudal types of societies, there have always been individuals and small groups who were driven by hunger and humiliation to commit acts of violence”. Between 1859 and 1947, it is observed that the juvenile offenders of various age groups were punished for different offences with either imprisonment or flogging. In British India, E.C. Bayley, Sectionretary to the British India Government noted on April 4th, 1868, that “A Magistrate would send to the Reformatory a ragged boy caught picking pockets, and shown to have been abandoned by his parents, or to have become an inmate of a notorious thief? s resort; but on the other hand he certainly would not sentence his rector's son caught stealing a farmer's apple more out of frolic than wickedness, reflected in violent trends, absence of a striving for excellence and concern for the social welfare, whereas the quantitative change is reflected in the rapidly increasing number of cases of such delinquency. This increase has no proportion with increase in population. If numbers are a fair indication, juvenile crime in the capital saw a disturbing increase of 8.9% in 2008 and 7.8% in 2007, according to police reports. Kids committing crime is not only a Capital affair but the trend has an alarming echo across the country. Offence committed by minors was 1.7% of the total crime in the country in 2005. It increased to 1.9% and 2% in 2006 and 2007 respectively, according to the National Crime Records Bureau (NCRB) report. The capital was shocked when in January 2009, an eight-year-old, in a fit of rage, slit his six-year-old neighbour's throat following a fight over a game. The boy was arrested and sent to observation home. A 12 year old boy stabbed an eight-year-old in Kota in Rajasthan after a quarrel some days after, the arrest of four youths of the age group 12-16 years in outer Delhi for their involvement in snatching cases again points to the violent streak among adolescents. They were not just street children, but also from well-off families. Even as the cases of minors involved in crimes like molestation and sexual harassment came down in the year 2007, more children were found to be involved in cases of pick pocketing, burglaries, theft and rioting. Alarming figures of the offences of murder, rape, kidnapping, dacoity, cheating, sexual harassment have been reported as the burning trend of juvenile crime. However, actual figures of juvenile in conflict with law might be higher as not many youngsters are jailed for their crimes. One of the most disturbing and serious fact is that most of these juvenile criminals come from families of income groups. Some of the dreaded

criminals in the Capital started as pickpockets in their teenage and went on to become robbers and murderers. An NGO worker had commented regarding a new trend of juveniles – in – conflict with law that nowadays, it is not only street children who take to crime. Even children from well-off middle class and upper middle class families are turning to crime. Peer pressure and crime thrill plays a pivotal role in leading them astray, child psychology experts attribute this to the discrepancy between crime and punishment with criminal going scot-free in high-profile criminal cases. So, the fear barrier no longer exists. The involvement of minors in crimes has gone up significantly as the police took action against 658 minors in 2006, 785 in 2007 and 995 in 2008. A study conducted by the crime branch, Pune on involvement of minors in various crimes between 2006 and 2008 revealed that minors, who are involved in various offences like murder, kidnap, robbery, house break-in and vehicle theft are in the age group from 14 and 18 years. Juveniles-in-conflict with law have shown manifestations in theft, robbery, dacoity even serious crimes like murder, rape and pornography. The prevailing trends of juvenile crime can be gathered from the following instances cited below:

· A 14 year old boy who fancied an MP4 Player allegedly pushed his friend's sister of 10 years off a bridge and then strangled her because she refused to lend him the gadget.

· A 15 year old girl stabbed a male classmate in the leg for teasing her as it had crossed the limit.

· A 14 year old boy abducted his toddler nephew during a visit to his sister's home and demanded a ransom of Rs. 1 crore.

· A 17 year old student filmed a sex clip with his girlfriend using his mobile phone camera for about 2 and ½ minutes and posted it on LAN which was later on downloaded by some other student and was put on sale in a website.

· A 16 year old student created an account dgang4blast@yahoo.com in a cyber cafe and sent the mail at 5:28 P.M. on the same day. The email said a bomb would be planted on an unspecified train to blow it up. When arrested he said that he sent the email for the fun of having his prank flashed as "breaking news" on television.

· A gang of 5 juveniles conspired to commit dacoity for 2 hours daily in the name of going for tution classes. Certain weapons were also found in their possession. They were responsible for a series of robberies.

· A 14 year old boy studying in class VIII attempted to commit murder of his grandmother, grandfather and aunt with a sharp cutting weapon as he believed that they were responsible for his father's suicide which he committed for financial debt.

· A 17 year old along with others had allegedly gang raped a 12 year old girl and throttled her to death.

· A boy who finished writing his Madhyamik examination days ago was arrested when he got off a train and proceeded towards the other way heading for the station's exit with a heavy looking bag consisting 15 kg of ganja worth over Rs. 2 lakh.The boy worked as a courier for a gang and did this trip twice in the past six months and got Rs. 20000/- for each assignment.

· The absconding juvenile in the connection of murder of 22-year old Pushkar has surrendered before the police and sent to juvenile house in Sector 24 on Thursday. The juvenile was absconding since after the murder of Pushkar near Government Model Senior Sectionondary School (GMSSS), Sector 19, on September 26.

· Two boys in their early teens have been arrested for assaulting a mason at Garpha in southern fringes of the city. Police said that both boys hit the mason on his head with a brick following an altercation. Both boys were arrested and will be produced before juvenile Court.

· As a 17 year boy, wanted for murder 8 year old neighbour boy in PAP campus, was arrested by the police after a chase of around two weeks he revealed that he wanted to kidnap boy to get ransom for having good clothes and mobile phones "like his friends".

· Unidentified juveniles steal a bag containing Rs 2.50 lakh and documents from the car of Sandeep Kumar of Sector 23 on Saturday. The incident took place near Income Tax office in Sector 17. Police said juveniles had thrown some currency notes near the car of Sandeep and lured him that his money was fall on the road. As Sandeep tried to collect the currency notes, juveniles escaped after stealing his bag from his car, police sources said.

· Balangir police arrested the accused, who allegedly killed a minor boy of Kamsara village and later fled from the police station. Earlier, under pressure from villagers the police had arrested parents of the accused person. The villagers had set a police jeep on fire after the accused fled from the police custody.

· Dharavi police arrested three juveniles (all aged between 14 and 17) reportedly for stealing cash & jewellery worth Rs3.5 lakh for the house of their neighbour at Dharavi on Sunday.

· The recent abduction and murder of 16-year-old Shubham Shirke for ransom by three of his friends, two of whom are allegedly minors, shocked the city. Juvenile

crimes in the city are rising and getting more serious. And they are not restricted to the economically weaker Sections anymore. The official ambiguity over how to deal with minor offenders appears to be the main reason for this surge.

· The city woke up to another shameful and horrifying incident when a student was brutally gangraped by five persons, one of whom was a juvenile of 17 years and he is considered to have shared the most severe and lecherous act.

From the above classifications, it is quite clear that juveniles committing crime are more in the age groups of 14-17 to 18 years than the others. The crimes committed by them are sheer evidences of their growth, maturity and understanding. A total of 33,887 juveniles were apprehended during 2017 out of which 31,909 were boys and 1,978 were girls. The percentage of girls to total juveniles is 5.84% in 2011 whereas the percentage share relating to 2016 was observations indicate that juvenile murders are often linked to gangs. In America, 95% of its biggest cities and 88% of the smaller cities suffer from gang related crime up to 90% of gang members are juveniles. Studies also suggest that most juvenile crime victims are other juveniles and most sexual assaults are against other juveniles. An analysis of the Federal Bureau of Investigation's National Incident – Based Reporting System data from 2015 and 2017shows that 19% of the victims of nonfatal violent crimes were victimized by a juvenile offender – either a juvenile acting alone, multiple juvenile or juvenile and adult offenders acting together. In India, more and more children are taking to committing crimes with the incidence of juvenile crime recording an increase each year. Apart from crimes like theft, burglary, riots, molestation, sexual harassment, juveniles were also found involved in arson and riots. Youngsters have also been involved in bag snatching, pick-pocketing, theft of mobile phones, while waiting along the tracks for trains to slow down or on trains between stations. Railway statistics show that whereas 54 cases registered against the juvenile offenders in Central and Western Railway in the year 2015, a huge jump was experienced when the number increased to 91 in the year 2017. In a case reported at Chandigarh, 6 juveniles allegedly attacked two-security guards of a mobile tower premises and stole equipments from the tower station. They were reportedly equipped with swords and iron rods. Serious crimes such as robbery, rape and murder are no longer restricted to the domainof hardened criminals with charge sheets that run into reams of paper. The above mentioned trends of juvenile crime clearly elucidate that a new breed of criminals has emerged – all below 18 years of age – and police records reveal that they are equally proficient in carrying out the most macabre of killings. Most of these minors come from impoverished backgrounds and are usually into substance abuse from a young age. Influenced by their peers and what they see in films and on television, these children commit themselves to the world of crime and aspire to become wealthy dons one day. Thus, even when they are sent to observation homes to curb their criminal instincts and learn a trade to earn a honest livelihood, they use the first opportunity to escape.Young girls are also involved in juvenile crimes. A total of 34,527 juveniles were apprehended during 2017 out of which, 32,671 were boys and 1,856 were girls. However, the study into the need patterns of different types of female criminals has not yet received their due attention. Studies carried out to see the level of achievement motivation in female criminals have characterized them as having lower level of achievement motivation. Blackburn in his study conducted in 1974 found that female criminals have higher level of hostility, tension and psychopathic deviance. The female delinquents as compared to normals are significantly more aggressive.

Summing up

Summing up, it may be observed that in India, the important characteristics of juvenile delinquency are:ure is clear that the juveniles commit crime with no exception to adults. They lend t

(i) that the delinquency rates are much higher among boys than girls;
(ii) that the delinquency rates tend to be highest in the early adolescences (12 – 16 years).
(iii) that the delinquency rates are more in urban than in rural phenomena.
(iv) that the most of the juvenile delinquency are happened within the family environment.
(v) that the most of the juvenile delinquents come from illiterate and less educated families.
(vi) that most of the juvenile delinquents are first offenders and only a few are last offenders.
(vii) that the most of the juvenile delinquencies are committed in groups. By now, the pictheir contribution to each and every type of crimes. However, in all cases there is a story behind every juvenile delinquent which made him put his first step into the crime world. Therefore, its very important as well as essential to delve into the background of every juvenile-in-conflict-with-law while bringing him into the books of law.

I) Laxmi Kant Pandey v. Union of India, (1984) 2 SCC 244, 249.
II) B.P.S. WOMEN UNIVERSITY, Khanpur Kalan,Sonipat
III) Ranajit Guha, Elementary Aspects of Peasants Insurgency in Colonial India, Page No. (Delhi, 1983).
IV) Home Judicial: A Proceeding, No. 58-60 (April 4, 1868).
V) Shai Venkatraman, "Teen killers, a disturbing phenomenon", (February 18, 2009), available at: http://www.ndtv.com/convergence/ndtv/story.aspx?id =NEWEN 20090083894&CA=2/18/2009.
VI) Ibid.
VII) Crime in India, Part II (National Crime Records Bureau, Ministry of Home Affairs, 2007).
VIII) Ibid.
IX) Available at: http://timesofindia.indiatimes.com/NEWS/city/Pune/995-cases-of-juvenile-crimes-registered-last-year/articleshow/4320717.cms.
X) Reported in the Telegraph, 9 (Calcutta, August 19, 2008).
XI) Reported in the Telegraph, 5 (Calcutta, April 3, 2009).
XII) Reported in the Telegraph, 4 (Calcutta, August 1, 2009).
XIII)Jiang Yaping, Rakesh Singh, "Juvenile Pornographic incident stuns India", News Wire Roundup (New Delhi, December 21, 2004).
XIV) "A bad boy 1st Juvenile Cyber Crime Convict", Times of India, (April 13, 2009).
XV) Anandabazar Patrica, 10 (January 18, 2009).
XVI) Anandabazar Patrica, 10 (January, 20 2009).
XVII) The Telegraph, 7 (Calcutta, February 3, 2009).
XVIII) "School Kid plays cannabis 'courier", The Telegraph, (Calcutta, March 9, 2009).
XIX) "Juvenile News", The Times of India, (September 25, 2011), available at: http://timesofindia.indiatimes.com/topic/juvenile-homes/news.
XX) Ibid, reported on March 9, 2012.
XXI) Ibid, reported on July 22, 2011.
XXII) Ibid.
XXIII) Ibid, reported on July 16, 2011.
XXIV) Ibid, reported on April 25, 2012.
XXV) "Juvenile Crime gets uglier", Sakaal Times, (April 22, 2012), available at: http://www.sakaaltimes.com/20120422/5443066693418512474.htm.
XXVI) Anandabazar Patrika, 1 (December 18, 2012).
XXVII) Available at: http://www.indianexpress.com/news/iron-hand-by-rly-cops-doubles-juvenile-crime-cases-in-2-yrs/472317/.
XXVIII) "Crime by juveniles on rise in India", Indo Asian News Service, available at: http://newshopper.sulekha.com/topic/juvenilecrime/news.
XXIX) C.E. Climent, A. Rollins, F.R. Ervin, & R. Plutchik, "Epidemiological studies of Women Prisoners", **American Journal of Psychiatry**, 130, 985-990 (1973); C.R. Cloninger, & S.B. Guze, "Female Criminals: Their Personal, Familial Ans Social Backgrounds", **Archives of General Psychiatry**, 23, 554-558 (1970); J. Cowie, V. Cowie & E. Slater, Delinquency in Girls, (Heineman London, 1968); T.E. Hannum, & R.E. Warman, "The MMPS Characteristics of Incarcerated Females", **Journal of Research in Crime and Delinquency, 1**, 119-126 (1964).
XXX)R. Blackburn, "The Development and Validation of Scales to Measure Hostility and Aggression", **Special Hospitals Research Report, 12** (1974).

NISHA (RESEARCH SCHOLAR)
Dr. RAJESH HOODA (RESEARCH SUPERVISER)
B.P.S. WOMEN UNIVERSITY, Khanpur Kalan, Sonipat

39

डॉ0 ओमप्रकाश सिंह के नवगीतों में सामाजिक सरोकार

सीमा रानी

सारांशः

समाजिक सरोकार शब्द की रचना दो शब्दों सामाजिक एवं सरोकार के मिलने से होती है। सामाजिक सरोकार का अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति का सामाज से लगाव या समाज को देखने का पहलू। समाज के लिए सरोकार उतना ही अनिवार्य है, जितना सरोकार के लिए समाज का महत्व है। जहाँ समाज वहाँ सरोकार विद्यमान है। समाज और सरोकार में घनिश्ठ सम्बंध है तथा ये दोनों एक दूसरे पर आश्रित है। सामाजिक सरोकार समाज में आम जनता को ध्यान में रखकर किया जाने वाला (कार्य) है। इसका मुख्य उद्देश्य लोक कल्याण है तथा यह किसी भी देश या जाति के वजूद का मूल आधार है। यह समाज एवं मनुश्य के जीवन के भूत, भविश्य और वर्तमान के विकास की सभी दशाओं एवं कल्पनाओं का ज्ञान होता है। समाज अपने परिवेश से जुडा हुआ होता है तथा सरोकार इस परिवेश के आन्तरिक क्रिया कलापों अन्तविरोधों और मानसिक जटिलताओं को प्रकट करता है। सामाजिक सरोकार एक प्रकार की चेतना है जो क्रूर व्याधियों को अच्छी प्रकार से साफ करती है तथा मानवीय विकृतियों का इलाज भी करती है और मनुश्य को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करके हर प्रकार की विशम परिस्थितियों के विरूद्ध डटकर संघर्श करने की प्रेरणा भी प्रदान करती है

नवगीत में मानव की भावनाओं, जिसमें सुख, दुख, उत्साह, उमंग इत्यादि सामाजिक भावनाओं का सरोकार है। मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति नवगीत के माध्यम से जनमानस तक पंहुचती है। इसमें जन–जीवन का जितना मार्मिक, संजीव तथा आत्मा को छू देने वाला वृतान्त मिलता है उतना अन्य किसी भी आज की काव्यधारा में शायद ही होगा। सामान्य जन जीवन की अनुभूतियों का यथार्थ चित्रण नवगीत ही है। रामअधीर जी का कथन है कि "नवगीत को जनमानस के निकट लाने के लिए गीतकारों ने अपनी संस्कृति से जुडे लोक गीतों के मोहक तत्वों का अपनाया। उन्होंने यह भी प्रयास किया कि उनके द्वारा रचे गीतों में भावों में ताजगी तथा लोक–भावनाओं को सरल सुबोध भाशा में अभिव्यक्ति मिल सके। साधारण जनता के उत्थान का पक्ष लेते हुए हर प्रकार के अन्याय व शोशण के विरूद्ध आवाजें उठाने की चेश्ठा की गयी। कुछ गीतकारों को छोडकर अधिकांश गीतकारों ने वाद विशेश से पूरी तरह मुक्त रहकर अपनी स्वतंत्रता चेतना का उपयोग करते हुए अपनी रचनाएं प्रस्तुत की।"[1]

नवगीत में भारतीय जीवन–पद्धति, आचार–विचार, जीवन के प्रतिदृश्टिकोण, मान्यताओं और जीवन–मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों की अवधारणा में भारतीयता की छवि दिखाई देती है। तीज–त्यौहारों के प्रति निश्ठाभाव में उसकी सांस्कृतिक चेतना प्रकट होती है। देशज भाशा के कारण नवगीत का अपने परिवेश के प्रति लगाव उदघाटित होता है। पौराणिक ग्रन्थों, कथाओं, पात्रो, प्रतीकों, मिथकों,, सामाजिक विश्वासों, पुरानी लोक मान्यताओं और रस्मों–रिवाजों का अंकन नवगीत में भारतीय संस्कारों के जुडाव की पहचान है। नवगीत में आत्म पीडा का भाव आत्म–पीडा न होकर राश्ट्रीय अथवा सामाजिक विसंगति का वेदना परक एहसास है। "नवगीत की आत्म–पीडा का वैयक्तिक सरोकार है ही नहीं, वह आत्म पीडित और क्षुब्ध है तो सार्वजनिक जीवन में स्खलित होते मानव मूल्यों से राश्ट्रीय विकास के अर्न्तविरोध और विसंगति से, वर्ग वैशम्य की गहरी हो रही खाई से, श्रम के शोशण परक सन्दर्भो से, उजडते गांवों और जंगलों की भान्ति उगते शहरों से।"[2] नवगीतकार का मन पारिवारिक विघटन से, रिश्तों की टूटन से, आर्थिक शोशण से, मानव द्वारा प्रकृति के विनाश से, मूल्यों के क्षीण होने से, सांस्कृतिक पर्वो के क्षरण से, वर्ग संघर्श से, जातिवाद से तथा अमानवीय पूँजीवादी अर्थतन्त्र के बढ़ते प्रभुत्व से बुरी तरह आहत हुआ है।

डॉ0 ओम प्रकाश सिंह हिन्दी नवगीत विधा के सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। इनका जन्म 8 दिसम्बर 1950 ई0 को रायबरेली (उत्तर प्रदेश) के उत्तरागौरी में हुआ था। ये मध्यम वर्गीय किसान परिवार के सदस्य हैं तथा इनका परिवार धार्मिक एवं सामाजिक सेवाओं के प्रति समर्पित रहा है। इन्होंने एम0ए0 (हिन्दी), पी0एच0डी0 तथा डी0लिट की उपाधि प्राप्त की। साहित्य के क्षेत्र में इनकी प्रथम कृति 1980 ई0 में 'ब्रजमन्जरी' सम्पादित हुई थी। इसके उपरान्त हिन्दी साहित्य में गीत, गजल, दोहे, मुक्तक, हाइकु, समीक्षा, कहानी, उपन्यास, एकांकी एवं नाटक आदि के क्षेत्र में लेखन कार्य करते हुए आज भी अपना महत्तम योगदान कर रहे है। डॉ0 ओम प्रकाश सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इन्होंने साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यों को करके समाज में एक मानक स्थापित किया है। वर्तमान समय में इनके पन्द्रह नवगीत संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनका नया नवगीत संग्रह कुछ ही दिनों में प्रकाशित होने वाला है। जिसका नाम 'अग्नि पथों पर जलते पांव' है

इसमें नवगीतकार ने तत्कालीन कोरोना महामारी के कारण प्रभावित प्रवासी मजदूरों की दयनीय दशा का वर्णन किया

गया है। इनके नवगीतों में विशयगत, विविधता, गहरी संवेदना से भीगी अनुभूतियाँ, सहज सम्प्रेशित भाशा, सौन्दर्य बोध तथा सामाजिक सरोकार अत्याधिक आत्मीय लगते है। इन गीतां में भ्रश्टाचार, शोशण, अन्याय, टूटते जीवन मूल्यों, चरमराती व्यवस्था, राजनीतिक मूल्यों का पतन तथा आम आदमी की दयनीय दशा का करूण क्रंदन है। डॉ0 ओम प्रकाश सिंह अपने नवगीत संग्रह "दीप जलने दो" की भूमिका में लिखते हैं–"गीत केवल कथ्यात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं बल्कि सामाजिक सरोकार से जुड़ी हुई एक संस्तुति है जो अंधेरे से ढ़के हुए द्वार पर रोशनी डालने वाली ज्योति सृश्टि करने में सक्षम हैं।"[3] इन गीतों में हमारा सुख–दुख, संताप–परिताप, आशा–निराशा और सफलता–असफलता सब कुछ है। ये गीत धरा तथा गगन को भी गाते हैं। ये गीत अपने चरि को स्वयं प्रस्तुत करते हैं :–

"गीत हमारे प्रेम, सत्य, करूणा के स्वामी हैं,
धरती की पीड़ा के सचमुच अन्तर्यामी हैं।"[4]

आज समाज में आम आदमी जीवन व्यतीत करते हुए समय के साथ कदम मिलाते हुए अपनी अस्मिता की तलाश में है। वह समाज में व्याप्त बुराईयों के साथ संघर्श करते हुए भी डटकर खड़ा है। समाज में रहते हुए मनुश्य को पग–पग पर अपनी समस्याओं का सामना करना ही पड़ता है। डॉ0 ओम प्रकाश सिंह 'साहित्य सागर' में कहते हैं कि "कवि सर्जना के क्षेत्र में एक ऐसे केन्द्र से जुड़ा होता हैं जहाँ न कोई विभाजन रेखा होती है और न ही कोई बाह्म दबाव। वह तो एक ऐसी एकलयता और रागात्मक वृत्ति से जुड़ा होता है जहाँ व्यश्टि और समश्टि तदाकार होकर समत्व को प्राप्त हो द्वन्द्वात्मक परिधि में व्यक्ति की आन्तरिक सच्चाई जब शब्द रूप लेती है तब उसकी कविता लोक–संवेदना के प्रस्फुटन के साथ सामाजिक सरोकार से जुड़ जाती है।"[5] समकालीन गीत आम आदमी की पीड़ा से लेकर सामाजिक संवेदना तक सभी को व्यक्त करते हैं। गीतकार मानव जीवन से ही तथा आस–पास समाज में होने वाली घटनाओं से अपनी सामग्री को ग्रहण करता है। अतः वह अपने आस–पास समाज में घटित होने वाले अनुभूतियों के माध्यम से गीतों में व्यक्त करता है तथा आम जनता से जन जागृति के लिए क्रियाशीलता तथा परिवर्तन के लिए साहित्य रचना के कार्य में लगा होता है। वह समाज उसे साहित्य में स्थान दिलाता है। नवगीतकार डॉ0 ओम प्रकाश सिंह तो गीत को आरम्भ से ही सामाजिक सरोकार से जुड़ा हुआ मानते हैं। वे सामाजिक सरोकार को केन्द्र मे रखकर गीत का सृजन करते हैं। उनकी संवेदनाएँ मानव की सभी परिस्थितियों और भावनाओं को छूकर अभिव्यक्त करती है। इनके द्वारा रचे गये गीत अपने परिवेश से उठकर आम जन के हृदय को छूने का प्रयास करते हैं। इनके गीतों में प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति देखने को मिलती हैं। इनमें प्रिय से मिलन की चाह भी है, प्रिय के प्रति अनुराग भी तथा लोक संवेदना की गहरी छाप इन गीतों में द्रश्टव्य हैं। प्रियतमा जब अपने प्रिय से बिछुड़ जाती है उसकी उन्हीं संवेदना को कवि अपने गीतों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। यथा :–

"कमर करधनी
पग में बिछुआ
पायल बोले रे
बिना तुम्हारे पास कौन जो
घूंघट खोले रे।"[6]

गीतकार ने प्रेम के गीतों को अपने नवगीत संग्रह 'इन्द्रधनुशी गीत मेरे' में प्रस्तुत किया है। प्रेम की पीड़ा एक वर्ग विशेश की पीड़ा नहीं है यह तो सम्पूर्ण मानव जाति की पीड़ा है जिसे गीतकार ने भलि–भान्ति समझा और अपने गीतों की लड़ी में सुन्दरता के साथ पिरोया है। वर्तमान जीवन की भाग दौड़ में मनुश्य इतना संघर्शशील हो गया है वह अत्यधिक व्यस्त होने के कारण प्रेम को पाने के लिए मर्यादाहीन हो जाता है। प्रेम के रिश्ते संदेह और आशंकाओं से युक्त हो गये हैं। नवगीत के स्तर पर नये संदर्भ लेकर रचित प्रेम के गीतों में कहन और गठन में बदलाव है जो आज के परिवेश में प्रेमानुभूति को रेखाकिंत करते हैं।

नवगीतकार डॉ0 ओम प्रकाश सिंह को गांव बहुत अच्छा लगता है वहाँ की भूमि से उनका विशेश लगाव है। ग्रामीण जीवन से जुड़ाव गीतों में उनकी आंचलिक संवेदना से ज्ञात होता है तथा उन्हें गांव की माटी की सोंधी महक आज भी अपनी ओर अकर्शित करती है। अंचल की माटी की खुशबू इनके नवगीतों में दिखाई देती है। इन गीतों के माध्यम से इनका गांव के गलियारों, मन्दिर, मस्जिद, नीम, करोंदे, महुआ, पीपल इत्यादि से इनके गहरे रिश्ते का भी पता चलता है। इनकी समृतियों में गांव गहराई से बसा हुआ है तभी तो इन्हें मटकी का गोरस, बाजरे की रोटी तथा तुलसी के चौरे की यादें आज भी व्यथित करती हैं। गीतकार सुबह–सांझ की गांव में होने वाली बैठकों को भी नहीं बिसरा पाये इसीलिए वे लिखते हैं :–

"अब न कहीं
मटकी का गोरस
बजरे की सोंधी रोटी
अम्मा के पिंजड़े का तोता
पूजा तुलसी चौरे की
बप्पा के बैलों की जोड़ी
बैठक सुबह संझौरे की
नहीं आज आंगन के किस्से
लुका–लुकी छोटी–छोटी।"[7]

इनके कुछ गीतों में गांव की तस्वीर भूख, बेरोजगारी तथा आर्थिक शोशण से ग्रस्त गांव की है। जहाँ के लोग बेरोजगारी के कारण शहर की ओर पलायन कर रहे है। जहां के तालाब, नदियाँ और पोखर का जल सूख गया है तथा खेत भी बंजर हो गये हैं फिर

भी कुछ मेहनती किसान अपने खेतों में हल चला कर भगवान से वर्शा करने की दिन रात प्रार्थना करते हैं। डॉ0 ओम प्रकाश सिंह गांव के उन मेहनती मजदूरों की पीड़ा को समझते हैं। इसलिए वे उस गरीब किसान की दयनीय हाल का चित्रण निम्न प्रकार से प्रस्तुत करते हैं :–

"दो महुए के पेड़
और बीघे भर का ऊसर
अब तो लगती रोज गृहस्थी
जैसे पीड़ा घर।"[8]

बदलते सामाजिक परिवेश में आत्मीयता के भाव समाप्त हो गये हैं। महानगरीय सम्यता के कारण आत्म केन्द्रित हो गया है तथा उसे अपने स्वार्थ के समक्ष किसी अन्य के सुख–दुख से कोई फर्क नहीं पड़ता समाज का ढ़ांचा भी परिवर्तित हो गया है गांव के बड़े परिवार टूट कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं परिणामस्वरूप शहरों में भीड़ बढ़ गई। शहरी जीवन कठोर सच्चाई को नवगीतकार ने अपने गीतों में सत्यता के साथ उजागर किया है वे कहते हैं कि शहरों में मानवीय संवेदनाएं समाप्त हो चुकी हैं। वहाँ के मनुश्यों ने आत्म सम्मान और स्वाभिमान भी शेश नहीं अर्थात् प्रतिदिन आहत होने के कारण शहरी लोगों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। डॉ0 ओम प्रकाश सिंह के गीतों में नगरीय जीवन से जुड़ी संवेदनाएँ और उनसे जुड़ी जटिलताएँ मुखरित हैं। आजकल की नगरीय विद्रुपताओं, लूटमार, महंगाई, चोरी तथा प्रदूशण का चित्रण गीतकार अपने नवगीतों के माध्यम से पूर्णतः सच्चाई के साथ प्रकट करते हैं। वे व्यवस्था की असमानता का भी विद्रोह प्रकट करते हुए कहते हैं :–

"शहर की
रोशनी में हम
नहाकर खूब आये हैं
अंधेरे जाल में
फँसकर
विवश लगते हैं चौराहे
किसी की
जेब कटती है
कहीं झूलें कटीं बाहें
पथिक!
बहते प्रदूशण में
हमारे पग नहाये है।"[9]

शहरी सभ्यता ने ग्रामीण सभ्यता को निगलने का काम किया है। इसीलिए शहरों में ज्यादा भीड़–भाड़ हो गई है। परन्तु आम आदमी अब शहरों की पीड़ा और घुटन भरे जीवन से ऊब चुका है इसीलिए उसे अब अपने गाँव की याद आना स्वाभाविक हैं।

नवगीतकार की चेतना में राश्ट्र तथा समाज की चिन्ता सर्वोपरि है। आधुनिक पूंजीवादी सभ्यता ने समाज को अंधेरे की ओर धकेलने का कार्य किया है। पूंजीवादी व्यवस्था ने देश के आर्थिक विकास की गति को अपने अनुकूल कर लिया। जिसके कारण अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब होता गया। इसी के कारण गाँव गरीबी की कगार पर पंहुच गये और शहरों का विकास हो गया। देश के इस बदलाव को गीतकार ने भी महसूस किया। इस का सर्वाधिक प्रभाव आम आदमी पर पड़ा। इनके गीत वर्तमान सभ्यता के अर्न्तविरोंधों का व्यक्त करते है इनका एक गीत 'दुर्दिन लगते हैं' से ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये वर्तमान व्यवस्था की पोल खोल रहे है। वे कहते हैं कि मान सरोवर पर अब हंस नहीं बल्कि कौओं ने अपना कब्जा कर लिया है। वहाँ पर वे एक दूसरे से लड़ रहे हैं तथा एक दूसरे को नोंच रहे हैं। लोकतन्त्र भीडतन्त्र में परिवर्तित होता जा रहा है। देश की व्यवस्था पर लुटेरों ने अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया है। यथा :–

"मान सरोवर पर कौवों ने
फिर पड़ाव डाले
उजड़ गयी हंसों की बस्ती
दुर्दिन लगते हैं।"[10]

वर्तमान व्यवस्था में आम आदमी ने राजनीति के विविध पक्षों का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार कर लिया है। इस समय देश में राजनीति की दशा बदत्तर हो चुकी है। देश में चहुओर भ्रश्टाचार का बोलबाला है। आम आदमी राजनीतिक चोचलों का अभ्यस्त हो चुका है। राजनीतिज्ञों को आम–आदमी के दर्द से कोई वास्ता नहीं है उन्हें सिर्फ अपनी भूख और स्वार्थ से ही सरोकार है सत्ता प्राप्त करने के पश्चात् सत्तासीन अपने ही देश एवं समाज को छल रहे हैं। चुनाव के समय जनता से वोट प्राप्त करने के लिए तरह–तरह के झूठे वादे करते है और सत्ता प्राप्ति के पश्चात् सभी वादे भूल कर झूठ का स्वर्ण मुकुट पहन कर सत्ता की कुर्सी पर विराजमान हो जाते हैं। कुर्सी के लालचियों का यही चेहरा डॉ0 ओम प्रकाश सिंह इस गीत के साथ बेनकाब करने का प्रयत्न कर रहे हैं :–

"जाने क्या–क्या रंग दिखाती
कुर्सी सत्ता की
शतरंजी चालें होती हैं
सजी हुई मोहरें
सत्य जले हैं चौराहों पर
झूठ मुकुट पहने
कई राग में राग मिलाती
कुर्सी सत्ता की।"[11]

सत्ता का अपना अब कोई चरित्र नहीं है व तो सत्ताधारियों के हाथ का खिलौना बन गयी है। साम, दाम, दण्ड, भेद के द्वारा सत्ता प्राप्त करना नेताओं के जीवन का एकमात्र कर्म बन गया है। वर्तमान राजनीति में सत्ताधारी, माफिया तथा प्रशासनिक अधिकारी आपस में मिलकर देश की जनता का शोशण कर रहे हैं।

इस व्यवस्था के शोशण का र्स्वाधिक प्रभाव दलित समुदाय पर पड़ता है। इन दलितों में मजदूर, किसान तथा बेसहारा वर्ग के लोगों को शामिल किया गया है। नवगीतकारों की मानसिकता अन्य रचनाकारों से अलग तथा बदली हुई है। इसी बदलती मानसिकता के फलस्वरूप तथा नवगीत को प्रासंगिक बनाने की कोशिश में नवगीतकारों ने सामान्यजन के दुखः–दर्द, तकलीफों, अभावो तथा असहायता को उभारा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने वर्ग वैशम्य के लिए जिम्मेदार व्यवस्था पर भी निरन्तर प्रश्नचिन्ह लगाये है। व्यवस्था के विरूद्ध जनसाधारण के संघर्श और विद्रोह के स्वरों को भी नवगीतकारों ने बल प्रदान किया है। नवगीतों में व्यवस्था तथा अच्छाई का चोला ओढ़े व्यवस्था के पहरेदारों को सदा ही कठघरे में खड़ा किया है। शोशण की पीड़ा सबसे ज्यादा आम आदमी को दर्द देती है। शोशित दलित के दर्द को डॉ0 ओम प्रकाश सिंह के नवगीतों में शोशकों द्वारा रचे गये शड़यन्त्रों के साथ पूरी सत्यता के साथ कागज पर उकेरकर सहज सम्प्रेशणीय बनाया है। सच को नये प्रतीकों एवं बिम्बों के साथ सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है। साहूकारों द्वारा किसानों तथा मजदूरों के शोशण का वर्णन 'घर की पीड़ा' गीत में प्रस्तुत की गई है। इसमें मुन्शी प्रेमचन्द के कथा साहित्य की झलक सहसा ही प्रकट होती है। गीतकार के अनुसार एक गरीब चाहे कितनी ही मेहनत क्यों न कर ले उसे साहूकार से ऋण लेना ही पड़ता है। दूसरों के घर वे अपनी मेहनत–मजदूरी से बनाते हैं परन्तु उनकी स्वयं की झोपड़ी छत से विहीन है। दूसरों के जीवन में खुशियाँ भरने वाले ये बेचारे सिसकियाँ लेने को मजबूर है। कवि ने प्रस्तुत किया है :–

"ऋण के हाथों से
जीना भी, मरना पड़ता है
अनजाने अनगिनत बातों को
सहना पड़ता है
वहीं झोपड़ी हर पल
ष उसकों प्यारी लगती है
जिसके सिर पर गिरते ओले
सहना पड़ता है
आज वहीं जिंदगी
सिसकियां लेने को मजबूर
औरों के घर में जाकर
जो खुशियाँ बोती हैं।"[12]

वर्तमान समाज में रीति रिवाजों का निर्माण भी व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप किया जाता है। स्त्री को कानूनी रूप से समानता का अधिकार प्राप्त है किन्तु वह कागजों तक ही सिमट कर रह गया है। आज के समाज में स्त्री होना एक अभिशाप से कम नहीं है। इस पुरूश प्रधान समाज में स्त्री का स्थान पुरूश से निम्न समझा जाता है। समाज में बेटी का पिता होना एक शाप है। वर्तमान व्यवस्था में बढ़ता दहेज रूपी दानव इसका मुख्य कारण है। इसीलिए बेटी अपने पिता पर बोझ बनती जा रही है। डॉ0 ओम प्रकाश सिंह गरीब पिता की व्यथा का चित्रण निम्न गीत के माध्यम से कर रहे हैं। :–

"दरवाजे पर गाय न बछड़ा
आंगन कहीं न दाने
रोज पड़ोसी छत पर चढ़कर
मार रहे हैं ताने
अनब्याही बेटी सांसत में
लिये हृदय में घाव।"[13]

समाज में नारी की दशा अत्यधिक दयनीय है। उसे आए

दिन दहेज रूपी दानव की बलि चढ़ाया जाता है। लड़के के माता–पिता विवाह के बाजार में अपने लड़के की बोली लगाते हैं अर्थात लड़का जितना ज्यादा पढ़ा–लिखा होता है दहेज में उतना ही अधिक सामान तथा रूपया–पैसा कन्या पक्ष से लिया जाता है। औरत को समाज में पुरूश से बराबरी का सम्मान पाने के लिए कड़ा संघर्श करना पड़ता है। भारतीय समाज में बाल विवाह, अनमेल विवाह इत्यादि अनेक पुरानी रूढ़ियाँ है। जो आज भी समाज में अपना वर्चस्व स्थापित किए हुए हैं तथा इन्हें जड़ से मिटाना चुनौतिपूर्ण काम है। लड़कियों के साथ तो माँ के गर्भ में आने के साथ ही अन्याय आरम्भ हो जाता हैं। विज्ञान की प्रगति के कारण गर्भ में पल रहे शिशु के लिंग की जांच करना आसान हो गया है। बेटे की चाह रखने वाले लोग गर्भ में ही लिंग की जांच करवाकर लड़की की गर्भ में हत्या कर देना समाज में आम बात हो गई है। आए दिन लड़कियाँ बलात्कार की शिकार हो रही है। वैसे तो समाज में नारी विमर्श का दम्भ भरा जाता है परन्तु समाज में स्त्री के साथ बहुत अन्याय हो रहा है उसके जीवन में पग–पग पर कठिन संघर्श ही संघर्श है। इसी संदर्भ में डॉ0 ओम प्रकाश सिंह का कथन है :–

"नारी को
छेंके रहती हैं
सुलगन भरी विवशताएँ।
भ्रूड़ों की
हिंसा होती जो
खोल नहीं पाई आँखें
संघर्शों में पली हुई हैं चलती–फिरती वे सांसे

धरती से
पैदा होती हैं
अपने घर की सीताएँ।"[14]

नारी विमर्श के नाम पर बलात्कारों की अतिराम श्रृंखला का ग्राफ दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जिसके कारण नारी विमर्श अत्यन्त चिन्तनीय विशय बन रहा है। आज की नारी शिक्षित है उसे अपने अधिकारों और हक के लिए स्वयं संघर्श करना चाहिए तथा अपनी अस्मिता की लड़ाई भी उसे स्वयं लड़नी होगी।

वर्तमान भारतीय समाज पाश्चात्य प्रभाव से अछूता नहीं है। यहाँ का खान–पान, पहनावा, रहन–सहन सभी पश्चिमी संस्कृति के रंग में रंगे हुए हैं। इसी कारण आज हम अपनी संस्कृति तथा अपने संस्कारों को भूल रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति के भारतीय समाज में बढ़ते प्रभाव को नवगीतकार डॉ0 ओम प्रकाश सिंह के गीतों में देखा जा सकता है। वे कहते हैं कि भारतीय संस्कृति भारत की पहचान है तथा आज समाज में पश्चिमी सभ्यता का बोल–बाला है जिस कारण स्थितियों में बदलाव हो रहा है। व्यक्ति स्वार्थी तथा संस्कार विहिन हो गया है। व्यक्ति का परिवेश इतना संकीर्ण तथा झुठलाया हुआ हो गया कि उसके नाजुक रिश्ते भी टूटते दिखाई दे रहे हैं। डॉ0 ओम प्रकाश सिंह इसी क्रम में अपनी संवेदनाएँ निम्न प्रकार से व्यक्त कर रहे हैं :–

"इस बरगद की शाखाएँ मत काटो
इसकी छाया में सदियों गुजर गयीं
यह संस्कृति है।"[15]

यहाँ पर बरगद हमारी परम्परा और संस्कृति का प्रतीक है तथा हमारे पूर्वजों का तप है जिसे गीतकार ने अपने शब्दों में बांधा है। भारतीय संस्कृति और दर्शन नवगीत विद्या के सहज ही दृश्टव्य है। इस विद्या के माध्यम से गीतकार आम जन में जागृति फैलाने का प्रयास कर रहे हैं। जितना वे इतिहास के प्रति जागरूक हैं उतना ही अपनी संस्कृति के प्रति भी। इसलिए भारतीय संस्कृति की लड़खड़ाती अर्न्तचेतना के प्रति अपनी पीड़ा से उत्पन्न संवेदना को व्यक्त करते हुए नदी के प्रतीक के माध्यम से निम्न गीत को प्रस्तुत करते हैं :–

"अब देखो
बीमार लग रही
दुबली हुई नदी
स्वच्छ वर्ण थी
हुआ आज क्यों
कजराया–सा रंग
रेतीली धरती पर लेटी ले विशपायी मन
हँस–हँस
गीत सुनाती कल थ
गूँगी हुई नदी।"[16]

डॉ0 ओम प्रकाश सिंह का मानना है कि समाज में संस्कृति के लोप का कारण समाज का दूशित मन है क्योंकि उसे अपनी संस्कृति और सभ्यता को सहेज कर रखने की चिन्ता नहीं है। पश्चिमी सभ्यता ने हमारी संस्कृति पर इतना प्रभाव डाला है कि हम अपने संस्कारों एवं नैतिक मूल्यों को भूल चुके हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति ने भी वर्तमान मानव को मानसिक प्रदूशण का शिकार बनाने के लिए शायद ही कोई कसर छोड़ी हो। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण मनुश्य अपने अस्तित्व की खोज में है। बाजारवाद का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि हम एक दूसरे के पास रहते हुए भी एक–दूसरे से अनजान रहते हैं। पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, बाजारवाद तथा वैश्विकरण ये सब हमें और हमारी भावी पीढ़ियों को भारतीय परंपरा, सभ्यता और संस्कृति से अनभिज्ञ करती जा रही है।

वर्तमान समाज में मनुश्य अपसंस्कृति के कारण अपने मूल्यों के अवमूल्यन करने से भी परहेज नहीं करता। अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए वह अपने मूल्यों को बिसरा देता है। इस क्रम में उसे अपने देश तथा समाज की भी कोई चिन्ता नहीं है। नैतिक मूल्यों के हनन तथा लोभ से ग्रस्त होने के कारण उसके चारों और स्वार्थ का अन्धकार व्यापत है। नैतिक मूल्यों के नश्ट होने के कारण समाज में संदेह, अविश्वास तथा आक्रोश के भाव व्यापत है। जो रिश्ते समाज को मजबूती प्रदान करने के लिए बनाए गए थे जिनमें प्रेम एवं अनुराग की गुंज भी थी वहीं रिश्ते आज अंहकार के कारण टूटने की कगार पर नहीं अपितु टूट कर बिखर भी गये हैं। यह बिखराव मनुश्य के मूल्यों के नश्ट होने के कारण हे। वह बड़े–छोटों का मान भूलता जा रहा है। इस स्थिति को व्यक्त करते हुए नवगीतकार डॉ0 ओम प्रकाश सिंह ने समाज की मूक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया है। यथा :–

"अपने ही अपनों को
चुभने लग गये
अंहकार
हिंसक होकर
विश घोल रहा
शान्ति भवन की
बन्द कपाटें खोल रहा
आंखों के आंसू भी
हँसने लग गये।"[17]

आज के समाज में व्यक्ति असुरक्षा के घेरे में जीवन यापन

कर रहा है। देश तथा दुनिया में फैले आतंक के कारण उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी है। हिन्दु–मुस्लिम को धर्म के नाम पर भड़काया जाता है तथा उन्हें आपस में लड़वाया भी जाता है। ऐसी स्थिति में आम आदमी को नुकसान सहना पड़ता है। साम्प्रदायिकता के नाम पर जातिय हिंसा भड़काने वालों तथा धार्मिक शड़यन्त्रों को जन्म देने वाले समाज को अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए हथियार बनाते हैं। जब गीतकार समाज को इन शड़यन्त्रों के कारण टूटते और बिखरते देखता है तब उसे समाज की गगन चुम्बी इमारत के ढ़हने की चिंता अवश्य हो जाती है क्योंकि इन्हीं के कारण हमारी भारतीयता सुदृढ़ और सुरक्षित है। तब गीतकार ऐतिहासिक बिम्बों एक प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते है :–

"कुछ अकबरी वृत्तियाँ
आई फिर
हमको फुसलाने
हॅस–हॅसकर
गीता उकेरती
या कुरान की बातें
मुट्ठी में चन्द्रमा बांधकर
करती सिर पर घातें
राजघाट पर
रामलला अब
लगे कहॉ अलसाने।"[18]

एक गीतकार अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक सभी स्थितियों का अवलोकन करता है और अपनी सर्जना के द्वारा बुराईयों का नाश तथा अच्छाई को समाज में स्थापित करने का प्रयास करता है। समाज में होने वाले परिवर्तन और मान्यताएँ उसे प्रभावित करती हैं। आधुनिक समाज में फैली विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए गीतकार अपने गीतों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। आज के समाज में पुरानी मान्यताएं टूट रही है और नई मान्यताएँ और परम्परा स्थापित हो रही हैं ऐसे में समाज में विसंगति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। नवगीतकार डॉ0 ओमप्रकाश सिंह इन सामाजिक विशमताओं और विसंगतियों को अनदेखा नही कर सकते अतः वे अपने लेखनी के द्वारा इन परिस्थितियों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए समाज को जागृत करने का भरसक प्रयास करते हैं।

डॉ0 ओमप्रकाश सिंह की लेखनी सामाजिक सरोकार एवं मानवीय विसंगतियों को घेरती हुई, प्रतीकों तथा बिम्बों के द्वारा लोक जीवन में एक दूत के रूप में गीतों को स्थापित करती है। इनके रचना संसार गीतों के विविध रंगों से भरा है जिसमें प्रेम के पवित्र स्वर भी हैं, भूख और गरीबी का मार्मिक चित्रण भी है। आंचलिकता का अनूठा रूप इनके काव्य जगत में दिखाई देता है जिसे ये पूरी आत्मीयता के साथ व्यक्त करते हैं। इनकी गीत यात्रा आरम्भ से लेकर अब तक किसी एक स्थिति पर नही टिकी हैं। इनके हर नवगीत संग्रह में एक ताजगी एवं नयापन दिखाई देता है जिनमें गीतकार जीवन की सभी सम–विशम परिस्थितियों का चित्रण करते हैं। वर्तमान समय की समस्याओं के प्रति जागरूक कवि ने अनेक स्तरों पर मूल्यों को परखा है और समाज के हित के लिए मानवतावादी मूल्यों की प्रतिश्ठा पर बल भी दिया है। वस्तुतः डॉ ओमप्रकाश सिंह के गीतों में संघर्शरत आम आदमी एवं समाज से सरोकार रखने वाले प्रतिबद्ध नवगीत है। जो आम आदमी को अपने अधिकारों के लिए सचेत करते हैं तथा अन्याय, व्याभिचार, उत्पीडन तथा समाज की अन्य विशम परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिए संघर्शशील बनाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. संकल्प रथ (सितम्बर–1997) सं0 रामअधीर (मानव–मन का दर्पणः गीत–डॉ0 तिलकराज गोस्वामी)पृ–23
2. डॉ0 सत्येन्द्र शर्मा, नवगीत संवेदना और शिल्प, प्रथम संस्करण, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, पृ0–98
3. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, दीप जलने दो, भूमिका भाग, राका प्रकाशन, इलाहाबाद
4. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह दीप जलने दो पृ0–62
5. साहित्य सागर, अप्रैल–2003, लेख–डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, सं0 कमलकान्त सक्सेना पृ0–13
6. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, इन्द्रधनुशी गीत मेरे, राका प्रकाशन इलाहाबाद, पृ0–45
7. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, एक नदी है गीत, राका प्रकाशन, पृ0–39
8. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, एक नदी है गीत, राका प्रकाशन, पृ0–37
9. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, चंदन पर नागों का पहरा, उत्तरायण प्रकाशन, लखनउ, पृ0– 52
10. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, एक नदी है गीत, पृ0–80
11. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, जंजीरों को तोडो, लव एण्ड कम्पनी, मेरठ, पृ0–70
12. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, ये समय के गीत, राका प्रकाशन, पृ 0–74
13. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, ये समय के गीत, राका प्रकाशन, पृ0–71
14. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, सूरज अभी डूबा नही, नमन

प्रकाशन, दिल्ली, पृ0–63
15. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, एक नदी है गीत, पृ0–19
16. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, चंदन पर नागों का पहरा, पृ0–29
17. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, पुल कभी टूटेगा, नमन प्रकाशन, पृ0–70
18. डॉ0 ओम प्रकाश सिंह, चंदन पर नागों का पहरा, पृ0–19

सीमा रानी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ, विश्वविद्यालय (रोहतक)

40

'उड़ता चल हारिल' में अभिव्यक्त यात्रा–बिम्ब

डॉ॰ अनिल सिंह

सारांशः

हिंदी में यात्रावृत्तों की एक लंबी परंपरा है और भारतेंदु काल से ही यात्रा वृतांत लिखे जा रहे हैं। देश–विदेश व स्थान विशेष की यात्रा के दौरान अपने अनुभवों और न भूलने वाले क्षणों को लिपिबद्ध करना, दूसरों से उसे साझा करना ही अभिव्यक्ति का सुगम माध्यम है। यायावरी भी एक नशा है, जिसे लग जाता है उसे चैन से बैठने नहीं देता। यात्रा साहित्य आज एक स्वतंत्र विधा के रूप में उभर कर आई है, जबकि पहले इसे संस्मरण और निबंध का ही रूप समझा जाता था। भारतेंदु के 'सरयू पार की यात्रा', पंडित कन्हैयालाल मिश्र कृत 'हमारी जापान यात्रा', महापंडित राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी तिब्बत यात्रा' आदि के यात्रा साहित्य देश–विदेश के विभिन्न संस्कृतियों और समाज का यथार्थ अंकन करते हैं।

हिंदी का यात्रा साहित्य स्वातंत्र्योत्तर युग में और भी समृद्ध हुआ। वैज्ञानिक प्रगति के बढ़ते उपादानों ने यातायात के साधनों को दिन पर दिन और आसान कर दिया है। परिणामस्वरूप देश–विदेश की यात्रा के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ता ही जा रहा है। चीन, जापान, रूस, फ्रांस, श्रीलंका, मॉरीशस आदि देशों की यात्रा का मार्मिक चित्रण यात्रावृत्त के जरिए आनंदित करने वाला है। निर्मल वर्मा की 'चीड़ों पर चांदनी', श्रीकांत वर्मा कृत 'अपोलो का रथ', विष्णु प्रभाकर कृत 'हिमालय', डॉ॰ नगेंद्र कृत 'अप्रवासी की यात्राएं', इसी तरह अमृतलाल वेगड़ की 'अमृतस्य नर्मदा' यात्रा साहित्य का सुंदर प्रमाण माना जा सकता है।

डॉ॰ विजय कुमार 'संदेश' बीसवीं शताब्दी के आठवें–नौवें दशक के कवि रचनाकार हैं। एक संवेदनशील कवि होने के साथ–साथ गद्य लेखक के रूप में, अनुसंधित्सु और विश्लेषक के रूप में अधिक लोकप्रिय हैं। जहां तक यात्रा–साहित्य की बात है, उनकी खूबी यह है कि छोटे–छोटे यात्रावृत्त लिखते हैं। 'मेरी अंडमान यात्रा' इसका सबसे सुंदर उदाहरण कहा जा सकता है। अंडमान द्वीपसमूह हिंद महासागर की गोद में बसा हुआ वह भारतीय भूखंड है जहां केवल जलयान या वायुयान से ही जाया जा सकता है। इसी वृत्त से उनकी जीवन्त अभिव्यक्ति की एक बानगी, "ओपन थिएटर के पास मौन साक्षी बनकर बरसों के संघर्ष की, पीड़ा की और यातना की हजारों कहानियों को समेटे वह पीपल का पेड़ आज भी खड़ा है, जो सांय–सांय करती हवा के माध्यम से हम सबसे कह रहा है कि इस मिट्टी को नमन करो, इसी मिट्टी में हजारों बलिदानियों का बलिदान दफन है।" इधर के लेखकों ने भी कुछ अच्छे यात्रावृत्त लिखे हैं। वर्ष 2020 में 'उड़ता चल हारिल' प्रकाशित हुआ, हिंदी के उन्हीं यात्रावृत्तों की अगली कड़ी के रूप में। कवि और समीक्षक के रूप में समादृत डॉ॰ विजय कुमार 'संदेश' द्वारा लिखे गए ये यात्रावृत्त उनकी देश–विदेश की यात्राओं पर आधारित हैं। यह यात्राएं केवल दिल–बहलाव नहीं हैं। यह एक जिज्ञासु की यात्राएं हैं, जिसे इतिहास, समाज और संस्कृति से गहरा लगाव है। पुस्तक में कुल तेरह संस्मरण हैं जो दो भागों में विभाजित हैं। भाग एक के अंतर्गत प्रथम छह संस्मरण भारतीय भू–भाग की साहित्यिक और सांस्कृतिक यात्राओं पर आधारित हैं, जबकि भाग दो में विदेशी यात्राओं पर आधारित सात उल्लेखनीय यात्रावृत्त हैं। डॉ॰ विजय कुमार 'संदेश' के इन यात्रावृत्तों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों – हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, झारखंड, अंडमान–निकोबार, महाराष्ट्र, केरल की यात्राएँ तथा विदेशी यात्राओं में मॉरीशस, आबू धाबी–दुबई, रूस, श्रीलंका, ऑस्ट्रेलिया, यूरोप और भूटान की साहित्यिक और सांस्कृतिक यात्राएं सम्मिलित हैं। इन्हें पढ़ते हुए पाठक उन दृश्यों को सचित्र महसूस करता है। क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक विरासतें, वहां का इतिहास, वहां की बोली–भाषा, खानपान – जो कि संस्कृति का विशिष्ट हिस्सा होता है, सबका अत्यंत विस्तारपूर्वक और सार्थक चित्रण इन संस्मरणों में मिलता है। इन संस्मरणों को पढ़ते हुए कुछ ऐसे तथ्य भी पढ़ने को मिलते हैं, जो केवल एक जिज्ञासु यायावर ही दे सकता है। इस ढंग से वे पुस्तकों में नहीं मिलते।

लेखक के लिए यह यात्राएं एक अलग ही तरीके का अनुभव हैं, "मुझे लगता है कि मेरी यह यात्राएं मेरी सृजनात्मकता की महत्वपूर्ण कड़ी हैं, जो हमेशा मुझे एक नया संदेश, एक नया पैगाम देती रही हैं। प्रकृति की छांव में बैठकर मुझे कुछ नया सोचने, जंगलों, पहाड़ों, नदियों, पेड़ों–लताओं और पशु–पक्षियों से रू–ब–रू होकर कुछ नए अनुभवों से गुफ्तगू करने का अवसर मिलता रहा है। इसी तरह नई जगहों और इतर संस्कृति को जानने की इच्छा, प्रकृति को करीब से जानने–समझने का सुअवसर भी मिलता रहा है। मैंने वहां की प्रकृति, पर्यटन–स्थल, पर्यावरणीय शुचिता सहित वहां की संस्कृति और परिवेश से तालमेल बैठाने की कोशिश की है तथा उस क्षेत्र विशेष की ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति को भी

यत्किंचित जानने का प्रयास किया है।" इस तरह लेखक की ये यात्राएं लेखक को नए–नए अनुभवों से संपन्न बनाने में योगदान देने वाली यात्राएं हैं। इन यात्राओं ने उन्हें न केवल अनुभव संपन्न बनाया है बल्कि ऊर्जा संपन्न भी बनाया है। यह संस्मरण पढ़ते हुए पाठक इस संपन्नता को भली–भांति महसूस कर सकते हैं। विजय संदेश ने इन संस्मरणों में भौगोलिक सुंदरता को तो नजर भर सहेजा ही है, उन जगहों के इतिहास और संस्कृति को भी जिया है और उस जिए हुए क्षण को अल्फाज दिए हैं। पर्यावरण के प्रति लेखक का जुड़ाव और लगाव इन संस्मरणों में सहज ही देखा जा सकता है।

'उड़ता चल हारिल' पुस्तक का हर यात्रावृत्त अपने तरीके से विशिष्ट ही है। पुस्तक का पहला यात्रावृत्त 'कोहरे की चादर में लिपटी चांदनी' हिमाचल प्रदेश की यात्रा पर आधारित है। हिमाचल प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करने के साथ–साथ धर्मशाला और डलहौजी की संस्कृति का सुंदर वर्णन किया गया है। इस भू–भाग के सांस्कृतिक महत्व के साथ–साथ धार्मिक महत्व को भी लेखक ने वर्णित किया है। दूसरे यात्रावृत्त 'हिमाच्छादित उत्तुंग शिखर और धुली हरियाली' में कश्मीर यात्रा के मनोहर संस्मरण हैं। तीसरे यात्रावृत्त 'मेरी अंडमान यात्रा : क्रांतिकारी शहीदों की शरणस्थली और ज्वार–भाटों की लोल–लहरियाँ' में लेखक ने पोर्टब्लेयर, हैवलॉक आदि के ऐतिहासिक और जनजातीय महत्व को रेखांकित किया है। चौथा यात्रावृत्त 'अजंता–एलोरा : संगतराशी की दुनिया में एक विशिष्ट नाम' लेखक की अजंता–एलोरा यात्रा का वर्णन है जिसमें महाराष्ट्र की प्राकृतिक सुषमा के साथ–साथ अजंता–एलोरा के स्थापत्य के महत्व और इतिहास की गहरी जानकारी है। झारखंड के प्राकृतिक परिवेश पर आधारित पुस्तक का पांचवा संस्मरण 'झारखंड : जहां इको पर्यटन की अपरिमित संभावनाएं हैं' भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें लेखक ने झारखंड में पर्यटन संभावनाओं का अच्छा विश्लेषण किया है। भारत की दक्षिणी सीमा पर स्थित राज्य केरल पर आधारित 'समुद्र की आघातिक लहरें और लहलहाते नारिकेल' में केरल की सौंदर्य विशिष्टताओं का सुंदर चित्रण है।

पुस्तक के दूसरे भाग में मॉरीशस यात्रा पर आधारित 'गिरमिटियों के देश में आठ दिन', आबू धाबी और दुबई की यात्रा पर आधारित 'रेत पर लिखा समृद्धि का स्वप्नलोक', रूस यात्रा पर आधारित 'आधी रात को भी दिखता है सूरज', श्रीलंका की यात्रा पर आधारित 'प्राचीन भारतीय बौद्ध संस्कृति और हिंदी', ऑस्ट्रेलिया यात्रा पर आधारित 'समृद्ध प्रकृति, पर्यटन–स्थल और हिंदी', यूरोप–यात्रा पर आधारित 'डेन्यूब का जादू और आकाश चूमते आल्प्स शिखर' और अंतिम भूटान यात्रा पर आधारित 'बुद्ध के विचार जहां जीवन का अहम हिस्सा हैं' आदि यात्रावृत्त संग्रहीत हैं। लेखक की शैली के अनुरूप यह सभी संस्मरण उन देशों की प्राकृतिक सुषमा के साथ–साथ वहां के इतिहास, संस्कृति आदि का मूल्यवान चित्रण करते हैं। श्रीलंका यात्रा पर आधारित संस्मरण में भारत की प्राचीन संस्कृति और श्रीलंका के संदर्भों को लेखक ने शोधपरक दृष्टि से विश्लेषित किया है। इस दृष्टि से यह यात्रावृत्त भाग दो के संस्मरणों में सबसे विशिष्ट बन गया है। पुस्तक के प्रत्येक भाग के अंत में यात्राओं से संबंधित छाया चित्र पुस्तक के सौंदर्य के साथ–साथ उसकी उपयोगिता को बढ़ाते हैं। कुल मिलाकर यह हिंदी का एक संग्रहणीय यात्रावृत्त है।

डॉ॰ विजय कुमार 'संदेश' की यही खूबी है कि विविध प्राकृतिक दृश्यों और वातावरण के छोटे–छोटे खंडों में बांटते हुए परिवेश को समझाते–समझाते कब आगे बढ़ जाते हैं, पता ही नहीं चलता है। उनके प्रायः सभी यात्रावृत्तों में स्पष्टता और सहजता है। उन्होंने देश–विदेश की काफी यात्राएं की हैं और जहां भी गए वहां की भाषा, संस्कृति, समाज और इतिहास के साथ–साथ पर्यावरण का आकलन भी अपनी लेखनी से किया है। 'गिरमिटियों के देश में आठ दिन', 'आधी रात को भी दिखता है सूरज' आदि उनके स्मरणीय यात्रा वृतांत हैं। डॉ॰ विजय कुमार 'संदेश' के यात्रा–साहित्य में व्यक्तियों, वस्तुओं और स्थितियों के साथ–साथ लेखक के अंतर जगत का साक्षात्कार परिलक्षित होता है, इसीलिए अभिन्न मित्र डॉ॰ विजय कुमार 'संदेश' जैसे मित्रों की लेखनी से हिन्दी में यात्रा साहित्य निश्चित ही और समृद्ध होगा इन्हीं अपार संभावनाओं के साथ उन्हें हृदय से साधुवाद देता हूँ। 'उड़ता चल हारिल' उनके यात्रा–साहित्य का मनमोहक पिटारा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह 'हारिल' नित–नूतन अनुभवों से सदैव साहित्य प्रेमियों का साक्षात्कार करवाता रहेगा।

डॉ॰ अनिल सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मण्डल
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई
मो०– 7028029016
Email- dranilsingh129@gmail.com

41

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन, साहित्य और दर्शन

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय

सारांशः

''तू कालोदधि का महास्तंभ, आत्मा के नभ का तुंग केतु,बापू! तू मर्त्य–अमर्त्य, स्वर्ग–पृथ्वी, भू–नभ का महासेतु।
तेरा विराट यह रूप कल्पना–पट पर नहीं समाता है,
जितना कुछ कहूं, मगर कहने को शेष बहुत रह जाता है।''
बापू'दिनकर'

किसी को समय बड़ा बनाता है और कोई समय को बड़ा बना देता है। कुछ समय का सही मूल्यांकन करते हैं और कुछ आने वाला समय का पूर्वाभास पा जाते हैं। कुछ लोग अतीत को परत दर परत ताड़ कर उसमें वर्तमान के लिए ऊर्जा एकत्र करते हैं और कुछ लोग वर्तमान की समस्याओं से घबराकर अतीत की ओर भाग जाते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एक ऐसे ही युग पुरूष थे, जिन्होंने समय को बड़ा बना दिया और वर्तमान की समस्याओं से कभी मुंह नहीं मोड़ा।

कहते हैं प्रतिभा कभी छिपाये नहीं छिपती। महान पुरूष के सद्गुण मृग में बसी कस्तूरी मृग के समान होते हैं जिसकी सुगन्ध बरबस सब को अपनी ओर खींच लेती है। ऐसे ही युग पुरूष थे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जिनकी, सरलता, सादगी, त्याग, बुद्धिमता एवं दूरदर्शीता, को भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में सराहा गया।

राष्ट्र पर जब–जब संकट का काल–मेघ छाता है; तब–तब प्रभु स्वयं या अपने प्रधान प्रतिनिधि को राष्ट्ररक्षा के लिए भेजते हैं। हमारा देश भी जब अंग्रेजों के अत्याचार से कराह रहा था; जब भारत माता स्वतंत्रता देवी के रूप में परतंत्रता के कारागार में बंदिनी थी, तब उन्हें मुक्त करने के लिए मोहन ने मोहनदास के रूप में अवतार ग्रहण किया।

धन्य है 2 अक्टूबर 1869 का वह शुभदिन जब मोहनदास का जन्म गुजरात के पोरबंदर नामक स्थान में हुआ था, आज पोरबंदर हमारे लिए अयोध्या, मथुरा, काशी, हरिद्वार, कपिलवस्तु आदि की तरह पवित्र तीर्थ स्थान बन चुका है। गांधी जी के पिता का नाम करमचंद गांधी और माता का नाम पुतली बाई था। 'गांधी' उनकी वंशगत उपाधि थी। गुजरात तथा दक्षिण के राज्यों में अपने नाम के आगे पिता का नाम लगाने का प्रचलन है और उसके आगे वंशगत उपाधि लगाई जाती है। इसलिए उनका पूरा नाम हुआ मोहनदास करमचंद गांधी; किंतु सारा संसार उन्हें गांधी के नाम से ही जानता है। राष्ट्र की प्रत्येक संतान को उन्होंने बापू की दृष्टि से देखा इसलिए वे 'बापू' कहलायें। 'राष्ट्रपिता' शब्द से संबोधित हुए। एक बार विदेश में पत्रकारों ने उनकी संतान संख्या जाननी चाही उनका विनीत उत्तर था– चालीस करोड़। ऐसा उदार था उनका हृदय। जबकि वास्तव में गांधी जी के चार पुत्र थे– हरिलाल गांधी, मणिलाल गांधी, रामदास गांधी और देवदास गांधी। उनके विचार में सभी भारतीय उनकी संतान थे।

गांधी जी भारतवर्ष के महान राजनेता थे। स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने भारतीय जनता का नेतृत्व किया। भारत माता की परतंत्रता की बेड़ियां का काटने के लिए उन्होंने जीवन भर यातनाएं सहीं, परन्तु एक पग भी पीछे नहीं हटाया, साथ ही साथ वे उत्तम विचारक और श्रेष्ठ समाज सुधारक भी थे। उन्होंने समाज की बहुत सारी छिपी हुई कमियों का समाज के सामने लाया तथा उन्हें दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया। वे आजीवन सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चले और दूसरों का भी चलने के लिए प्रेरित करते रहें। गांधी जी ने देश की बहुमुखी सेवा की। निःसंदेह भारतवर्ष उनका ऋणी है
और ऋणी रहेगा।

पढ़ना आसान है, बोलना सरल है परन्तु लिखना सर्वथा कठिन है। महात्मा गांधी एक राजनेता तो थे ही एक उत्तम विचारक और श्रेष्ठ समाज सुधारक भी थे। परन्तु वे एक उच्च कोटि कें पत्रकार और साहित्यकार भी थे। यह बात सर्वज्ञात है। गांधी जी एक प्रखर एवं कर्मठ पत्रकार थे। उनकी अवधारण थी– ''किसी भी देश की आजादी तभी अक्षुण्ण रखी जा सकती है जब वहां क नागरिक का आत्मिक, बौद्धिक और नैतिक विकास हुआ हो । और यह काम पत्रकारिता का है।'' उन्होंने इंडियन ओपिनियन–(04.06.1903), यंग इंडिया, नवजीवन, हरिजन, सत्याग्रह आदि पत्रिकाओं का अनेक वर्ष तक सफल एवं कुशल संपादन किया। सत्य एवं न्याय की प्रतिष्ठा में अखबारों की महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भूमिका को लक्ष्य करते हुए उन्होंने लिखा था कि– ''मेरा ख्याल है कि ऐसी कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्मबल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं

चलायी जा सकती। ''अगर मै ंने अखबार निकालकर दक्षिण अफ्रिका म ें बसी हुई भारतीय जमात का े उसकी स्थिति न समझायी होती और सारी दुनिया में फैल े हुए भारतीयों क े दक्षिण अफ्रिका में क्या कुछ हो रहा है इससे इंडियन ओपिनियन' के सहार े अवगत न रखा हा ेता ता े मैं अपन े उद्देश्य में सफल नही ं हो सकता था। इस तरह मुझ े भरोसा हो गया कि अहिंसक उपायों से सत्य की विजय क े लिए अखबार एक बहुत ही महत्वूपर्ण एवं अनिवार्य साधन है।''

गांधी जी ने अपने आदर्शों के साथ कभी कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने पत्रकारों के लिए एक आधार भूमि बनायी और सिखलाया कि भले ही व्यक्तिगत क्षति क्यों न उठानी पड़े पर जनता के विश्वास और हित के सामने कभी नहीं झुकना चाहिए।वे मानते थे कि समाचार पत्र केवल समाचार पत्र नहीं बल्कि विचार पत्र हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है कि ''अगर तुम्हे सही लिखने और उचित कार्य करने पर गिरफ्तार किया जाता हो जमानत देने सें इंकार कर या प्रकाशन बंद कर दो। प्रेस बंद करने में सरकार सफल भी होती है तो उससे अधिक महत्वपूर्ण है राष्ट्र का चिंतन।'' उन्होंने पत्रों के माध्यम से राष्ट्र के नागरिकों को अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत किया। उनमें राजनैतिक चेतना उत्पन्न की। गांधी जी के पहले पत्रिकायें घटनाओं का ध्यान मात्र खींच देती थी पर इन्हा ेंने अपने पत्रों के माध्यम से साहित्य, संस्कृति, समाज, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों को पत्रकारिता से जोड़ा।

गांधी जी ने समाज में उपेक्षित अस्पृश्यों को नया नाम 'हरिजन' दिया। 'हरिजन' पत्र में उन्होंने अपने 'सपनों के भारत' के बारे में लिखा है कि –'' मै ं एक ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें गरीब से गरीब लोग यह महसूस करेंगें कि यह देश उनका है कि उसके निमा ण में उनकी आवाज प्रभावकारी है। ऐसा भारत जिसमें ऊँची और नीची जाति के लोग नहीं होंगे ।'' सांप्रदायिकता के बारे में उन्होंने लिखा कि –''ऐसे भारत मेंसभी संपदायों के लोग पूर्ण सामंजस्य के साथ रहेंगे। छुआछूत के अभिशाप की गुंजाइश नही ं हा ेगी। स्त्रियां भी पुरूषों के समान अधिकार का प्रयोग करेगी।''

समाज में स्त्रियों की भागीदारी समान रूप से होनी चाहिए ऐसा वे मानते थे। उन्होंने एक जगह लिखा है कि –''स्त्रियों के सहयोग क े बिना हमारी स्थिति उस अदुरदशी व्यापारी के समान है जो आधी पूंजी स े व्यापार करता है।'' गांधी जी ने पहली बार स्वतंत्रता संग्राम से स्त्रियों को जोड़ा, जिससे स्वतंत्रता की आग जन–जन तक पहुंची। गांधी जी ने पत्रकारिता को स्वार्थ एवं व्यावसायिकता से दूर रहने की बात कही।पत्रकार जनता के हितों के प्रहरी हैं। अगर वही स्वार्थ लोलुप हा े जाय ें ता े राष्ट्र काभविष्य क्या होगा? यह बात वे अच्छी तरह जानत थे। लेखनी को बिल्कुल निष्पक्ष एवं उद्देश्यपूर्ण होना चाहिएं उन्हेंने लिखा है कि –''समाचार पत्र एक प्रचण्ड शक्ति है, परंतु जिस प्रकार निरंकुश जल का प्रचण्ड प्रवाह गांव के गांव डूबो द ेता है और सारी फसल का नाश कर देता है उसी प्रकार निर ंकुश ल ेखनी का प्रवाह भी सर्वनाश का सृजन करता है।'' वस्तुतः गांधी जी स्वार्थपरता से बचकर ही सजग पत्रकार के रू में जनमानस पर छा गये थे। भारत में फैली अशिक्षा एवं अंधविश्वास से वे चि ंतित थे उन्होंने अपने पत्र में लिखा है कि– ''एक अर्द्धशिक्षित राष्ट्र न कला की सोच सकता है, न धर्म की, न संगठन की। वे भारत में संगीत को लोकप्रिय बनाना चाहते थे।'' इसे वे शिक्षा का एक माध्यम मानते थे। संगीत के संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि– ''यह अत्यंत खेद की बात है ं कि संगीत का अध्ययन हमारे देश में अप ेक्षित है। इसके बिना पूरी की पूरी शिक्षा ही अधूरी मालूम पड़ती है। प्रसंग वश सिनेमा एवं थिय ेटर के बारे में उनकी सोच नकारात्मक थी। एक जगह उन्हा ेंने लिखा है यदि मुझे देश का प्रधानमंत्री बनाया गया तो मैं सभी सिनेमा और थियेटरों को बंद कर दुंगा।'' बापू के चिंतन और विचार विशालकाय गांधी वांग्मय में संकलित है। गांधी जी की लेखनी का रचना संसार विस्तृत एवं व्यापक है–1 आत्मकथा (सत्य के प्रया ेग 2. प्रार्थना–प्रवचन (दो भाग), 3. गीता–माता, 4. पंद्रह अगस्त के बाद, 5. धर्मनीति, 6. ब्रह्मचर्य (दो भाग) , 7. आत्मसंयम, 8. दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह 9. अनीति की राह पर, 10 गीता–बोध, 11. अनासक्ति–योग, 12. ग्राम सेवा, 13. मंगल–प्रभात, 14. नीधि–धर्म, 15. आश्रवासियों से, 16. हमारी मांग, 17. एक सत्यवीर की कथा, 18. सर्वोदय, 19. हिन्द–स्वराज्य, 20. हृदय–मंथन के पांच दिन, 21. बापू की सीख, 22. गांधी शिक्षा (तीन भाग), 23. आज का विचार (दो भाग), 24. गांधी जी ने कहा था (नौ भाग) 25. भारत स्वतंत्र कैसे हो?

गांधी जी का संपूर्ण लेखन गांधी वांगमय के रूप में प्रकाशित हो चुका है, जो साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में समादृत है। यों ता े उनका समग्र लेखन महत्वपूर्ण और राष्ट्रोत्थान के लिए समर्पित है परन्तु उनके संपूर्ण लेखन में उनकी आत्मकथा' सत्य के मेरे प्रयोग' अत्यन्त विशिष्ट है। आत्मकथा लिखना अत्यन्त ही दुःसाहस का कार्य है। उनके एक निर्मल साथी ने उन्हें आत्मकथा लिखने से मना किया था। '' आप आत्मकथा क्यों लिखना चाहते हैं? यह तो पश्चिम की प्रथा है, पूरब में तो किसी ने लिखी जानी नही ं

और लिखेंग` क्या? आज जिस वस्तु को आप सिद्धांत के रूप में मानते है ं उसे कल मानना छा`ड़ दें तो? अथवा सिद्धांत का अनुसरण करके जा` भी कार्य आप करते हैं उन कार्यों में बाद में हेर–फेर करें तो? बहुत से लोग लेखों को प्रमाणभूत समझकर उनके अनुसार अपना आचरण गढ़ते हैं, वे गलत रास्ते चले जाये तो ? इसलिए सावधान रहकर फिलहाल आत्मकथा जैसी चीज न लिख ें ता` क्या ठीक न होगा? गांधी जी ने कहा कि–''मुझे आत्मकथा कहां लिखनी है, मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किये हैं उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनमें मेरा जीवन ओत–प्रोत होने के कारण कथा एक जीवन वृतांत जैसी बन जायेगी लेकिन, अगर उसके हर पन्ने पर मेरे प्रयोग ही प्रकट होतो मैं स्वयं उस कथा को निर्दोष मानूंगा। मैं ऐसा मानता हूं कि मेरे सब प्रयोगो ं का पूरा ल`खा जनता के सामने रहे, तो वह लाभदायक सिद्ध होगा अथवा यों समझिये कि यह मेरा मौह है। राजनीति के क्षेत्र में हुए मेरे प्रयोगों को तो अब हिंदुस्तान जानता है। यही नहीं बल्कि थोड़ी बहुत मात्रा में सभ्य कही जाने वाली दुनिया भी जानती है। ..... मुझ` जा` करना है, तीस वर्षों से मै ं जिसकी आतुर भाव स` रट लगाय ` हुए हूं वह ता` आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है मोक्ष। म`रे सार` काम इसी दृष्टि से हा`ते हैं। मेरा सब ल`खन भी इसी दृष्टि से हा`ता है और राजनीति के क्षेत्र में मेरा पड़ना भी इसी के अधीन है।''

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में कई महत्वपूर्ण घटनाओं का निर्भीक होकर उल्लेख किया है। गांधी जी की लेखनी जन कल्याण में रमती थी, वह भी विशेषतः निर्धन और कमजोर के लिए। गांधी जी ने अपनी लेखनी से हम सबको एक जंतर दिया है– तुम्हें एक जंतर देता हूं, जब भी तुम्हें स ंदेह हा` या तुम्हारा अहं तुम पर हावी हा`ने लग` ता` यह कसौटी आजमाओं– जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो , उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से प ूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा? क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा। जिनके पेट भूखे है और आत्मा अतृप्त है। तुम तब देखोगे कि तुम्हारा स ंदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होत` जा रहा है।''

महात्मा गांधी का समग्र लेखन सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम और अपरिग्रह का ज्वलन्त उदाहरण है। उनका संपूर्ण जीवन राष्ट्र की बलिवेदी पर अर्पित दिव्य सुगंधित सुमन है। उनका सारा जीवन और लेख सत्य का प्रयोग है। सत्य रूपी सूर्य की किरण से ही उनका पथ प्रोद्भसित हुआ है। वे विभिन्न क्षेत्रों से मधु बटोरते रहे और वे अपने साधना पथ पर बढ़ते रहे। वे 'भगवद्गीता' : तुलसीकृत 'रामचरितमानस' रस्किन की पुस्तक 'अन टू दि लास्ट, खलील जिब्रान की पुस्तक द प्रोफेट, स्वामी विवेकानंद के 'राजयोग' तथा पतंजलि के या`गसूत्र से पाथेय लेकर ही संग्राम पथ पर निकल पड़े थे।

महात्मा गांधी बंधनमुक्त जीवन के जन्मदाता थे। वे मानवशास्त्र के हितचिंतक थे। वे उनके तन के चितेरे नहीं वरन् आत्मा के महान शिल्पी थे। उनके आदर्श पुरूष थे मर्यादापुरूषोत्तम श्रीराम और उनका आदर्श राज्य था रामराज्य। मानवता को संवारने के लिए विश्ववंद्य महामानव बापू ने आत्मबलिदान किया। उनकी लेखनी की पवित्रता और तेज का प्रभाव राजा एवं रंक सब पर एक समान पड़ता था। उनका विचार था –''सच्चे रहो और हृदय का` निर्मल और सख्त रखो, दुख में भी प्रसन्न रहो तथा भय और विपत्ति में स्थिर रहो। जीवन म ें प्रीति रख मृत्यु से मत डरो।'' नामी अंग्रेज होरेस एलेक्जेंडर ने बापू से पूछा – क्या आप अंग्रेजों के लिए कोई संदेश देंगे, तो बापू ने झट कहा– सबसे पहली बात हम यह चाहते हैं कि अब आपलोग हमारी गर्दन पर सवार न रहें। छायावादी कवि सुमित्रनंदन पंत ने ठीक ही लिखा है कि–

बापू! तुमसे सुन आत्मा का तेज राशि आह्वान।
हंस उठते है ं स्नेह हर्ष स` पुलकित होते प्राण।।
नवस ंस्कृति के द ूत, देवताओं का करन` कार्य।
मानव आत्मा को उबारने आय` तुम अनिवार्य।।

राष्ट्रकवि दिनकर ने गांधी जी के संदर्भ में लिखा है कि– बापू ने सत्य, अहिंसा और प्रेम का जो मार्ग दिखलाया है उसपर चलकर विश्व का कल्याण सुनिश्चित है–

बापू ने राह बता डाली, चलना चाहे स ंसार चले।
डगमग हा`तें हों पांव अगर तो, पकड़ प्र`म का तार चलें।।

डॉ0 ज ंगबहादुर पाण्डेय
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
चलभाष : 9431595318, 8609659634
Email - pandey_ru05@yahoo.co.in

42

महादेवी वर्मा का नारी चिन्तन

डॉ0 अंजु कुमारी

सारांशः

छायावाद की अमंद तारीका सुश्री महादेवी वर्मा मूलतः कवित्री है। किन्तु उन्होंने गद्य भी लिखे हैं, संस्मरण भी लिखा है, निबंध भी लिखा है और रेखा चित्र भी। सामान्यतः महादेवी को वेदना की गायिका कहते हैं। वेदना अर्थात दुख उनके काव्य में दुख की विवृति हुई है। इसलिए वह वेदना के दुख और वेदना से प्राप्त सुख दोनो से परिचित है। वेदना ने ही उनके काव्य को एक अलग पहचान दी है। इसलिए मेरे मन की जिज्ञासा महादेवी वर्मा के नारी परक नारी संबंधी चिन्तन की ओर गई। क्योंकि एक स्त्री जितनी वेदना झेलती है, इतनी ही उसको समझती भी है। महादेवी जी एक संभ्रांत महिला रही है, पढ़ी–लिखी विदूशी महिला है और स्वयं दुख को जानने पहचानने वाली महिला हैं। इसलिए मेरे मन की जिज्ञासा का आधार महादेवी जी बनी।

महादेवी के नारी विशयक विचारों को जानने के पूर्व हमें उनके व्यक्तिगत बातों को जानना और समझना जरूरी है। महोदवी अपने संस्मरण ग्रंथ में खुलासा करती है कि उनके पिता नास्तिक थे और माता आस्तिक। पिता मांसाहारी थे और माता षाकाहारी। अर्थात महादेवी ने बेमेल षादी घर में ही देखी।1 इस बेमेलपन में उनके माता–पिता सामंजस्य बिठा लिया था। क्योंकि पिता एक षिक्षक थे और माँ आदर्ष गृहिणी और दोनों का प्रभाव महादेवी ने ग्रहण किया।

महादेवी के जीवन का एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है कि उसके पिता ने उसे षिक्षा प्रेमी बनाया तथा अन्याय के प्रति विद्रोह, न्याय एवं स्वाभिमान के लिए दृढ़ता एवं सहिश्णुता का पाठ पढ़ाया था।[2] इस महादेवी के व्यक्तित्व में संवेदनाषीलता, भावुकता, चिन्तनषीलता और विरोध करने की क्षमता के दर्षन होते हैं। इसलिए महादेवी ने कभी परिस्थितियों से समझौता नहीं किया। अपितु परिस्थितियों को अपने अनुरूप ढालने के लिए विवष किया। 3

अब महादवी के निजी जीवन पर दृश्टिपात करने से यह स्पश्ट हो जाता है कि महादेवी ने नौ वर्श की उम्र में रचायी गई षादी को क्यों तिलांजली दी थी। एक बार ससुराल गई फिर दोबारा कभी नहीं गई। उसने बी. ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। फिर भी उस किषोरावस्था में उसने अपने गौना (दुरागमन) नहीं होने दिया। अर्थात् नौ वर्श की आयु में उसने जो वैवाहिक जीवन का अनुभव किया उसी के आधार पर उन्होंने वैवाहिक एवं गार्हस्थ जीवन से मुक्ति पाने की सोच बना ली थी और इस सोच से तनिक भी नहीं डिगी। दृढ़ निष्चय पर डअी रही और इसकी एक स्पश्ट झलक दिया षीर्शक कविता में हमें दिखलायी पड़ जाती है –

धूली के जिन लघु कणों में है न आभा प्राण,
तू हमारी ही तरह उनसे हुआ वपुमान ।
आग कर देती जिसे पल में जलाकर क्षार,
है बनी उन तूल से वाती नई सुकुमार ।

महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व जीवन की उपर्युक्त बातें और घटनाएँ है उनके चितन में सजधज कर प्रस्तुत हुई है जो महोदवी की विवेचनात्मक ग्रंथों, गद्यों श्रृंखला की कड़ियों में दृश्टिगोचर होती है। यहाँ मेरा प्रयास केवल यही दिखलाना है कि महादेवी के जो नारी संबंधी विचार है, संदेष हैं, प्रेरणा हैं, वह हवा–हवाई नहीं हैं बल्कि व्यवहारिक अनुभूतियों से उद्भूत है। इसलिए नारी के प्रति उनका दृश्टिकोण यथार्थवादी कहा जा सकता है।

महादेवी ने नारी जगत को जो पहला संदेष दिया वह है नारी का कार्य। उन्होंने स्पश्ट कहा है कि जीवन के स्वाथ्य निर्माण में नारी को लगना होगा, जीवन को ध्वंस करने से बचना होगा।4 महोदवी ने ऐसा क्यों कहा तो इसे समझने के लिए हमें तत्कालीन स्वतंत्रता आन्दोलन के पुरोधा बापू की उस पवित्र वाणी को देखना होगा, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'अगर बहनें मेरे साथ नहीं आएगी तो मैं सौ वर्ष स्वतंत्रता का संग्राम लडूँगा तो भी स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। अर्थात् स्वतंत्रता तभी मिलती है जब नारी स्वतंत्र होती है और स्वतंत्र होकर रचनात्मक कार्य करती है।5

महादेवी ने षिक्षण पेषा को अपनाया था इसलिए उन्होंने षिक्षण संस्था को अपना घर बना लिया था। इसलिए षिक्षक महाविद्यालय खंडवा में उन्होंने स्पश्ट घोशणा की थी। 'मेरा परिवार तो षिक्षकों, विद्यार्थियों का ही है। मैं जहाँ जाती हूँ लगता है परिवार में हूँ। 6 इसलिए महादेवी ने नारी को जो दूसरा संदेष दिया है वह है षिक्षा। षिक्षा को वह उसका मूल अधिकार बतलाती है, क्योंकि षिक्षा प्राप्त करने के बाद ही नारी अपना उचित मार्ग ढूंढने में समर्थ हो सकेगी।7

इतना ही नहीं षिक्षा प्राप्त महिलाओं को भी एक संदेष देना चाहती हैं कि वे लिखती है कि– ''मेरी समझ में नहीं आता कि जब एक किसान पत्नी अपनी घर का सारा काम करके खेती के

कामों में अपने पति का हाथ बंटा सकती है तो एक षिक्षित नारी घर के काम से अवकाष पाकर क्यों नहीं अषिक्षित बालक–बालिकाओं को पढ़ा सकती है या फिर अस्पतालों में जाकर क्यों नहीं रोगियों की सेवा कर सकती हैं। जबकि उसकी कोमल भावनाएँ और उसका ममतापूर्ण हृदय इस काम को करने में सबसे अधिक उपयुक्त है।''8

नारी की परिभाशा आंचल में दूध और आँखों में पानी कहकर गुप्त जी ने दी थी। लेकिन वेद व्यासी मीरा ने स्त्री–पुरूश की लघु सीमा रेखा को हटाकर मिटाकर एक सचेतन प्राणी का बोध कराते हुए स्पश्ट लिख दिया कि सब आँखों के आँसू उजले तात्पर्य यह कि दुख तो सबके लिए है केवल स्त्री को ही नहीं। स्त्री को दुख तब होता है जब कोई दूसरा दुखिया उसे और दुख देने लगे, वह चाहे स्त्री हो या पुरूश। पुरूश के पास से स्त्रियों के लिए मापदंड है वह अधूरा है, एकाकी है। वह नारीत्व का अनुमान कर सकता है, परंतु अनुभव नहीं। इसलिए अगर पुरूश स्वस्थ जीवन जीना चाहता है तो उसे स्त्री को श्रृंखला मुक्त करना होगा और स्त्री भी उसकी सहयोगी बन कर एक–एक कड़ियाँ हटाने में मदद करेगी। इसलिए षासकीय कन्या महाविद्यालय के षिक्षिकाओं और छात्राओं को संबोधित करते हुई उन्होंने कहा था कि ''भारत का भविश्य आपके हाथ में है। लड़कों के हाथ में नहीं है ..... सब कहते हैं लड़की तो पराये घर का धन है यानि वह दान है संपत्ति है, समान है, जीवित व्यक्ति नहीं है, तो आप सामान बनने से इन्कार कर दीजिए। ..... आप सीता बनिये। मान लिया की राम रक्षा करने गये थे वन में। लेकिन रावण के यहाँ रक्षा कौन करता था सीता की। वहाँ तो राम–लक्ष्मण नहीं थे। उन्हें पता ही नहीं था, ढूंढ ही रहे थे। सीता ने अपने वर्चस्व से अपनी षक्ति से अपनी रक्षा की। रावण उसको अपने प्रासाद में, भवन में नहीं ले जा सका .... जब लव–कुष बड़े हो गए और राम लव–कुष बड़े हो गये और राम लव–कुष से हार गये तो उन्होंने सीता से कहा कि अब अयोध्या महरानी होइए और अयोध्या चलिए। सीता ने साफ इन्कार कर दिया।

कोई माता अपने पुत्रों के सामने परीक्षा देती है अपने सतीत्व के लिए। नहीं देती है ..... ऐसा पति जो किसी के कहने से पति का कर्तव्य भूल जाये, उनके साथ क्यों जायेगी। नहीं गई वह । ..... आप मानव जीवन की निर्मात्री जीवन की श्रुति है। आत्मा की श्रुति है। बड़ा से बड़ा व्यक्ति भी माँ की गोद में आयेगा, चाहे राम हो या कृश्ण हो, बुद्ध हो ..... किसी माता के आँचल की छाया में पला–बढ़ा होगा। उसकी आँखों के सपने में अपने आपको देखेगा।

'नीर भरी दुख की बदली राग' अलापने वाली महादेवी ने जब 'मधुर–मधुर मेरे दीपक जल' के आमंत्रण से नारी के पथ को आलोकित करने का प्रयास किया तो सदियों की बेड़ियाँ और कड़ियाँ झनझनाने लगी, टूटने और खुलने लगी। नारी की आजादी की साँस लेकर जीने लगी। अब नारी का काम, क्रीड़ा से ऊपर उठने लगी। षिक्षा की अर्गला खोलकर समस्याओं से निजात पाने लगी। इसलिए इलाचंद जोषी ने श्रृंखला की कड़ियाँ का मूल्यांकन करते वक्त लिया – ''महादेवी के जीवन का उद्देष्य केवल जीवन के अंधकारमय पथ को आलोकित करना ही नहीं था। युग–युग से समाज की कठिन लौह श्रृंखला द्वारा जीवन की काल कोठरी में कैद नारी समाज के प्रति उनकी जन्मजात सहानुभूति रही है। उन्होंने अपने ही पराक्रम से स्वयं अपनी श्रृंखला तोड़ी थी। श्रृंखला की कड़ियाँ एक–एक करके गिना कर उन्होंने भारतीय नारी को अपनी दयनीय दासका और अवमानना की स्थिति से उपर उठने की प्रेरणा दी और आत्मरत पुरूश समाज को ललकारा कि वह नारी को कठघरे में रखने के अपने तथाकथित अधिकार को सिद्ध करे।

1. महादेवी : संस्मरण ग्रंथ – पृष्ठ – 4–5
2. महादेवी – नया मूल्यांकन (डॉ0 गणपति चंद गुप्त) – पष्ठ–24
3. महादेवी – नया मूल्यांकन (डॉ0 गणपति चंद गुप्त) – पृष्ठ–25–26
4. श्रृंखला की कड़ियाँ – पृ0 – 47
5. आज कल अंक – 5 – सितम्बर – 1954, पृष्ठ – 23
6. आज कल अंक – 5 – सितम्बर – 1954, पृष्ठ – 23
7. आज कल अंक – 11 – सितम्बर – 1954, पष्ठ – 21
8. श्रृंखला की कड़ियाँ – पृ0 – 65–66

डॉ0 अंजु कुमारी
सहायक शिक्षिका,
उ0 मध्य विद्यालय पतौना
जमुई, बिहार।

43

कुरूक्षेत्र का मूल स्वर मानवतावाद है।

डॉ० नवीन कुमार

सारांशः

कुरूक्षेत्र सात सर्ग में विभाजित है। इसमें युधिश्ठिर और भिश्म का वर्णन है। इसमें महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया है युद्ध के बाद युधिश्ठिर पुरूश विहिन राज्य के राजा बने है। इसमें भीश्म हिंसा को अनिवार्य बताते हैं। युद्ध को अनिवार्य बताते है। उनका मानना है कि तूफान इसलिए जरूरी है कि जब तक तूफान नहीं आएगा वृक्ष के कमजोर और पीले पत्ते गिरेगें नहीं।

भीश्म का मानना है कि सुःख और दुःख को परिभाशित करना इतना आसान नहीं हैं यह प्रकृति प्रदत है आपके चाहने न चाहने से कुछ भी नहीं होगा! कुरूक्षेत्र में कवि ने बताया है कि युद्ध अन्यायी भी करता है और अन्याय से मुक्ति चाहने वाला भी! कवि अंततः यह सोच नहीं पाता है कि युद्ध शांति के पहले है या शांति के बाद लेकिन इतना निश्चित है युद्ध समस्या के एक उत्तर है एक तात्कालीक समाधान युद्ध के संबंध में कवि के तीन निश्कर्श है :– (I) यह कमजोरो को गिराकर सबलों को सत्ता सौपता है। (II) यदि युद्ध ज्वलित प्रतिशोध पर आधारित हैः वह अनैतिक नहीं है।

"पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर"

(III) सामूहिक हित के लिए कवि युद्ध के परार्वतन को अनिवार्य मानता है।

कुरूक्षेत्र में दिनकर जी ने युधिश्ठिर की शंकाओं की बार–बार सामने लाकर यह बताना चाहा है कि उसके मन की शंकाएँ युद्ध से हासिल जीत पर सामूहिक हित को ध्यान में रखकर किए गए विचार का परिणाम है। युधिश्ठिर को लगता है कि तब अहंकार ने विवेक पर पर्दा सा डाल दिया था। यदि वे जानते की युद्ध का अंत भीशण रक्तपात में होगा! अपने से अपनो की विक्षोम ही इसकी परिणती है तो मैं तप और त्याग से दुर्योधन को समझाने की कोशिश करता और उसके नहीं मानने पर सत्ता संघर्श से बाहर होकर जीविका के लिए कोई नृकृश्टय कर्म ही चून लेता। मुझे क्या पता था कि यह युद्ध मानवीय मूल्यो को तहश नहश कर देगा! यह मनुश्य को पाप के गर्त में ले जाता है। यह युद्ध शांति सुव्यावस्था और विकास का कारण नहीं है। यह कारण है अशांति अव्यवस्था और विनाश का! युधिश्ठिर की दुविधा अब भी बनी हुई है। वे पूछना चाहते है कि युद्ध मानवीय मंगल के लिए या अमंगल के लिए यह नैतिक है या अनैतिक भीश्म का उत्तर है।

"झीणता हो स्वत्व और तू त्याग तप से काम ले यह पाप है पुण्य है विक्षिप्त कर देना उसे बढ़ रहा हो जो तेरी तरफ हाथ है"

सम्राज्य सुख खुन से सने किचड़ में उगा हुआ कमल है। निदोर्शो का खुन बहाकर जो सत्ता हथियाई जाती है उसमें छल है प्रवंचना है। ऐसे सत्ता सुख में समान्य मनुश्य की कामना तिरोहीत हो जाती है। मनुश्य असुरक्षा में जीने का अभ्यस्थ होने लगता है। लेकिन इस शंका के बावजूद भी युधिश्ठिर का आशावाद खत्म नहीं हुआ है। युधिश्ठिर अपने आशावाद में ही मानवतावाद ढ़ँढते है। वो सोचते है :–

" कुरूक्षेत्र की धूल नहीं इतिपंथ का मानव उपर और चलेगा मनु का यह पूत्र निराश नहीं नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा "

कवि के अनुसार विकास में ही मनुश्यता की गति है। कवि युधिश्ठिर के बहाने इस काव्य में समतावाद को अपना आधार बनाता है। युद्ध और शांति व्यक्ति ओर समाज नियतीवाद और कर्मवाद विज्ञान और अध्यात्म के बीच कोई तो रास्ता हो जहाँ आदमी सुकुन का अनुभव करें।

अंततः संघर्श में नहीं सामजस्य में उत्तर ढुँढ़ता है। विकास द्वन्द मूलक हो सकता है। लेकिन जीवन में शांतिमूलक पूर्णता सामंजस्य से ही संभव है। कवि की स्थापना है कि दो विरूद्धों में सामजस्य द्वारा ही मनुश्य एक संतुलित जीवन दुश्टि पा सकता है। क्योंकि व्यक्तिगत भोग की प्रकृति तो अंततः दूसरो में असंतोश ही जगाती है। शांति के लिए असंतोश ओर असमानता नहीं समता और सामंजस्य काम्य है।

"शांति नहीं तब तक सुख भाग नहीं नर का काम हो नहीं किसी को बहुत अधिक हो नहीं किसी को कम हो"

कवि अंततः कुरूक्षेत्र में मानवतावाद को ही सारी समस्याओं का समाधान माना है।

संदर्भ सूची :–

1. रामधारी सिंह दिनकर, कुरूक्षेत्र, पृश्ठ 11
2. कुरूक्षेत्र, तृतीय सर्ग, पृश्ठ 24
3. कुरूक्षेत्र, चतुर्थ सर्ग, पृश्ठ 24
4. रामधारी सिंह दिनकर, कुरूक्षेत्र की भूमी का पृश्ठ 03

विश्वासभाजन
डॉ० नवीन कुमार
प्राचार्य +2 उच्च विद्यालय
सुन्दरपहाड़ी, गोड्डा,
झारखण्ड
मो०–8757123840
पिन– 814156

44

''भगवान दास मोरवाल के उपन्यास 'काला पहाड़' में लोक–जीवन''

डॉ0 कृष्णा, जून पूनम कुमारी

सारांशः

लोक' शब्द का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। वेदों से लेकर हिन्दी भाषा और साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग विविध प्रसंगों और अर्थों में किया गया है। यूरोपीय भाषा में लोक शब्द का समानार्थी (Folk) 'फोक' है। यह एंग्लोसैक्सन शब्द है जो जर्मनी में 'वोल्क' (Volk) के रूप में प्रचलित है, आंग्ल भाषा में यह शब्द 'असंस्कृत' के लिए भी प्रचलित है। किन्तु भारतीय आलोचक आचार्य रामचन्द्र 'शुक्ल' ने 'चिन्तामणि' में लोक–मंगल, लोक व्यवहार, लोक–धर्म आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए इसका अर्थ विस्तृत संस्कृति और समाज के रूप में लिया है। 'लोक' शब्द विद्वानों ने एक ओर अशिक्षित और देहाती जन के लिए प्रयुक्त किया है वहीं दूसरी ओर प्राचीन विश्वासों और अनुश्ठानों को जीवित रखने की संजीवनी बूटी भी माना है। लोक साहित्य के मर्मज्ञ डा0 सत्येन्द्र के अनुसार, ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्म संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य चेतना के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।''

डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' के संबंध में लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या गाँव नही है, बल्कि गाँव एवं नगरों में फैली वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं, ये लोग नगर के परिश्कृत, रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल एवं अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।''

'लोक–जीवन' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'फोक–लाइफ' का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः लोक–जीवन समाज का वह वर्ग है जो सुसंस्कृत व परिश्कृत रूचि रखने वाले वर्ग से दूर अकृत्रिम व सहज जीवन जीने का अभ्यस्त है। डा0 कृश्ण देव उपाध्याय के मतानुसार– ''लोक संस्कृति के अन्तर्गत जन–जीवन से संबंधित जितने भी आधार–विचार, रहन–सहन, विधि–निशेध, प्रथा–परम्परा, धर्म–कर्म, पूजा–पाठ, खान–पान, वेश–भूषा और मूलाग्रह–अनुश्ठान आदि हैं, वे सभी इसके अन्तर्गत आते हैं।''

भगवान दास मोरवाल हिन्दी कथा–साहित्य में अपनी लोक देशज छवि के कारण अलग पहचान रखते हैं। कथा–जगत में मोरवाल जी को विशिश्ट पहचान दिलाने का श्रेय उनके उपन्यास 'काला पहाड़' को ही जाता है। जिसमें उपन्यासकार ने अपने हृदय की अन्तः गहराईयों से अपनी जन्मभूमि मेवात की पृष्ठभूमि को अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिन्दू–मुस्लिम लोक जनजीवन की जमुनी धारा को प्रवाहित करने के साथ–साथ उन्होंने दो धर्म, समाज संस्कृतियों के आपसी सामंजस्य, प्रेम, सहृदयता व समय के अन्तराल के साथ उनमें आए हृदय–विदारक परिवर्तन एवं उथल–पुथल को भी जीवन्तता के साथ प्रकट किया है।

लोक–जीवन के सिरजनहारा भगवान दास मोरवाल ने अपनी साहित्य–यात्रा को अपने लोक साहित्य–सृजन के द्वारा उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया है। मोरवाल जी ने अपनी जन्मस्थली मेवात और वहाँ के लोक–जनजीवन को आत्मसात किया है। मेव बाहुल्य यह जिला भले ही हरियाणा का 'काला पानी' या 'मिनी पाकिस्तान' के नाम से जाना जाता हो, लेकिन उपन्यासकार ने हिन्दू–मुस्लिम मिश्रित संस्कृति जो मणिकांचक स्वरूप व्यक्त किया है, वह लोक–जीवन में पनपते साम्प्रदायिक संकीर्णता के मुँह पर तमाचा है। दुःख, विषाद, अवसाद, आतंक, भय, नैतिक व व सांस्कृतिक मूल्यों का पतन, पलायनवाद आदि विशैली समस्याओं के बावजूद भी वर्तमान ग्रामीण जन–जीवन आत्मीयता और अपनत्व के भावों से सराबोर है।

देश की मुख्य धारा से वंचित मेवात का लोक–जीवन भले ही आधुनिक युग में भी शैक्षणिक दृश्टि से पिछड़ा और जीवन शैली से असुसंस्कृत हो किन्तु इसका गौरवमय अतीत, मिली–जुली तहज़ीब, मिश्रित संस्कृति और जन के भोले–भाले मनोभाव पूरे देश में अलग रूप में दर्ज होते हैं। लोक जन–जीवन शहरी–सभ्यता और संस्कृति के अपेक्षा भले ही कम परिश्कृत व सुसंस्कृत हो, लेकिन संबंधों की तन्यमता की गहनता उनकी अपेक्षा कहीं अधिक होती है। आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता ने लोक जीवन और उनकी विचारधारा को भले ही प्रभावित किया हो लेकिन उसकी निजता को छीनने में असफल रहे हैं। उपन्यास में सलेमी, मनीराम, नसीब खाँ और छोटेलाल आदि पात्र लोक जीवन की आन्तरिक पहचान बचाने के लिए निरन्तर जद्दो–जहद करते दिखाई देते हैं। आर्थिक अभावों ने लोक जीवन को बड़े स्तर पर प्रभावित किया है। लेकिन लोक–जीवन की सबसे बड़ी शक्ति वह जीवनदायिनी भावात्मक स्नेह है, जो आपसी संबंधों और मातृभूमि प्रेम को बनाए रखने में कामयाब है। आज की अर्थ लोभी प्रवृत्ति में संबंधों का भले ही ह्रास हो रहा हो, रिश्ते टूट कर बिखर रहे हों, किन्तु लोक जीवन में संबंधों को बचाने की शाश्वता आज भी जीवित है। उपन्यास के पात्र बासित और हाकिम अपने पिता सुलेमान का दूसरा विवाह करने का विरोध करते हुए, जमीन–ज़ायदाद के बँटवारे को लेकर झगड़ा करते हैं।

बीमार लाचार पिता को छोड़कर अलग हो जाते हैं लेकिन सलेमी जैसे लोक प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र लोक संस्कृति, परम्पराओं व रीति–रिवाज व सामाजिक सद्भावों को बचाने वाली वह जड़ है जो पुरानी होने पर भी जीवनदायिनी का काम करती है। पिता–पुत्रों के शाश्वत व पवित्र रिश्ते को बचाने को हर संभव कोशिश करता है और उसमें सफल भी होता है– ''लाला हाकम, ई तो तमन्ने अब निभानी पड़ेगी.....चाहे खुसी–खुसी निभाओ या रो–पीट के निभाओ।''[4] समाज के लोक जीवन की सबसे बड़ी उदारता यही है कि पारिवारिक संबंध खुद तक सीमित न होकर सामाजिक होते हैं। बड़ों का मान–सम्मान आज भी लोक जीवन में सुरक्षित बचा हुआ है।

मोरवाल जी ने उपन्यास मे दर्शाया है कि मेवाती लोक–जीवन विकास की मुख्य धारा व औद्योगीकरण से परे होने के कारण पलायनवाद की समस्या से जूझ रहा है। परिवार के परिवार अपने सामानों को गाड़ियों में लाद–लादकर अपने परिवार सहित शहरों की तरफ जाने को मजबूर है। महँगाई और बेरोजगारी जैसी समस्याओं के कारण लोक–जीवन की शाश्वता अर्थात् स्थानीयता का मोह टूट सा रहा है। भौतिकवादी संस्कृति और दिल्ली जैसे महानगरों के आकर्षण ने लोक–जीवन की सनातनता का क्षरण में अहम् भूमिका निभाई है लेकिन मोरवाल जी ने अपने उपन्यास के द्वारा आत्मीयता, अपनत्व व संवेदनाओं के उन स्त्रोतो को अभिव्यक्त किया है, जो लोक जीवन की अक्षुण्णता को दर्शाते हैं। आज भले ही गाँव, मौहल्ले पलायनवाद के कारण खाली होते जा रहे हों लेकिन उपन्यास का पात्र छोटेलाल लोक–जीवन की अमूल्य थाती थानी जन्मस्थली प्रेम को बनाए रखने में सार्थक भूमिका निभाता है। छोटेलाल का कथन भले ही एकांगी हो लेकिन उसमें लोक–जीवन की सनातनता बनी हुई है– ''ताऊ, सही बात तो ई है के जो सुख अपना घर में है ऊ बाहर ना है.....अरे, हम तो पहली बर या गाँओ ए छोड़ के गया हा और जब उल्टा आया तो याँ कुछ भी ना मिलो..... ।''[5]

उपन्यासकार की दृश्टि में लोक–जीवन के लिए सबसे बड़ी संजीवनी है, इन अशिक्षित और असुसंस्कृत लोगों का आपसी स्नेह, विश्वास और एक–दूसरे के सुख–दुःख में साँझा होने का भाव। मेव–बाहुल्य मेवाती जन–जीवन में यदा–कदा साम्प्रदायिक संकीर्णता के बीज अंकुरित होते रहते हैं और इन बीजों को सींचने का कार्य करीम हुसैन, चौधरी मुर्शीद अहमद जैसे राजनेता, धर्म के ठेकेदार आर्य समाजी रूपानंद स्वामी जैसे लोग करते हैं। तथाकथित राजनेता और धार्मिक ठेकेदार मानसिक संकीर्णता के शिकार बाबू खाँ व सुभान खाँ जैसे पात्रों को अपने हाथों की कठपुतली बनाकर बाबरी मस्जिद बनाम अयोध्या राम मन्दिर को लेकर मेवात में हिन्दुओं के मन्दिरों में तोड़–फोड़ व लूट–पाट करवाते हैं। साम्प्रदायिक आगजनी व हिंसात्मक लूट–पाट के पीछे इन लोगों का उद्देश्य मात्र अपनी सत्ता को सुरक्षित रखते हुए हिन्दू–मुसलमानों में आपसी टकराहट पैदा करना है। लेकिन मेवाती लोक जीवन इन साम्प्रदायिक काँटों से दूर स्नेहमय भावों में संलिप्त है। राजनेता और धार्मिक पात्र रूपानंद स्वामी के द्वारा हिन्दू–मेवों में आपसी असुरक्षा और अविश्वास का भाव फैलाने की कोशिश की जाती है लेकिन मोरवाल जी ने सलेमी, नसीब खाँ जैसे मेव पात्र और मनीराम, बुद्धन एवं छोटेलाल जैसे लोक संस्कृति व परम्पराओं से जुड़े हिन्दू पात्रों की संरचना करके, यह दर्शाने में सफल रहे हैं कि मेवाती लोक जीवन रूपी उपवन में उपर्युक्त पात्रों का आपसी सौहार्दता जब तक बनी रहेगी, तब तक मानवीय मूल्यों की महक से लोक–जीवन महकता रहेगा। छोटेलाल की सलेमी के प्रति जो आन्तरिक सहृदयता है, वह निश्चित तौर पर साम्प्रदायिकता के संकीर्ण मापदण्डों को चूर–चूर करने की क्षमता रखता है। छोटेलाल के वाक्य में हिन्दू और मेवों का आपसी भाईचारा और अपनत्व का भाव साफ झलकता है– ''काका कैसा ड़रा कहीं अपना आदमीन सू डर लगे है..... ।''[6] छोटेलाल का यह वाक्य उस साम्प्रदायिक असुरक्षा और अविश्वास का छिन्न–भिन्न करने का सामर्थ्य रखता है जो लोक–जीवन से उसकी आत्मीय निजता को छीनकर उसे ह्रासोन्मुख करने का प्रयत्न करते हैं।

मोरवाल जी ने अपने उपन्यास काला पहाड़ में एक ओर जहाँ लोक जीवन की शाश्वतता का वर्णन करते हुए पारिवारिक, सामाजिक व संबंधों के आत्मीय जुड़ाव, पलायन व भौतिकवाद को चुनौती देते हुए मातृभूमि प्रेमभाव व साम्प्रदायिक संकीर्णता से जन्मे असुरक्षा और अविश्वास को खण्ड़ित करते हुए हिन्दू–मेव के आपसी आत्मीयता युक्त संबंधों की विजय दर्शायी है, वही दूसरी ओर उपन्यासकार यह भी व्यक्त करने में सफल रहा है कि नगरीय व महानगरीय जीवन की अपेक्षा लोक–जीवन ने ही हमारी शहादत की कुर्बानियों को संजोकर रखा हुआ है। आधुनिक भोगवादी व संवेदनशील युग में परिवार, समाज, मित्रों आदि से व्यक्ति के संबंध दरकने लगे हैं। अर्थ–लालसा और अधिक पाने की आकांक्षाओं ने व्यक्ति को इतना व्यस्त बना दिया है कि आधुनिक व्यक्ति अपने वृद्ध माता–पिता को समय नहीं दे पाता है, सदियों पहले शहीद हुए रणबांकुरों को याद करने की फुरसत आज किसी के पास नहीं है। उपन्यास में मोरवाल जी ने लोक–जीवन की छाया में उस ऐतिहासिक धरोहर की उज्ज्वलता को सुरक्षित बताया है जिसे आधुनिक युग में बड़े–बड़े राजनेता और राजनीतिक पार्टियाँ केवल अपनी स्वार्थ सिद्धियों के लिए प्रयुक्त करते हैं। चौधरी करीम हुसैन जैसे भ्रश्ट नेता अपनी सत्ता के बल पर अपने मरहूम पिता को 'बाबा–ए–कौम' की उपाधि से सम्मानित करवा देता है और हसन खाँ मेवाती जो इस कौम की हिफाजत के खातिर जीते–जी अपने प्राणों को होम कर देता है, उसकी शहादत को भुला दिया जाता है। किन्तु मेवाती आम लोक जनजीवन में आज भी इस रणबांकुरे की अमर गाथाएँ जीवन्त है। राष्ट्र प्रेम और बलिदान, समर्पण, शहीदों के प्रति सम्मान की भावना, अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के प्रति

अपनत्व की संवेदना लोक–जीवन के भीतर आज भी विद्यमान है। करीम हुसैन के द्वारा अपने पिता को दिलाए गए खिताब का विरोध और हसन खाँ मेवाती के प्रति नमन का भाव सलेमी को व्यक्त करते हुए कहता है– ''हाँ, तोकू ई राड़ की दीखे है.....जिन्ने या मुलक कू अपनी जान दे दी है, जीते जी जो बड़ पे लटकवा दिया हा.....आज उनकू जिन्दाबाज को भी टोटा पड़गो..... अरे, जिन्नै जिन्दगी भर हरी–हरी चुगी है, उन्ने तो मेवन को बाप बनायो जा रो है और जो पूरी उमर काला पहाड में भूखा–प्यासा पड़ा, उनको आज कोई नाम लेवा ना है... ।''[7]

इस प्रकार लोक–जीवन केवल संबंध, संवेदना, आपसी सहयोग, समर्पण आदि विशेशता के साथ–साथ अपने अतीत की स्वर्णिम अमर गाथाओं को भी अपने भीतर समेटे हुए है।

आधुनिक युग में मनुश्य के जीवन मूल्य, परम्पराओं और संस्कारों में बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है। लोक–जीवन परम्पराएँ व रीति–रिवाज आज भी अपने धार्मिक–सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध बनाने के लिए उन्हें पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहमान कर रहे हैं। जन्म, संस्कार, वैवाहिक रीति–रिवाज, मृत्यु संस्कार आदि से जुड़ी परम्पराएँ लोक जन–जीवन में नित–नूतन होते हुए सदाजीवी रूप में अपने महत्त्व को अक्षुण्ण बनाए हुई है। मोरवाल जी ने उपन्यास के पात्र मनीराम के पोता होने पर उन सभी लोक–संस्कारों का उल्लेख किया है, जो प्राचीन समय से चले आ रहे हैं। हिन्दू संस्कारों के अतिरिक्त मुस्लिम मज़ार दादाखानू पर गलेप चढ़ाने के माध्यम से लोक समन्वय की भावना को प्रकट किया है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, ऊँच–नीच से ऊपर उठकर मेवाती जन–जीवन एक–दूसरे के संस्कार व परम्पराओं को अपनाकर उन्हें प्रफुल्लित करने में अपना विशेश योगदान दे रहा है। गलेप आयोजन के दौरान हिन्दू और मेव स्त्रियों के द्वारा लोकगीत और रतवाई गाते हुए मनीराम और उसकी पत्नी के द्वारा सभी मुस्लिम संस्कारों को पूरा किया जाता है– ''दादा खानू के सामने रूमाली को सबसे आगे लाकर खड़ा कर दिया गया तथा परात में रख हरे गलेप को दादा भरपूला को सौंप दिया। दादा भरपूला ने गलेप की तहों को खोला और उसके दोनों पल्लुओं को रूमाली को पकड़ा कर दादा खानू की मज़ार पर ओढ़ा दिया। रूमाली देर तक मज़ार के सामने घुटनों के बल ढोक देती हुई हर तरफ के आसेब से सुरक्षित रहने की मिन्नतें माँगती रही।''[8]

जन्म संस्कारों के साथ–साथ मोरवाल जी ने मेवाती लोकजीवन में वैवाहिक–संस्कार और परम्पराओं में भी हिन्दू–मेव रीति–रिवाजों के मनोहारी मिश्रण का व्यक्त किया है। सलेमी के विवाह के दौरान उन सभी हिन्दू संस्कारों–चाक, भात, बनवारे, खोड़िया आदि को पूरा किया जाता है जो मुस्लिम धर्म में नहीं है। मेवाती लोक जीवन सभी संकीर्ण विवादों से ऊपर उठकर आपसी सहयोग और समन्वय की भावना पर टिका हुआ है। सलेमी के विवाह में चाक, भात, बरात–बनवारा, उबटन आदि सभी हिन्दू रीति–रिवाजों को पूरा किया जाता है। मधुर गीतों की शीतल वाणी जन–जीवन को हरित करने वाली है। भात में गाये जाने वाले लोक गीत के माध्यम से भाई–बहन के संवेदनात्मक रिश्ते की सुन्दर व सजीव अभिव्यक्ति हुई है–

इस प्रकार मोरवाल जी के उपन्यास 'काला पहाड़' में जगह–जगह पर सांस्कृतिक सौन्दर्य की छटा लोक–जीवन में व्याप्त है जो आधुनिक युवा पीढ़ी की सांस्कृतिक विमुखता का विरोध करते हुए, इन प्राचीन मूल्यों के स्थायीत्व के पक्ष को बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

''भाई अच्छी भरियो भात, बाहन टोटा में, थाली में डेढ़ हजार, मोहर लोटा में, मैं हँसली–कठला पहर खड़ी कोठा में, भाई अच्छो भरियो भात, बहन टोटा में।''[9]

निष्कर्षः–

निश्कर्श रूप से कहा जा सकता है कि भगवान दास मोरवाल का उपन्यास काला–पहाड़ लोक–जीवन से जुड़ा जीता–जागता दस्तावेज है। लोक–जीवन की सार्थकता और महत्त्व को उकेरता, यह उपन्यास लोक मानव मूल्यों की सघन विरासत है। वर्तमान में गतिमान अनेकानेक आधुनिक उपभोगवादी प्रवृत्तियों ने असंख्य वेदनाजन्य समस्याओं को जन्म दिया है जिसकी छाया ने लोक–जीवन को भी प्रभावित किया है। किन्तु लोक जीवन में व्याप्त सादगी, सरलता, अकृत्रिमता, अहंकार शून्यता ऐसे उदात्तमय गुण हैं जो मनुश्य की नैतिकहीनता और मूल्यहीनता पर प्रहार कर उन्हें खण्ड–खण्ड करते हैं। विकराल समस्याओं के दौर में लोक जीवन में छुपी मानवीय अस्मिता का दर्शन कराना ही उपन्यासकार का मूल उद्देश्य है।

संदर्भ सूचीः–

1. डा0 सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृ0– 30
2. डा0 मनीष कुमार द्विवेदी, भारतीय साहित्य एवं कथा में दशावतार, पृ0– 308
3. डा0 कृश्णदेव उपाध्याय, लोक–संस्कृति की रूपरेखा, पृ0– 2
4. काला, पृ0– 239
5. वहीं, पृ0– 220
6. काला, पृ0– 220
7. काला, पृ0– 96
8. काला, पृ0– 57
9. काला, पृ0– 120

शोध निर्देशक
डॉ0 कृष्णा, जून
प्रोफेसर, विश्वविद्यालय
पूनम कुमारी
पीएच.डी, शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक (हरियाणा)

45

राम कथा का लोक–विस्तार विदेशों में भी

डॉ० नवीन कुमार

सारांशः

रामकथा का लोक में जितना विस्तार हमें दिखाई देता है, उतना किसी और चरित का नहीं! विश्व में दो ही महानायक हुए है जिनके चरित्र ने संपूर्ण संसार को प्रभावित किया है। उनमें से एक 'राम' है और दूसरे महाभारत के सूत्रधार कृश्ण। अवातर वाद की दृश्टि से भी देखे तो मनुश्य के रूप में देव के समकक्ष अवतरित पूर्ण पुरूश 'राम' ही है। महाभारतीय कृश्ण चरित भी उन्ही का विस्तारित रूप हैं। ये दो कालो के महाचरितों की महागाथा है जो आज सारे विश्व में किसी–न–किसी रूप में गायी जाती है।

सामान्यतः लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, स्वामी दयानंद, सरस्वती, विनोबा भावे, डॉ० राम मनोहर लोहिया आदि आधुनिक चिंतक तथा मनीशी भारत के लोकतंत्र को राम राज्य जैसा देखना चाहते थे क्योंकि देश के संपूर्ण राज्यों, भाशाओं, लोकचिंतन संदर्भो एवं भारतीय मनीशियों के आचरणों में यह रामराज्य तंत्र कब से वर्तमान एवं आचरणीय चला आ रहा है।

वालमीकि– रामायण में जिस तरह से रामकथा का पल्लवन हुआ है वह भारतीय संस्कृति और मूल्यों का ही दर्पण है। राम एक प्रजा–वत्सल शासक व सद्गृहस्थ के रूप में स्वीकृत हुए। यह कथा मानव से महामानव बनने की कथा थी और उससे बढ़कर नर से नारायण बनने की कथा है। यही कारण है कि राम कथा जाति, धर्म, देश, काल को लाँघती हुई सारे विश्व में फैलती गई। राम कथा में संपूर्ण मानवता को बचाये रखने के सत्य के वे बीज भी थे जो हर देश, काल और भूमि में पल्लवित होने की समार्थ्य रखता है। इन्ही सब विशेशताओं के कारण राम का चरित महालोकत्व ग्रहण करता चला गया। राम विश्णु के पूर्ण अवतार माने गए महाभारत काल में कृश्ण के रूप में पूर्णावतार की एक और कड़ी उनके साथ जुड़ गयी!

इस तरह रामचरित विश्वजीवन विश्वसनीय ही नहीं, अलौकिक हो गया। इस बात को देखने के लिए हमें उन देशों तथा उनकी भौमिक संस्कृतियों को समझना होगा, जहाँ–जहाँ रामकथा के बीज पहुँचे ओर वटवृक्ष के रूप में विकसित हुए!

थाई देश का पूर्व नाम 'श्याम' था! यहाँ सबसे पहले पाली भाशा में 'रामायण' पहुँची! यही कालांतर में 'राम कित्ती' हो गयी। वर्तमान में थाई भाशा में जिसे 'रामकीन' कहा जाता है। थाई देश में सीता को 'सीदा' कहा जाता है।

कंबोडिया में राम कथा वाल्मीकि रामायण से पहुँची जिसे 'रामकेर' रामायण कहा जाता है। यहाँ रामायण में राम–रावण युद्ध के वैश्णव या बुद्ध के दार्शनिक तत्व शामिल हो जाते है और वह 'सामेर संस्कृति में पूरी तरह से रंग जाती हैं। यहाँ लोक और शास्त्र की रामायण पृथक्–पृथक् है।

श्रीलंका में अज्ञात कवि द्वारा रची गयी 12 वी शताब्दी की 'जानकी हरण' के रूप में रामायण मौजूद हैं। यहाँ विभीशण की प्रतिश्ठा है, जिसने रावण के वध के बाद लंका में राम के सहारे सुशासन किया था।

चीन में रामायण का नायक भरत को माना जाता है। यद्यपि चीन बौद्ध धर्म को मानता है, फिर भी वहाँ वाल्मीकी–रामायण के कई संस्करण मिलते है। यहाँ पर शुद्धोधन को बुद्धावतार में दशरथ बताया गया है। महामाया को सीता तथा शिश्य आनंद को भरत। बुद्ध ने स्वयं अपने मुख से शिश्यो को यह कथा सुनाई थी! यह कथा दशरथ जातक' के नाम से पाली भाशा में मिलती हैं।

वर्मा में बौद्ध धर्म होने के बाद भी कथा लोकप्रिय हुई। यहाँ तक की बुद्ध को राम का अवतार बताया गया है। यहाँ विश्णु के दशावतारों की भी मूर्तिया देखने को मिलती है। यहाँ पर रामकथा में बहुत सी किंवदन्तियाँ जुड़ गयी हैं– जैसे लक्षमण के लिए हनुमान संजीवनी बर्मा के पोपा पहाड़ से ले गए थे! यहाँ भी राम लीला का चलन हैं। यहाँ के कवि 'उतो' ने तुलसी रामायण से प्रेरणा ले 'रामगमन' रामायण की रचना की हैं।

लाओस को लवदेश भी कहा जाता हैं जिसे स्वर्ण भूमि कहा जाता था। पहली शताब्दी के पूर्व ही यहाँ एक भारतवंशी ने अपना राज्य कायम किया था। यहाँ खमेर जाति के लोग रहते हैं। जो भारतीय मूल के थे! यहाँ पर कांग नदी को गंगा नदी माना जाता हैं। लाओस में रामायण–कथा–नृत्य, गीत और मित्र तथा शिल्पों में मिलती है। यहाँ रामायण का नाम ' फालक का लाभ' है। यहाँ भी राम लीला होती है, यहाँ भी बुद्ध को राम का अबतार माना जाता है।

भूटान देश में लिंग गेसर गेलपो नाम से राम रामायण का मंचन होता है। लिंग गेसर गेलपो का मतलब लिंग का राजा है, जिसे यहाँ राम की तरह दिखाया जाता है। उसकी पत्नि (संग्चांग डुकमो) को सीता माता माना जाता हैं। उसी तरह यहाँ पर (हारगर) काल्प गेलपो' को रावण के रूप में माना गया है जो सेंगचांग डुकमो को हरण कर लेता हैं। उसे छुड़ाने के लिए गेसर गेलपों उससे युद्ध करता हैं। इसकी भाशा भूटान की राश्ट्रीय भाशा 'डीजोग्खा' है। भूटान मूलतः बुद्धिश्ट देश है। इस राम लीला में बुद्धिस्ट वाद्यों और

नाटकीय शैली का पारम्परिक प्रयोग देखा जा सकता है। इसकी वेशभूशा बेहद रंग–बिरंगी और कल्पनाशील होती है। युद्ध के दृश्य मार्शल आर्ट पर आधारित होते हैं।

अतः राम एक ऐसे महारचित नाम हुए है, जिनके नाम से जीवन के हर क्षेत्र में और उनके चरित ने संस्कृति साहित्य और कला के विभिन्न अनुशासनों को बहुत गहरे तक हर समय में प्रभावित किया है। राम कथा का विस्तार लोक से लगातार शास्त्र तक और लोक समाजों से लेकर देशांतर तक समाया हुआ है।

संदर्भ सूची :–

1. श्याम चरण दुबे, समय और संस्कृति, पृश्ठ 65
2. रांगेय राघव, कब तक पुकारूँ, पृश्ठ 107,
3. संजीव, धार, पृश्ठ 165
4. राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग –16 पृश्ठ 258
5. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृश्ठ 102

विश्वासभाजन

डॉ० नवीन कुमार

प्राचार्य +2 उच्च विद्यालय

सुन्दरपहाड़ी, गोड्डा,

झारखण्ड

मो०–8757123840

पिन– 814156

46

जनपद नैनीताल में प्राथमिक शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की उदासीनता के कारणों का अध्ययन।

डॉ0 प्रमिला जोशी

सारांशः

प्राथमिक शिक्षा मनुश्य के जीवन का एक ऐसा समय है जहॉ पर बच्चों का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया जाता है। परिवार के पश्चात् बच्चा जब विद्यालय में कदम रखता है तो उसका सामाजीकरण होना प्रारंभ हो जाता है और वह उठने बैठनै व व्यवहार करने के तरीकों को सीखता है। वस्तुतः शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है परन्तु यदि जीवन के प्रारम्भिक दौर में बच्चों को शिक्षा रूपी प्रकाशपुंज द्वारा सच्चा व सही मार्ग प्राप्त हो जाय तो उसका जीवन दिव्य से दिव्यतर हो जाता है। शिक्षा के द्वारा बच्चा अपनी मूल प्रवृत्तियों को जागृत कर श्रेश्ठता प्राप्त करता है परन्तु यह परम् आवश्यक है कि बच्चो को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय जिसके माध्यम से वो परिवार व अपने वातावरण से सामन्जस्य स्थापित कर सके।

वर्तमान में सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा हेतु कई विद्यालय खोले गये हैं, परन्तु देखने में आया है कि कई बच्चे इनका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं इसका कारण क्या हो सकता है इसको जानने के लिये प्रस्तुत शोध करने का प्रयास किया गया। इस शोध पत्र में नैनीताल जनपद में प्राथमिक शिक्षा के प्रति विद्यार्थियो की उदासीनता के कारणों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है, ताकि इन कारणो को जानकर उनके निवारण हेतु संबंधित सरकारें, समाज , अघ्यापक व अभिवावक सही कदम उठा सकें और भारत की कक्षाओं में एक नये भविश्य का निर्माण हो सके।

व्यापक अर्थ में शिक्षा रूपी शब्द को विभिन्न दार्शनिकों व विद्वत जनों ने समय और परिस्थिति के सापेक्ष अपनी अपनी तरह से समझने और समझाने का प्रयास किया ऐसे प्रयासों में यद्यपि व्यापक वैविध्य है परन्तु सभी में एक सामान्य व मौलिक अर्थ विद्यमान है, जिसके अनुसार शिक्षा जीवन का वह प्रकाश पुंज है जो व्यक्ति को सुखमय जीवन प्रदान करने के निमित्त सच्चा मार्ग प्रदान करती है और उसमें मनुश्यता का भाव जाग्रत कर उसके जीवन को दिव्यता से परिपूर्ण करती है।

वस्तुतः शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। जिसे विद्यालय की चहारदीवारी और पुस्तकों के पन्नों तक सीमित करके नहीं रखा जा सकता। इसके द्वारा व्यक्ति की क्षमताओं का विकास होता है। शिक्षा पशुत्व से ऊपर उठाकर मनुश्य को विवेक, संयम, श्रेश्ठता व सुन्दता प्रदान करती है। प्लेटों के शब्दों में ''संसार में सबसे श्रेश्ठ और सुन्दर यदि कोई वस्तु है तो वह है "शिक्षा''। शिक्षा का काम व्यक्ति में निहित जन्मजात गुणों का विकास करना, सत्य ज्ञान कराना, आदर्श समाज का निर्माण करना और प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृति एवं पात्रता की जॉच कर उसको परिपूर्ण करने में सहायता प्रदान करना होता है। शिक्षा द्वारा ही बुद्धिमान लोग समाज को उन्नत व समृद्धशाली बनाते हैं और उसे सही मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

शिक्षा व्यक्ति का आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास करती है। स्वतन्त्र भारत के प्रसिद्ध शिक्षा आयोग (1964–1966) के विचार से भारत के भविश्य का निर्माण उसकी अध्ययन कक्षाओं में हो रहा है। सामान्य रूप से देखा जाये तो बालक की शिक्षा का प्रारम्भिक स्रोत उसका परिवार है। प्रारम्भिक अवस्था में आदतो के निर्माण एवं व्यवहार के विकास में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, बालक परिवार से ही अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ करता है। बालक के उचित शैक्षिक विकास में परिवार के वातावरण तथा विभिन्न परिस्थितियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि परिवार का वातावरण व सदस्यों की अनूकूलता व प्रतिकूलता का प्रभाव बालक की शिक्षा की प्रगति या अवनति पर पड़ता है। परिवार के स्वस्थ्य व प्रभावशाली वातावरण में बालक का मार्गदर्शन व शैक्षिक विकास उचित व उत्तम प्रकार से होता है। विपरीत परिस्थितियों जैसे पारिवारिक कलह, माता –पिता का अशिक्षित होना, परिवार की दयनीय आर्थिक स्थिति, माता–पिता के आपसी मतभेद इत्यादि से बालक के विकास में अवरोध उत्पन्न होता है। बालक जब अपने परिवार से बाहर निकलकर बाहर भी दुनिया के सम्पर्क में आता है और एक नये समाज में प्रवेश करता है। तो उसके व्यक्तित्व पर सामाजिक मान्यताओं एवं परम्पराओं आदि का प्रभाव पड़ता है।

बालक के व्यक्तित्व पर उचित प्रभाव डालने के लिये एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित सामाजिक ढांचे की आवश्यकता होती है, क्योंकि परिवार से प्राप्त शिक्षा के आधार पर भविश्य के नियोजन तथा सर्वागीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती, अतः इसके लिये आवश्यक है कि बालक को कोई ऐसा साधन उपलब्ध हो, जो इन कमियों को पूर्ण कर सके। वर्तमान समय में यह दायित्व विद्यालयों का है। विद्यालय में बालक

दूसरे बालकों के सम्पर्क में आता है और उसका सामाजिक व सांस्कृतिक विकास आरम्भ हो जाता है।

समाज अपनी विचारधाराओं, आकाक्षाओं, आदर्शों तथा आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिये शिक्षा की व्यवस्था करता है और शिक्षा समाज का नव निर्माण करती है। अतः शिक्षा व समाज एक दूसरे के पूरक हैं। विद्यालयों द्वारा संचालित शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा समाज का निरन्तर विकास होता रहता है। इससे एक ओर जहॉ एक ओर आदर्शो की रक्षा होती है वहीं दूसरी ओर नवीन मूल्यों का विकास भी होता है अतः स्पश्ट है कि विद्यालय व्यक्ति के विकास में योगदान देने के साथ–साथ समाज के विकास में योगदान करते हैं। शिक्षा के विकास की यह प्रक्रिया न केवल सचेत होती है, अपितु सविमर्श होती है। यह परिर्वतन दो माध्यमो से होता है प्रथम अध्यापक के व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष प्रभाव द्वारा तथा द्वितीय ज्ञान के विविध रूपों द्वारा वास्तव में बालक के उत्तम शैक्षिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि परिवार, विद्यालय, पास पड़ोस व वह समूह जिसमें वो अधिकतम समय व्यतीत करता है, का वातावरण अच्छा हो जिससे बालक की प्राथमिक शिक्षा की नींव मजबूत हो सके।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व.

स्वतन्त्र भारत में देश के सामने उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं में से प्राथमिक शिक्षा के प्रचार प्रसार की समस्या ने देशवासियों का ध्यान सर्वाधिक आकृश्ट किया। वर्तमान में भारत में प्राथमिक शिक्षा के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि यहॉ की अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक शिक्षा की पहुॅच से बाहर है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 65.38 प्रतिशत लोग ही साक्षर थे। प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा जगत की आधार शिला है अतः इसका आधार मजबूत होना अति आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर ही राश्ट्रीय शिक्षा सशक्त व दृढ़ हो सकती है। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के 74 वर्श बाद भी हमारा देश शिक्षा के मौलिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाया। उत्तराखण्ड में 2011 के ऑकड़ों के अनुसार 79.63 % आबादी साक्षर थी जिसमें से 88.3 % पुरूश तथा 70.7 % महिलायें थी। **यूनेस्को** रिपोर्ट के अनुसार भारत में 6 से 14 वर्श के 14 लाख बच्चे प्राइमरी शिक्षा से वंचित हैं ।**(टाइम्स ऑफ इन्डिया– जुलाई 7–2015)**। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार 29 % बच्चे प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने से पहले ही विद्यालयों से बाहर हो जाते हैं।

आज आवश्यकता इस बात है कि भारत में साक्षरता दर को कैसे आगे लाया जाये, क्योंकि हमारे देश में निरक्षर लोगों की संख्या अधिक है। माता–पिता के अशिक्षित होने के कारण बच्चों का शैक्षिक स्तर भी निम्न हो जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों मे अभिभवाक कक्षा 2 या 3 तक ही बालकों का स्कूल भेजते हैं तत्पश्चात् उनको खेती व अन्य घरेलू कार्यो में लगा देते हैं जिससे बच्चों का शैक्षिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। विद्यालय के वातावरण का भी विशेश प्रभाव बच्चे की शिक्षा पर पड़ता है। इसके अलावा पढ़ाया जाने वाला पाठ्यक्रम, पढ़ाने के तरीके, पाठ्यपुस्तक आदि भी कुछ विशेश कारण हैं जो विद्यार्थी में उदासीनता लाते हैं और उनकी कल्पनाशक्ति व रचनात्मकता को कुंठित करते हैं। इसके अलावा पाठ्यक्रम का संर्कीण व परम्परागत होना व विशयों का विद्यार्थियों की आवश्यकताओं व क्षमताओं के अनुकूल न होना व रोजगार परक न होना भी बालक के समुचित शैक्षिक विकास में समस्या उत्पन्न कर देता है। अधिकांश यह देखने में आता है कि प्राथमिक शिक्षा दिलाने हेतु माता–पिता बच्चों को विद्यालय में भेज तो देते हैं परन्तु उनमें से कई बच्चे बिना पढ़ाई पूरी किये मध्य सत्र में ही विद्यालय छोड़ देते हैं या सत्र समप्ति के उपरान्त विद्यालय में प्रवेश नहीं लेते। अतः इस अध्ययन के माध्यम से यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि ऐसे कौन से कारण हैं जो विद्यार्थियों में प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता हेतु जिम्मेदार हैं।

अध्ययन के उद्देश्य–

अध्ययन के उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

1. प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारणों की जानकारी प्राप्त करना।
2. प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारणों पर अभिभावकों के दृश्टिकोण की जानकारी प्राप्त करना।
3. प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारणों पर अध्यापकों के दृश्टिकोण की जानकारी प्राप्त करना।

<u>परिकल्पना–</u> प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्न परिकल्पना का निर्माण किया गया–

S विद्यार्थियों की प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारणों के विशय में अध्यापकों तथा अभिभावकों के मत

भिन्न नहीं हैं।

अध्ययन का उद्देश्य राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना है अतः समय व साधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखकर इस अध्ययन को उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जनपद के राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के अध्यापकों व अभिभावकों से ही डाटा (प्रदत्त) प्राप्त किया गया।

अध्ययन विधि– प्रस्तुत अध्ययन हेतु 'वर्णनात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया। न्यादर्श हेतु नैनीताल जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थी जनसंख्या के अभिभावक तथा अध्यापकों को सम्मिलित किया गया। अनुसंधान की उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'सप्रयोजन न्यादर्शन' विधि द्वारा 25 प्राथमिक विद्यालयों का चयन दत्त संकलन (Data collection) हेतु किया गया। इन 25 विद्यालयों में से कुल 50 अध्यापकों व 50 अभिभावकों से दत्त संकलन किया गया।

प्रस्तुत अध्ययन हेतु एक स्वनिर्मित प्रश्नावली का निर्माण किया गया जिसके अन्तर्गत अध्ययन के उद्देश्य, विशय वस्तु, अवधि, माध्यम, उत्तरदाताओं का स्तर आदि को ध्यान में रखा गया। सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन एवं विद्वानों प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों से विचार विमर्श करके व विशेशज्ञों की राय के पश्चात् प्रश्नावली में 28 प्रश्नों को रखा गया। जिनके विकल्प हॉ या नहीं में थे। इस प्रश्नावली में विद्यार्थियों के प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता के कारणों से सम्बन्धित पॉच (5) आयामों को लिया गया।

1. स्वास्थ्य सम्बन्धी ।
2. विद्यालय सम्बन्धी ।
3. पारिवारिक ।
4. शिक्षण सम्बन्धी।
5. अन्य ।

इन सब कारणों के जानने हेतु इन 5 आयामों के पद बनाये गये। इस अध्ययन में सांख्यिकी प्रयोग में प्रतिशत व काई वर्ग परीक्षण किया गया। आकड़ों के विश्लेशण के लिये विभिन्न तालिकायें बनाई गई जो उपरोक्त आयामों पर आधारित थी।

तालिका–1 स्वास्थ्य सम्बन्धी कारण एवं विश्लेशण

1	विद्यार्थी को विद्यालय में मध्यान्ह भोजन मिलता है।	04	10	00	00	4.201•
2	विद्यार्थी शारीरिक रूप से कमजोर होने पर विद्यालय नहीं आता है।	20	50	18	45	0.287
3	विद्यार्थी शारीरिक रूप से थकान महसूस करने के कारण विद्यालय नही आता है।	23	57.5	30	75	2.739
4	शारीरिक रूप से विकलांग होने के कारण अन्य साथी विद्यार्थी की हँसी उड़ाते हैं।	18	45	22	55	0.800

0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक•

प्रथम तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राथमिक शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की उदासीनता का प्रभावी कारण शारीरिक रूप से थकान को 23 (57.5 प्रतिशत) अभिभावक और 30 (75 प्रतिशत) अध्यापक इससे सहमत थे, जबकि शारीरिक रूप से कमजोर होने के कारण विद्यालय न आने बाले 20 (50 प्रतिशत) अभिभावक मानते हैं जबकि 22 (55 प्रतिशत) अध्यापकों ने शारीरिक विकंलागता व साथियों द्वारा उपहास के फलस्वरूप विद्यार्थियों क प्रारम्भिक शिक्षा के प्रति उदासीनता होने की बात स्वीकार की काई स्कवेयर निकालने पर ज्ञात हुआ कि अभिभावक व अध्यापक का मध्यमान भोजन मिलने में 4.201 है जो 005 पर सार्थक है। शारीरिक कमजोरी में यह मध्यमान 0,800 है जो .05 पर सार्थक नहीं है शारीरिक कमजोरी व थकान में यह मध्यमान 0.287 व 2.739 पाया जो .05 पर सार्थक नहीं है अतः स्वास्थ्य संबंधी आयाम में शून्य परिकल्पना अस्वीकार नहीं की गयी

तालिका 2. विद्यालयी कारण एवं आयामों का विश्लेशण

क्र0 सं0	प्रश्न	अभिभावक की संख्या	प्रतिशत	अध्यापकों की संख्या	प्रतिशत	X2
1	विद्यालय का वातावरण विद्यार्थियों के अनुकूल है	11	27.5	08	20	0.621
2	विद्यालय में बैठने के लिये पर्याप्त स्थान है	06	15	09	22.5	0.738
3	विद्यालय विद्यार्थियों के घर से दूर है।	25	62.5	14	35	16.410••
4	पुस्तक न होने पर विद्यालय में दण्ड मिलता है।	30	75	07	17.5	26.599••
5	पढ़ाई में कमजोर होने पर साथी विद्यार्थी का मजाक बनाते हैं।	32	80	27	67.5	1.614
6	विद्यालय में साथी विद्यार्थी विद्यार्थियों से मारपीट करते हैं।	11	27.5	18	45	2.654
7	कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है। (40 से अधिक)	08	20	07	17.5	.082
8	विद्यालय में खेल का घण्टा होता है।	04	10	00	00	4.210•

0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक ••

0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक •

इस तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 32 (80 %) अभिभावकों तथा 27 (67.5%) अध्यापकों ने पढ़ाई में कमजोर होने के कारण साथियों द्वारा मजाक उड़ाने पर प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता को कारण बताया इसके अलावा साथी विद्यार्थियों से मारपीट के कारण पर 11 (27.5%) अभिभावक व 18 (45%) अध्यापकों ने अपनी सहमति दी। 30 (75%) अभिभावकों ने पुस्तक न होने पर विद्यालय में दण्ड मिलने की बात स्वीकार की 25 अभिभावकों (62.5%) व 14 अध्यापकों (35%) ने इसका कारण विद्यालय का विद्यार्थी के घर से दूर होना बताया। इसका सांख्यिकी विश्लेशण ज्ञात हुआ कि अभिभावक अध्यापक अनुपात पद न 3 के लिये 16.410 और पद न0 4 पर 26.599 है जो 01 स्तर पर सार्थक है। खेल वादन में यह मध्यमान 4.210 है जो .05 पर सार्थक है। अन्य कारणों के लिये शून्य परिकल्पना स्वीकार की गयी।

तालिका 3. पारिवारिक कारणों व आयामों का विश्लेशण्

क्र0 स0	प्रश्न	अभिभावकों की संख्या	प्रतिशत	अध्यापकों की संख्या	प्रतिशत	X2
1	विद्यार्थी के घर में पढ़ने के लिये अलग जगह है।	30	75	33	82.5	0.672
2	विद्यार्थी को पढ़ाई के साथ–साथ घरेलु कार्य भी करना पड़ता है।	38	95	37	92.5	0.407
3	विद्यार्थी माता पिता के साथ अधिक हाथ बटाने के कारण विद्यालय नही आते है।	09	22.5	29	72.5	21.052••
4	विद्यार्थी को घर में पढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।	20	50	30	75	6.667••
5	विद्यार्थी के घर में झगड़ा होता रहता है।	10	25	21	52.5	8.383•
6	घर में झगड़ा होने पर विद्यार्थी की पढ़ाई में कोई ध्यान नही देता।	12	30	23	57.5	6.146•

–0.01 सार्थकता स्तर••
–0.05 सार्थकता स्तर•

इस तालिका के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि 38 अभिभावक (95 %) तथा 37 अध्यापक (92.5%) पढ़ाई के साथ–साथ घरेलू कार्य करने को पहला तथा घर में पढ़ने को अलग स्थान न होने को 30 अभिभावकों तथा 33 अध्यापकों (75 % / 82. 5%) ने प्राथमिक शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की उदासीनता हेतु उत्तरदायी माना है। ये दोनो कारण सभी आयामों में दूसरे स्थान पर सबसे अधिक प्रभावशाली पाये गये।

तालिका 4 शिक्षण सम्बन्धी कारणो एवं आयामों का विश्लेशण

क्र0 स0	प्रश्न	अभिभावकों की संख्या	प्रतिशत	अध्यापकों की संख्या	प्रतिशत	X2
1	अध्यापक का पढ़ाना विद्यार्थी को अच्छा लगता है।	18	45	13	32.5	1.317
2	अध्यापक की भाषा विद्यार्थी की समझ में आती है।	10	25	07	17.5	0.878
3	अध्यापक सहयक सामग्री से पढ़ाते हैं।	25	62.5	10	25	11. 429••
4	जब पढ़ाई से सम्बन्धित बात विद्यार्थी की समझ में नहीं आती है तो वे अध्यापक से पूछते हैं।	23	57.5	15	37.5	3.208
5	विद्यार्थी जब कुछ अध्यापक से पूछते हैं तो वे उन्हें डाँट के भगा देते हैं।	09	22.5	05	12.5	1.388

0.05 सार्थकता स्तर•
0.01 सार्थकता स्तर ••

तालिका 4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 23 अभिभावक व 15 अध्यापक (57.5% व 37.5%) ने स्वीकार किया कि विद्यार्थियों को जब पढ़ाई से सम्बन्धित बात समझ नहीं आती है तो वो अध्यापक से नहीं पूछते, यह कारण इस आयाम में लिये गये अन्य अन्य कारणों से सबसे अधिक प्रभावी पाया गया। दूसरा कारण अध्यापकों का सहायक सामग्री का प्रयोग न करना था। इस वर्ग में अभिभावक अध्यापक मध्यमान 11.429 पाया गया यह 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है अतः इस कारण के लिये शून्य परिकल्पना अस्वीकार कर दी गई। शेश कारणों के लिये शून्य परिकल्पना स्वीकार की गई।

तालिका 5.
अन्य कारण एवं विश्लेशण

क्र0 स0	प्रश्न	अभिभावकों की संख्या	प्रतिशत	अध्यापकों की संख्या	प्रतिशत	x2
1	विद्यार्थी के पड़ोस के सभी बच्चे स्कूल जाते हैं।	04	10	04	10	
2	पड़ोस के बच्चों के साथ खेलने के लालच के कारण विद्यार्थी भी स्कूल नहीं जाते हैं।	25	62.5	23	57.5	
3	विद्यालय से मिले गृहकार्य को कराने में माता–पिता विद्यार्थी का सहयोग नही करते हैं।	09	22.5	32	80	

इस तालिका में अवलोकन से ज्ञात होता है कि 25 अभिभावक व 23 अध्यापक (62.5 व 57.5%) ने पड़ोस के बच्चों के साथ खेलने के लालच के कारण स्कूल न जाने को प्राथमिक कारण माना जबकि 32 अध्यापकों व 09 अभिभावकों (80 व 22.5%) ने विद्यालय से मिले गृह कार्य को कराने में माता–पिता द्वारा सहयोग न मिलना प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता का कारण बताया, इस तालिका का सांख्यिकी विश्लेशण करने पर ज्ञात हुआ कि विद्यालय से मिले गृहकार्य को कराने में माता–पिता का विद्यार्थी के साथ सहयोग न करना विद्यार्थी के प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीन रहने का कारण है, जिनका मध्यमान 24.261 भी 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार की गई। शेश कारणों के शून्य परिकल्पना को स्वीकार किया गया।

- निष्कर्श– इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्श निम्नवत् है
- स्वास्थ्य सम्बन्धी आयाम– से सम्बन्धित कारणों में अभिभावक एवं अध्यापकों ने प्राथमिक शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की उदासीनता का सबसे प्रभावी कारण शारीरिक रूप से थकान महसूस करने को माना जबकि दूसरा प्रभावी कारण शारीरिक विकलांगता के कारण साथियों द्वारा उपहास तथा तीसरा शारीरिक रूप से कमजोर होना पाया गया। विद्यालय सम्बन्धी आयाम में साथियों द्वारा मारपीट को प्राथमिक शिक्षा के प्रति विद्यार्थी की उदासीनता का सबसे प्रभावी कारण माना, दूसरा कारण विद्यालय से विद्यार्थी का घर दूर होना, तीसरा पुस्तक न होने पर विद्यालय में दण्ड मिलना, साथियों द्वारा मारपीट चौथा व विद्यालय का वातावरण अनुकूल न होना पॉचवे स्थान पर प्रभावी कारण पाये गये।
- परिवार सम्बन्धी आयाम में बच्चों द्वारा घर के काम में हाथ बटॉना पहला, घर में पढ़ने की जगह न होना दूसरा, पढ़ने को प्रोत्साहित न करना तीसरा व घर में झगड़ा होने के कारण पढ़ाई पर ध्यान नहीं देने को चौथा प्रभावी कारण माना गया है
- शिक्षण सम्बन्धी आयाम में पहला सबसे प्रभावी कारण कारण समझ न आने पर अध्यापक से न पूछना है और दूसरा प्रभावी कारण अध्यापक का सहायक सामग्री से ना पढ़ाना है।
- अन्य आयामों में प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता के अन्य कारण स्कूल नहीं जाने को पहला प्रभावी कारण जबकि विद्यालय से मिले गृहकार्य को कराने में माता–पिता का असहयोग दूसरा प्रभावी कारण है।

अध्ययन के भौक्षिक निहितार्थ–

शारिरिक अस्वस्थता विद्यार्थियों की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती है। यदि माता–पिता द्वारा बच्चों पर ध्यान दिया जाय व उनको पौश्टिक भोजन दिया जाय बीमारी का उचित निदान व उपचार किया जाये तो विद्यार्थी पढ़ने में रूचि लेगा। साथ ही

विद्यालयों द्वारा विद्यार्थियों को पौश्टिक व रूचिकर मध्यान्न भोजन व्यवस्था निशुल्क नियमित स्वास्थ्य परीक्षण व चिकित्सा सुविधा की उपल्बधता हो और शिक्षक प्राथमिक चिकित्सा में प्रशिक्षित हो तो विद्यार्थियों में स्वास्थ्य सम्बन्धी कारण व समस्यायें नहीं रहेंगी और वह प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीन भी नहीं रहेंगे।

अधिकांश विद्यालयों के भवन साधन विहीन, हवा, रोशनी पर्याप्त न होना, असन्तुलित शिक्षक विद्यार्थी अनुपात के होते हैं, जिसका नकारात्मक प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ता है। अतः यदि विद्यालय में उपयोगी पाठ्यक्रम, उचित वातावरण, पर्याप्त साधन एवं स्थान, खेल का समय, अनुशासन, प्रेम व्यवहार विद्यार्थी के प्रति उपेक्षित व्यवहार न करना आदि हो तो विद्यार्थी पढ़ने में रूचि लेगें इसके अलावा लड़के–लड़कियों में किसी भी स्तर पर भेद न करना व विद्यालय परिवेश को स्वस्थ रखना भी पढ़ाई में रूचि ला सकता है। सरकार द्वारा विद्यालयों में बैठने के लिये मैदान व फर्नीचर की व्यवस्था करनी चाहिए शिक्षक द्वारा पढ़ाते समय शिक्षण सहायक सामग्री का उचित प्रयोग एवं व्यवस्था, स्पश्टता व सरलता विद्यार्थी की समझ में आने वाली बातें व उनकी समस्या समाधान की योग्यता रखना, आदि के द्वारा भी विद्यार्थियों की उदासीनता को कम किया जा सकता है पारिवारिक कारणों अन्तर्गत माता–पिता की ये जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वे अपने घर का वातावरण स्वस्थय रखें, कलहपूर्ण वातावरण से बच्चे को दूर रखें घरेलू कार्यो में बच्चों का सम्मिलित न करें, और बच्चों के आस–पास ऐसी कोई बात न होने दें जिससे पढ़ाई से उनकी रूचि न हटे इस प्रकार विद्यालय शिक्षक, अभिभावक तथा समाज के लोगों को बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक होना चाहिए ताकि एक सुन्दर भविश्य का निर्माण हो सके। वर्तमान में नई शिक्षा योजना 2020 के आने से प्राथमिक शिक्षा में बहुत सुधारों के होने की सम्भावना है जिससे भारतवर्श में प्राथमिक शिक्षा रूचिपूर्ण, आनन्ददाई, बच्चों की पहुॅच के अन्दर व नये भविश्य का निर्माण करने वाली होगी।

सन्दर्भ साहित्य

1. अस्थाना, वी एवं अग्रवाल, आर एन मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2001।
2. आनन्द जी. वेस्टेज इन प्राइमरी एजूकेशन अमंग ट्रइबल चिल्ड्रन, एजूकेशन वेस्टेज, नई दिल्ली कॉमनवेल्थ प्रकाशन।
3. तिवारी, बी0 बी0, प्राइमरी एजूकेशन इन उत्तर प्रदेश, पी0 एच0 डी0 थीसिस, इलाहबाद विश्वविद्यालय, इलाहबाद 1964
4. नायक, सी0, ए सर्वे ऑफ ड्रॉप आउट एण्ड एनरोलमेन्ट ऑफ चिल्ड्रन इन द् 6–14 ऐज ग्रुप, इन्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ एडूकेशन पूणे, 1981।
5. नई शिक्षा नीति 2020.
6. मोहन्ती जे एण्ड मोहन्ती पी0 सी0, स्टडी ऑफ द् इम्पेक्ट ऑफ अटेन्डेन्स एण्ड एनरोलमेन्ट इन प्राइमरी स्कूल्स, उड़ीसा, एन0 सी0 ई0 आर0 टी0 1984।

Postal Address- Pramila Joshi

SRIJAN

Jai Ganga Indrapuram Bithoria Phase 1

LalDanth Bypass Road Haldwani, Distt- Nainital

Pin -263139, Mobile No- 9410184266 e mail---

pramilapcjoshi@gmail.Com